नमो नमो निम्मलदंसणस्स

बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नम:

पूज्य आनन्द-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरूभ्यो नम:

आगम-१८

जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

अनुवादक एवं सम्पादक

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

आगम हिन्दी-अनुवाद-श्रेणी पुष्प-१८

आगमसूत्र-१८- 'जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति'

उपांगसूत्र-७ -हिन्दी अनुवाद

कहां क्या देखे ?

क्रम	विषय	पृष्ठ	क्रम	विषय	पृष्ठ
०१	वक्षस्कार- १	००५	०५	वक्षस्कार- ५	०७४
०२	वक्षस्कार- २	०११	०६	वक्षस्कार- ६	०८५
०३	वक्षस्कार- ३	०२५	०७	वक्षस्कार- ७	०८७
०४	वक्षस्कार- ४	०५०	-----	----------	

४५ आगम वर्गीकरण

क्रम	आगम का नाम	सूत्र	क्रम	आगम का नाम	सूत्र
०१	आचार	अंगसूत्र-१	२५	आतुरप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-२
०२	सूत्रकृत्	अंगसूत्र-२	२६	महाप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-३
०३	स्थान	अंगसूत्र-३	२७	भक्तपरिज्ञा	पयन्नासूत्र-४
०४	समवाय	अंगसूत्र-४	२८	तंदुलवैचारिक	पयन्नासूत्र-५
०५	भगवती	अंगसूत्र-५	२९	संस्तारक	पयन्नासूत्र-६
०६	ज्ञाताधर्मकथा	अंगसूत्र-६	३०.१	गच्छाचार	पयन्नासूत्र-७
०७	उपासकदशा	अंगसूत्र-७	३०.२	चन्द्रवेध्यक	पयन्नासूत्र-७
०८	अंतकृत् दशा	अंगसूत्र-८	३१	गणिविद्या	पयन्नासूत्र-८
०९	अनुत्तरोपपातिकदशा	अंगसूत्र-९	३२	देवेन्द्रस्तव	पयन्नासूत्र-९
१०	प्रश्नव्याकरणदशा	अंगसूत्र-१०	३३	वीरस्तव	पयन्नासूत्र-१०
११	विपाकश्रुत	अंगसूत्र-११	३४	निशीथ	छेदसूत्र-१
१२	औपपातिक	उपांगसूत्र-१	३५	बृहत्कल्प	छेदसूत्र-२
१३	राजप्रश्निय	उपांगसूत्र-२	३६	व्यवहार	छेदसूत्र-३
१४	जीवाजीवाभिगम	उपांगसूत्र-३	३७	दशाश्रुतस्कन्ध	छेदसूत्र-४
१५	प्रज्ञापना	उपांगसूत्र-४	३८	जीतकल्प	छेदसूत्र-५
१६	सूर्यप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-५	३९	महानिशीथ	छेदसूत्र-६
१७	चन्द्रप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-६	४०	आवश्यक	मूलसूत्र-१
१८	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-७	४१.१	ओघनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
१९	निरयावलिका	उपांगसूत्र-८	४१.२	पिंडनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
२०	कल्पवतंसिका	उपांगसूत्र-९	४२	दशवैकालिक	मूलसूत्र-३
२१	पुष्पिका	उपांगसूत्र-१०	४३	उत्तराध्ययन	मूलसूत्र-४
२२	पुष्पचूलिका	उपांगसूत्र-११	४४	नन्दी	चूलिकासूत्र-१
२३	वृष्णिदशा	उपांगसूत्र-१२	४५	अनुयोगद्वार	चूलिकासूत्र-२
२४	चतु:शरण	पयन्नासूत्र-१	---	----------	-----

मुनि दीपरत्नसागरजी प्रकाशित साहित्य

आगम साहित्य			आगम साहित्य		
क्र	साहित्य नाम	बूक्स	क्रम	साहित्य नाम	बू
1	मूल आगम साहित्य:-	147	6	आगम अन्य साहित्य:-	10
	-1- आगमसुत्ताणि-मूलं print	[49]		-1- આગમ કથાનુયોગ	06
	-2- आगमसुत्ताणि-मूलं Net	[45]		-2- आगम संबंधी साहित्य	02
	-3- आगममञ्जूषा (मूल प्रत)	[53]		-3- ऋषिभाषित सूत्राणि	01
2	आगम अनुवाद साहित्य:-	165		-4- आगमिय सूक्तावली	01
	-1- આગમસૂત્ર ગુજરાતી અનુવાદ	[47]		आगम साहित्य- कुल पुस्तक	516
	-2- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद Net	[47]			
	-3- AagamSootra English Trans.	[11]			
	-4- આગમસૂત્ર સટીક ગુજરાતી અનુવાદ	[48]			
	-5- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद print	[12]		अन्य साहित्य:-	
3	आगम विवेचन साहित्य:-	171	1	તત્વાભ્યાસ સાહિત્ય-	13
	-1- आगमसूत्र सटीकं	[46]	2	સૂત્રાભ્યાસ સાહિત્ય-	06
	-2- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-1	[51]	3	વ્યાકરણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-2	[09]	4	વ્યાખ્યાન સાહિત્ય-	04
	-4- आगम चूर्णि साहित्य	[09]	5	જિનભક્તિ સાહિત્ય-	09
	-5- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-1	[40]	6	વિધિ સાહિત્ય-	04
	-6- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-2	[08]	7	આરાધના સાહિત્ય	03
	-7- सचूर्णिक आगमसुत्ताणि	[08]	8	પરિચય સાહિત્ય-	04
4	आगम कोष साहित्य:-	14	9	પૂજન સાહિત્ય-	02
	-1- आगम सद्दकोसो	[04]	10	તીર્થંકર સંક્ષિપ્ત દર્શન	25
	-2- आगम कहाकोसो	[01]	11	પ્રકીર્ણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगम-सागर-कोष:	[05]	12	દીપરત્નસાગરના લઘુશોધનિબંધ	05
	-4- आगम-शब्दादि-संग्रह (प्रा-सं-गु)	[04]		આગમ સિવાયનું સાહિત્ય કૂલ પુસ્તક	85
5	आगम अनुक्रम साहित्य:-	09			
	-1- આગમ વિષયાનુક્રમ- (મૂળ)	02		1-आगम साहित्य (कुल पुस्तक)	51
	-2- आगम विषयानुक्रम (सटीकं)	04		2-आगमेतर साहित्य (कुल	08
	-3- आगम सूत्र-गाथा अनुक्रम	03		दीपरत्नसागरजी के कुल प्रकाशन	60

મુનિ દીપરત્નસાગરનું સાહિત્ય

1	મુનિ દીપરત્નસાગરનું આગમ સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 516]	તેના કુલ પાના [98,300]
2	મુનિ દીપરત્નસાગરનું અન્ય સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 85]	તેના કુલ પાના [09,270]
3	મુનિ દીપરત્નસાગર સંકલિત 'तत्त्वार्थसूत्र'ની વિશિષ્ટ DVD		તેના કુલ પાના [27,930]

અમારા પ્રકાશનો કુલ ૬૦૧ + વિશિષ્ટ DVD કુલ પાના 1,35,500

[१८] जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति
उपांगसूत्र-७- हिन्दी अनुवाद

वक्षस्कार-१- 'भरतक्षेत्र'

सूत्र - १

अरिहंत भगवंतो को नमस्कार हो । उस काल, उस समय, मिथिला नामक नगरी थी । वह वैभव, सुरक्षा, समृद्धि आदि विशेषताओं से युक्त थी । मिथिला नगरी के बाहर ईशान कोण में माणिभद्र नामक चैत्य था । जितशत्रु राजा था । धारिणी पटरानी थी । तब भगवान् महावीर वहाँ समवसृत हुए–लोग अपने-अपने स्थानों से रवाना हुए, भगवान् ने धर्मदेशना दी । लोग वापस लौट गए ।

सूत्र - २

उसी समय की बात है, भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी–शिष्य इन्द्रभूति नामक अनगार–जो गौतम गोत्र में उत्पन्न थे, जिनकी ऊंचाई सात हाथ थी, समचतुरस्र संस्थानसंस्थित, जो वज्र-ऋषभ-नाराच-संहनन, कसौटी पर अंकित स्वर्ण-रेखा की आभा लिए हुए कमल के समान जो गौरवर्ण थे, जो उग्र तपस्वी, दीप्त तपस्वी, तप्त-तपस्वी, जो महा तपस्वी, प्रबल, घोर, घोर-गुण, घोर-तपस्वी, घोर-ब्रह्मचारी, उत्क्षिप्त-शरीर एवं संक्षिप्त-विपुल-तेजोलेश्य थे । वे भगवान् के पास आये, तीन बार प्रदक्षिणा की, वंदन-नमस्कार किया । और बोले –

सूत्र - ३

भगवन् ! जम्बूद्वीप कहाँ है ? कितना बड़ा है ? उस का संस्थान कैसा है ? उस का आकार-स्वरूप कैसा है? गौतम ! यह जम्बूद्वीप सब द्वीप-समुद्रों में आभ्यन्तर है– सबसे छोटा है, गोल है, तेल में तले पूए जैसा गोल है, रथ के पहिए जैसा, कमल कर्णिका जैसा, प्रतिपूर्ण चन्द्र जैसा गोल है, अपने गोल आकारमें यह एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है । इसकी परिधि ३१६२२७ योजन, ३ कोस, १२८ धनुष और साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक है ।

सूत्र - ४

वह एक वज्रमय जगती द्वारा सब ओर से वेष्टित है । वह जगती आठ योजन ऊंची है । मूल में बारह योजन चौड़ी, बीच में आठ योजन चौड़ी और ऊपर चार योजन चौड़ी है । मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त तथा ऊपर पतली है । उस का आकार गाय की पूँछ जैसा है । यह सर्व रत्नमय, स्वच्छ, सुकोमल, चिकनी, घुटी हुई सी–तरासी हुई-सी, रजरहित, मैल-रहित, कर्दम-रहित तथा अव्याहत प्रकाशवाली है । वह प्रभा, कान्ति तथा उद्योत से युक्त है, प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप, मनोज्ञ तथा प्रतिरूप है । उस जगती के चारों ओर एक जालीदार गवाक्ष है । वह आधा योजन ऊंचा तथा ५०० धनुष चौड़ा है । सर्व-रत्नमय, स्वच्छ यावत् अभिरूप और प्रतिरूप है ।

उस जगती के बीचोंबीच एक महती पद्मवरवेदिका है । वह आधा योजन ऊंची और पाँच सौ धनुष चौड़ी है। उसकी परिधि जगती जितनी है । वह स्वच्छ एवं सुन्दर है । पद्मवरवेदिका का वर्णन जैसा जीवा जीवाभिगम-सूत्र में आया है, वैसा ही यहाँ समझ लेना । वह ध्रुव, नियत, शाश्वत (अक्षय, अव्यय, अवस्थित) तथा नित्य है ।

सूत्र - ५

उस जगती के ऊपर तथा पद्मवरवेदिका के बाहर एक विशाल वन-खण्ड है । वह कुछ कम दो योजन चौड़ा है । उसकी परिधि जगती के तुल्य है । उसका वर्णन पूर्वोक्त आगमों से जान लेना चाहिए ।

सूत्र - ६

उस वन-खंड में एक अत्यन्त समतल रमणीय भूमिभाग है । वह आलिंग-पुष्कर-धर्म-पुट, समतल और

सुन्दर है । यावत् बहुविध पंचरंगी मणियों से, तृणों से सुशोभित है । कृष्ण आदि उनके अपने-अपने विशेष वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श तथा शब्द हैं । वहाँ पुष्करिणी, पर्वत, मंड़प, पृथ्वी-शिलापट्ट हैं । वहाँ अनेक वाणव्यन्तर देव एवं देवियाँ आश्रय लेते हैं, शयन करते हैं, खड़े होते हैं, बैठते हैं, त्वग्वर्तन करते हैं, रमण करते हैं, मनोरंजन करते हैं, क्रीड़ा करते हैं, सुरत-क्रिया करते हैं । यों वे अपने पूर्व आचरित शुभ, कल्याणकर विशेष सुखों का उपभोग करते हैं। उस जगती के ऊपर पद्मवरवेदिका के भीतर एक विशाल वनखंड है । वह कुछ कम दो योजन चौड़ा है । उस की परिधि वेदिका जितनी है । वह कृष्ण यावत् तृणों के शब्द से रहित है ।

सूत्र - ७

भगवन् ! जम्बूद्वीप के कितने द्वार हैं ? गौतम ! चार द्वार हैं–विजय, वैजयन्त, जयन्त तथा अपराजित ।

सूत्र - ८

भगवन् ! जम्बूद्वीप का विजय द्वार कहाँ है ? गौतम ! जम्बूद्वीप स्थित मन्दर पर्वत की पूर्व दिशा में ४५ हजार योजन आगे जाने पर जम्बूद्वीप के पूर्व के अंतमें तथा लवणसमुद्र के पूर्वार्ध के पश्चिम में सीता महानदी पर जम्बूद्वीप का विजय द्वार है । वह आठ योजन ऊंचा तथा चार योजन चौड़ा है । उसका प्रवेश-चार योजन का है । वह द्वार श्वेत है । उस की स्तूपिका, उत्तमस्वर्ण की है । द्वार एवं राजधानी का वर्णन जीवाभिगमसूत्र समान जानना

सूत्र - ९

जम्बूद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार का अबाधित अन्तर कितना है ?

सूत्र - १०

गौतम ! वह ७९०५२ योजन एवं कुछ कम आधे योजन का है ।

सूत्र - ११

भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत नामक वर्ष-क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! चुल्ल हिमवंत पर्वत के दक्षिण में, दक्षिणवर्ती लवणसमुद्र के उत्तर में, पूर्ववर्ती लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिमवर्ती लवणसमुद्र के पूर्व में है । इसमें स्थाणुओं, काँटों, ऊंची-नीची भूमि, दुर्गमस्थानों, पर्वतों, प्रपातों, अवझरों, निर्झरों, गड्ढों, गुफाओं, नदियों, द्रहों, वृक्षों, गुच्छों, गुल्मों, लताओं, विस्तीर्ण वेलों, वनों, वनैले हिंसक पशुओं, तृणों, तस्करों, डिम्बों, विप्लवों, डमरों, दुर्भिक्ष, दुष्काल, पाखण्ड, कृपणों, याचकों, ईति, मारी, कुवृष्टि, अनावृष्टि, रोगों, संक्लेशों, क्षणक्षणवर्ती संक्षोभों की अधिकता है–अधिकांशतः ऐसी स्थितियाँ हैं ।

वह भरतक्षेत्र पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है । उत्तर में पर्यंक-संस्थान और दक्षिण में धनपृष्ठ-संस्थान संस्थित है । तीन ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए है । गंगामहानदी, सिन्धुमहानदी तथा वैताढ्यपर्वत से इस भरत क्षेत्र के छह विभाग हो गए हैं । इस जम्बूद्वीप के १९० भाग करने पर भरतक्षेत्र उसका एक भाग होता है । इस प्रकार यह ५२६-६/१९ योजन चौड़ा है । भरत क्षेत्र के ठीक बीच में वैताढ्य पर्वत है, जो भरतक्षेत्र को दो भागों में विभक्त करता है । वे दो भाग दक्षिणार्ध भरत तथा उत्तरार्ध भरत हैं ।

सूत्र - १२

भगवन् ! जम्बूद्वीप में दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! वैताढ्यपर्वत के दक्षिण में, दक्षिण-लवण समुद्र के उत्तर में, पूर्व-लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिम-लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बू नामक द्वीप के अन्तर्गत है। वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है । यह अर्द्ध-चन्द्र-संस्थान संस्थित है–तीन ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए है । गंगा और सिन्धु महानदी से वह तीन भागों में विभक्त हो गया है । वह २३८-३/१९ योजन चौड़ा है । उसकी जीवा पूर्व-पश्चिम लम्बी है । वह दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए हैं । अपनी पश्चिमी कोटि से–वह पश्चिम-लवणसमुद्र का तथा पूर्वी कोटि से पूर्व-लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए हैं । दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र

की जीवा ९७४८-१२/१९ योजन लम्बी है । उसका धनुष्य-पृष्ठ-दक्षिणार्ध भरत के जीवोपमित भाग का पृष्ठ भाग दक्षिण में ९७६६-१/१९ योजन से कुछ अधिक है । यह परिधि की अपेक्षा से वर्णन है ।

भगवन् ! दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! उसका अति समतल रमणीय भूमिभाग है । वह मुरज के ऊपरी भाग आदि के सदृश समतल है । वह अनेकविध पंचरंगी मणियों तथा तृणों से सुशोभित है । दक्षिणार्ध भरत में मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! दक्षिणार्ध भरत में मनुष्यों का संहनन, संस्थान, ऊंचाइ, आयुष्य बहुत प्रकार का है । वे बहुत वर्षों का आयुष्य भुगतते हैं । आयुष्य भुगतकर कईं नरकगति में, कईं तिर्यंचगति में, कईं मनुष्यगति में तथा कईं देवगति में जाते हैं और कईं सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं परिनिवृत्त होते हैं एवं समस्त दुःखों का अन्त करते हैं ।

सूत्र - १३

भगवन् ! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में वैताढ्य पर्वत कहाँ है ? गौतम ! उत्तरार्ध भरतक्षेत्र के दक्षिण में, दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र के उत्तर में, पूर्व-लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिम-लवणसमुद्र के पूर्व में है । यह पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है । अपने पूर्वी किनारे से पूर्व-लवणसमुद्र का तथा पश्चिमी किनारे से पश्चिमी-लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए है । वह पच्चीस योजन ऊंचा है और सवा छह योजन जमीन में गहरा है । यह पचास योजन लम्बा है । इसकी बाहा–पूर्व-पश्चिम में ४८८-१६/१९ योजन है । उत्तर में वैताढ्य पर्वत की जीवा पूर्वी किनारे से पूर्व-लवणसमुद्र का तथा पश्चिम किनारे से पश्चिम लवणसमुद्र का स्पर्श किये हुए है । जीवा १०७२-१२/१९ योजन लम्बी है । दक्षिण में उसकी धनुष्यपीठिका की परिधि १०७४३-१५/१९ योजन है । वैताढ्य पर्वत रुचक-संस्थान-संस्थित है, वह सर्वथा रजतमय है । स्वच्छ, सुकोमल, चिकना, घुटा हुआ-सा, तराशा हुआ-सा, रज-रहित, मैल-रहित, कर्दम-रहित तथा कंकड़-रहित है । वह प्रभा, कान्ति एवं उद्योत से युक्त है, प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है । वह अपने दोनों पार्श्वभागों में–दो पद्मवरवेदिकाओं तथा वन-खंडों में सम्पूर्णतः घिरा है।

वे पद्मवरवेदिकाएं आधा योजन ऊंची तथा पाँच सौ धनुष चौड़ी हैं, पर्वत जितनी लम्बी हैं । वे वन-खंड कुछ कम दो योजन चौड़े हैं, कृष्ण वर्ण तथा कृष्ण आभा से युक्त हैं । वैताढ्य पर्वत के पूर्व-पश्चिम में दो गुफाएं हैं । वे उत्तर-दक्षिण लम्बी तथा पूर्व-पश्चिम चौड़ी हैं । उनकी लम्बाई पचास योजन, चौड़ाई बारह योजन तथा ऊंचाई आठ योजन है । उनके वज्ररत्नमय-कपाट हैं, दो-दो भागों के रूप में निर्मित, समस्थित कपाट इतने सघन-निश्छिद्र या निबिड हैं, जिससे गुफाओं में प्रवेश करना दुःशक्य है । उन गुफाओंमें सदा अंधेरा रहता है। वे ग्रह, चन्द्र, सूर्य तथा नक्षत्रों के प्रकाश से रहित हैं, अभिरूप एवं प्रतिरूप हैं । उन गुफाओं के नाम तमिस्रगुफा तथा खंडप्रपातगुफा हैं । वहाँ कृतमालक तथा नृत्यमालक-दो देव निवास करते हैं । वे महान् ऐश्वर्यशाली, द्युतिमान्, बलवान्, यशस्वी, सुखी तथा भाग्यशाली हैं, पल्योपमस्थितिक हैं । उन वनखंडों के भूमिभाग बहुत समतल और सुन्दर है ।

वैताढ्य पर्वत के दोनों पार्श्व में–दश-दश योजन की ऊंचाई पर दो विद्याधर श्रेणियाँ हैं । वे पूर्व-पश्चिम लम्बी तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ी हैं । उनकी चौड़ाई दश-दश योजन तथा लम्बाई पर्वत जितनी ही है । वे दोनों पार्श्व में दो-दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो-दो वनखंडों से परिवेष्टित हैं । वे पद्मवरवेदिकाएं ऊंचाई में आधा योजन, चौड़ाई में पाँच सौ धनुष तथा लम्बाई में पर्वत-जितनी ही हैं । वनखंड भी लम्बाई में वेदिकाओं जितने ही हैं ।

भगवन् ! विद्याधर-श्रेणियों की भूमि का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! उनका भूमिभाग बड़ा समतल रमणीय है । वह मुरज के ऊपरी भाग आदि की ज्यों समतल है । वह बहुत प्रकार के मणियों तथा तृणों से सुशोभित है । दक्षिणवर्ती विद्याधरश्रेणी में गगनवल्लभ आदि पचास विद्याधर हैं– । उत्तरवर्ती विद्याधर श्रेणि में रथनुपूरचक्रवाल आदि आठ नगर हैं– । इस प्रकार दक्षिणवर्ती एवं उत्तरवर्ती–दोनों विद्याधर-श्रेणियों के नगरों की संख्या ११० हैं । वे विद्याधर-नगर वैभवशाली, सुरक्षित एवं समृद्ध हैं । वहाँ के निवासी तथा अन्य भागों से आये हुए व्यक्ति वहाँ आमोद-प्रमोद के प्रचुर साधन होने से प्रमुदित रहते हैं । यावत् वह प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप

और प्रतिरूप है । उन विद्याधर नगरों में विद्याधर राजा निवास करते हैं । वे महाहिमवान् पर्वत के सदृश महत्ता तथा मलय, मेरु एवं महेन्द्र संज्ञक पर्वतों के सदृश प्रधानता या विशिष्टता लिये हुए हैं ।

भगवन् ! विद्याधरश्रेणियों के मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! वहाँ के मनुष्यों का संहनन, संस्थान, ऊंचाई एवं आयुष्य बहुत प्रकार का है । वे बहुत वर्षों का आयुष्य भोगते हैं यावत् सब दुःखों का अंत करते हैं । उन विद्याधर-श्रेणियों के भूमिभाग से वैताढ्य पर्वत के दोनों और दश-दश योजन ऊपर दो आभियोग्य-श्रेणियाँ, व्यन्तर देव-विशेषों की आवास-पंक्तियाँ हैं । वे पूर्व-पश्चिम लम्बी तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ी हैं । उनकी चौड़ाई दश-दश योजन तथा लम्बाई पर्वत जितनी है । वे दोनों श्रेणियाँ अपने दोनों ओर दो-दो पद्मवरवेदिकाओं एवं दो-दो वनखंडों से परिवेष्टित हैं । लम्बाई में दोनों पर्वत-जितनी हैं ।

भगवन् ! आभियोग्य-श्रेणियों का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! उनका बड़ा समतल, रमणीय भूमि भाग है । मणियों एवं तृणों से उपशोभित है । मणियों के वर्ण, तृणों के शब्द आदि अन्यत्र विस्तार से वर्णित हैं । वहाँ बहुत से देव, देवियाँ आश्रय लेते हैं, शयन करते हैं, यावत् विशेष सुखों का उपयोग करते हैं । उन अभियोग्य-श्रेणियों में देवराज, देवेन्द्र शक्र के सोम, यम, वरुण तथा वैश्रमण देवों के बहुत से भवन हैं । वे भवन बाहर से गोल तथा भीतर से चौरस हैं । वहाँ देवराज, देवेन्द्र शक्र के अत्यन्त ऋद्धिसम्पन्न, द्युतिमान् तथा सौख्यसम्पन्न सोम, यम, वरुण एवं वैश्रमण संज्ञक आभियोगिक देव निवास करते हैं । उन आभियोग्य-श्रेणियों के अति समतल, रमणीय भूमिभाग से वैताढ्य पर्वत के दोनों पार्श्व में–पाँच-पाँच योजन ऊंचे जाने पर वैताढ्य पर्वत का शिखर-तल है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । उसकी चौड़ाई दश योजन है, लम्बाई पर्वत जितनी है । वह एक पद्मवरवेदिका से तथा एक वनखंड से चारों ओर परिवेष्टित है ।

भगवन् ! वैताढ्य पर्वत के शिखर-तल का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय है । वह मृदंग के ऊपर के भाग जैसा समतल है । बहुविध पंचरंगी मणियों से उपशोभित है । वहाँ स्थान-स्थान पर वावड़ियाँ एवं सरोवर हैं । वहाँ अनेक वाणव्यन्तर देव, देवियाँ निवास करते हैं, पूर्व-आचीर्ण पुण्यों का फलभोग करते हैं । भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरतक्षेत्र में वैताढ्य पर्वत के कितने कूट हैं ? गौतम! नौ कूट हैं । सिद्धायतनकूट, दक्षिणार्धभरतकूट, खण्डप्रपातगुहाकूट, मणिभद्रकूट, वैताढ्यकूट, पूर्णभद्रकूट, तमिस्रगुहाकूट, उत्तरार्धभरतकूट, वैश्रमणकूट ।

सूत्र - १४

भगवन् ! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में वैताढ्य पर्वत पर सिद्धायतनकूट कहाँ है ? गौतम ! पूर्व लवणसमुद्र के पश्चिम में, दक्षिणार्ध भरतकूट के पूर्व में है । वह छह योजन एक कोस ऊंचा, मूल में छह योजन एक कौस चौड़ा, मध्य में कुछ पाँच योजन चौड़ा तथा ऊपर कुछ अधिक तीन योजन चौड़ा है । मूल में उसकी परिधि कुछ कम बाईस योजन, मध्य में कुछ कम पन्द्रह तथा ऊपर कुछ अधिक नौ योजन की है । वह मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त तथा ऊपर पतला है । वह गोपुच्छ-संस्थान-संस्थित है । वह सर्व-रत्नमय, स्वच्छ, सुकोमल तथा सुन्दर है । वह एक पद्मवरवेदिका एवं एक वनखंड से सब ओर से परिवेष्टित है । दोनों का परिमाण पूर्ववत् है । सिद्धायतन कूट के ऊपर अति समतल तथा रमणीय भूमिभाग है । वह मृदंग के ऊपरी भाग जैसा समतल है । वहाँ वाणव्यन्तर देव और देवियाँ विहार करते हैं ।

उस भूमिभाग के ठीक बीच में एक बड़ा सिद्धायतन है । वह एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा और कुछ कम एक कोस ऊंचा है । वह अभ्युन्नत, सुरचित वेदिकाओं, तोरणों तथा सुन्दर पुत्तलिकाओं से सुशोभित है । उसके उज्ज्वल स्तम्भ चिकने, विशिष्ट, सुन्दर आकार युक्त उत्तम वैडूर्य मणियों से निर्मित हैं । उसका भूमिभाग विविध प्रकार के मणियों और रत्नों से खचित है, उज्ज्वल है, अत्यन्त समतल तथा सुविभक्त है । उसमें ईहामृग, वृषभ, तुरग, मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, कस्तूरी-मृग, शरभ, चँवर, हाथी, वनलता यावत् पद्मलता के चित्र अंकित हैं । उसकी स्तूपिका स्वर्ण, मणि और रत्नों से निर्मित है । वह सिद्धायतन अनेक प्रकार की पंचरंगी मणियों

से विभूषित है । उसके शिखरों पर अनेक प्रकार की पंचरंगी ध्वजाएं तथा घंटे लगे हैं । वह सफेद रंग का है । वह इतना चमकीला है कि उससे किरणें प्रस्फुटित होती हैं । वहाँ की भूमि गोबर आदि से लिपी है । यावत् सुगन्धित धुएं की प्रचुरता से वहाँ गोल-गोल धूममय छल्ले से बन रहे हैं ।

उस सिद्धायतन की तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं । वे द्वार पाँच सौ धनुष उंचे और ढाई सौ धनुष चौड़े हैं । उनका उतना ही प्रवेश-परिमाण है । उनकी स्तूपिकाएं श्वेत-उत्तम-स्वर्णनिर्मित है । उस सिद्धायतन में बहुत समतल, सुन्दर भूमिभाग है, जो मृदंग आदि के ऊपरी भाग के सदृश समतल है । उस भूमिभाग के ठीक बीच में देवच्छन्दक है । वह पाँच सौ धनुष लम्बा, पाँच सौ धनुष चौड़ा और कुछ अधिक पाँच सौ धनुष ऊंचा है, सर्व रत्नमय है । यहाँ जिनोत्सेध परिमाण-एक सौ आठ जिन-प्रतिमाएं हैं । यह जिनप्रतिमा का समग्र वर्णन जीवा-जीवाभिगम सूत्रानुसार जान लेना ।

सूत्र - १५

भगवन् ! वैताढ्य पर्वत का दक्षिणार्ध भरतकूट कहाँ है ? गौतम ! खण्डप्रपातकूट के पूर्व में तथा सिद्धा-यतनकूट के पश्चिम में है । उसका परिमाण आदि वर्णन सिद्धायतनकूट के बराबर है । दक्षिणार्ध भरतकूट के अति समतल, सुन्दर भूमिभाग में एक उत्तम प्रासाद है । वह एक कोस ऊंचा और आधा कोस चौड़ा है । अपने से निकलती प्रभामय किरणों से वह हँसता-सा प्रतीत होता है, बड़ा सुन्दर है । उस प्रासाद के ठीक बीच में एक विशाल मणिपीठिका है । वह पाँच सौ धनुष लम्बीचौड़ी तथा अढाई सौ धनुष मोटी है, सर्वरत्नमय है । उस मणि-पीठिका के ऊपर एक सिंहासन है ।

भगवन् ! उसका नाम दक्षिणार्ध भरतकूट किस कारण पड़ा ? गौतम ! दक्षिणार्ध भरतकूट पर अत्यन्त ऋद्धिशाली, यावत् एक पल्योपमस्थितिक देव रहता है । उसके चार हजार सामानिक देव, अपने परिवार से परिवृत्त चार अग्रमहिषियाँ, तीन परिषद्, सात सेनाएं, सात सेनापति तथा सोलह हजार आत्मरक्षक देव हैं । दक्षिणार्ध भरतकूट की दक्षिणार्धा नामक राजधानी है, जहाँ वह अपने इस देव-परिवार का तथा बहुत से अन्य देवों और देवियों का आधिपत्य करता हुआ सुखपूर्वक निवास करता है, विहार करता है-सुख भोगता है ।

भगवन् ! दक्षिणार्ध भरतकूट देव की दक्षिणार्धा राजधानी कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत के दक्षिण में तिरछे असंख्यात द्वीप और समुद्र लाँघकर जाने पर अन्य जम्बूद्वीप है । यहाँ दक्षिण दिशा में १२०० योजन नीचे जाने पर है । राजधानी का वर्णन विजयदेव की राजधानी सदृश जानना । इसी प्रकार कुटो को जानना। ये क्रमशः पूर्व से पश्चिम की ओर हैं ।

सूत्र - १६

वैताढ्य पर्वत के मध्य में तीन कूट स्वर्णमय हैं, बाकी के सभी पर्वतकूट रत्नमय हैं ।

सूत्र - १७

जिस नाम के कूट है, उसी नाम के देव होते हैं-प्रत्येक देव की एक-एक पल्योपम की स्थिति होती है ।

सूत्र - १८

मणिभद्रकूट, वैताढ्यकूट एवं पूर्णभद्रकूट-ये तीन कूट स्वर्णमय हैं तथा बाकी के छह कूट रत्नमय हैं । दो पर कृत्यमालक तथा नृत्यमालक नामक दो विसदृश नामों वाले देव रहते हैं । बाकी के छह कूटों पर कूटसदृश नाम के देव रहते हैं । मन्दर पर्वत के दक्षिण में तिरछे असंख्येय द्वीप समुद्रों को लांघते हुए अन्य जम्बूद्वीप में १२००० योजन नीचे जाने पर उनकी राजधानियाँ हैं । उनका वर्णन विजया राजधानी जैसा समझ लेना ।

सूत्र - १९

भगवन् ! वैताढ्य पर्वत को 'वैताढ्य पर्वत' क्यों कहते हैं ? गौतम ! वो भरतक्षेत्र को दक्षिणार्ध भरत तथा

उत्तरार्ध भरत नामक दो भागों में विभक्त करता हुआ स्थित है । वहां वैताढ्यगिरिकुमार नामक परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपमस्थितिक देव निवास करता है । इन कारणों से वह वैताढ्य पर्वत कहा जाता है । इस के अतिरिक्त वैताढ्य पर्वत नाम शाश्वत है । यह नाम कभी नहीं था, ऐसा नहीं है, यह कभी नहीं है, ऐसा भी नहीं है और यह कभी नहीं होगा, ऐसा भी नहीं है । यह था, है, होगा, यह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित एवं नित्य है

सूत्र - २०

भगवन् ! जम्बूद्वीप में उत्तरार्ध भरत नामक क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, वैताढ्य पर्वत के उत्तर में, पूर्व-लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिम-लवणसमुद्र के पूर्व में है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बा और उत्तर-दक्षिण चौड़ा है, पर्यंक-संस्थान-संस्थित है । वह दोनों तरफ लवण-समुद्र का स्पर्श किये हुए है । वह गंगा तथा सिन्धु महानदी द्वारा तीन भागों में विभक्त है । वह २३८-३/१९ योजन चौड़ा है । उसकी बाहा पूर्व-पश्चिम में १८९२-७ ।।/१९ योजन लम्बा है । उसकी जीवा उत्तर में पूर्व-पश्चिम लम्बी है, लवणसमुद्र का दोनों ओर से स्पर्श किये हुए है । इसकी लम्बाई कुछ कम १४४७१-३/१९ योजन है । उसकी धनुष्य-पीठिका दक्षिण में १४५२८-११/१९ योजन है । यह प्रतिपादन परिक्षेप-परिधि की अपेक्षा से है ।

भगवन् ! उत्तरार्ध भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय है । वह मुरज या ढोलक के ऊपरी भाग जैसा समतल है, कृत्रिम तथा अकृत्रिम मणियों से सुशोभित है । उत्तरार्ध भरत में मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! उत्तरार्ध भरत में मनुष्यों का संहनन आदि विविध प्रकार का है । वे बहुत वर्षों आयुष्य भोगकर यावत् सिद्ध होते हैं, समस्त दुःखों का अन्त करते हैं ।

सूत्र - २१

भगवन् ! जम्बूद्वीप में उत्तरार्ध भरतक्षेत्र में ऋषभकूट पर्वत कहाँ है ? गौतम ! हिमवान् पर्वत के जिस स्थान से गंगा महानदी नीकलती है, उसके पश्चिम में, जिस स्थान से सिन्धु महानदी नीकलती है, उनके पूर्व में, चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत के दक्षिणी मेखला–सन्निकटस्थ प्रदेश में है । वह आठ योजन ऊंचा, दो योजन गहरा, मूल में आठ योजन चौड़ा, बीच में छह योजन चौड़ा तथा ऊपर चार योजन चौड़ा है । मूल में कुछ अधिक पच्चीस योजन, मध्य में कुछ अधिक अठारह योजन तथा ऊपर कुछ अधिक बारह योजन परिधि युक्त है । मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त तथा ऊपर पतला है । वह गोपुच्छ-संस्थान-संस्थित है, सम्पूर्णतः जम्बूनद-स्वर्णमय है, स्वच्छ, सुकोमल एवं सुन्दर है । वह एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड द्वारा चारों ओर से परिवेष्टित है ।

वह भवन एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा, कुछ कम एक कोस ऊंचा है । वहाँ उत्पल, पद्म आदि हैं । ऋषभकूट के अनुरूप उनकी अपनी प्रभा है । वहाँ परम समृद्धिशाली ऋषभ देव का निवास हे, उसकी राजधानी है, इत्यादि पूर्ववत् जान लेना ।

वक्षस्कार-१-का मुनि दीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

वक्षस्कार-२- 'काळ'

सूत्र - २२

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरतक्षेत्र में कितने प्रकार का काल है ? गौतम ! दो प्रकार का, अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी काल । अवसर्पिणी काल कितने प्रकार का है ? गौतम ! छह प्रकार का, सुषम-सुषमाकाल, सुषमाकाल, सुषम-दुःषमाकाल, दुःषम-सुषमाकाल, दुःषमाकाल, दुःषम-दुःषमाकाल । उत्सर्पिणी काल कितने प्रकार का है ? गौतम ! छह प्रकार का, दुःषम-दुःषमाकाल यावत् सुषम-सुषमाकाल ।

भगवन् ! एक मुहूर्त्त में कितने उच्छ्वास-निःश्वास हैं ? गौतम ! असंख्यात समयों के समुदाय रूप सम्मिलित काल को आवलिका कहा गया है । संख्यात आवलिकाओं का एक उच्छ्वास तथा संख्यात आवलिकाओं का एक निःश्वास होता है ।

सूत्र - २३

हृष्ट-पुष्ट, अग्लान, नीरोग मनुष्य का एक उच्छ्वास-निःश्वास प्राण कहा जाता है ।

सूत्र - २४

सात प्राणों का एक स्तोक, सात स्तोकों का एक लव, ७७ लवों का एक मुहूर्त्त होता है ।

सूत्र - २५

उच्छ्वास-निःश्वास का एक मुहूर्त्त होता है ।

सूत्र - २६

इस मुहूर्त्तप्रमाण से तीस मुहूर्त्तों का एक अहोरात्र, पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष, दो पक्षों का एक मास, दो मासों की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन, दो अयनों का एक संवत्सर-वर्ष, पाँच वर्षों का एक युग, बीस युगों का एक वर्ष-शतक, दश वर्षशतकों का एक वर्ष-सहस्र, सौ वर्षसहस्रों का एक लाख वर्ष, चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वांग, चौरासी लाख पूर्वांगों का एक पूर्व होता है । ८४ लाख पूर्वों का एक त्रुटितांग, ८४ लाख त्रुटितांगों का एक त्रुटित, ८४ लाख त्रुटितों का एक अडडांग, ८४ लाख अडडांगों का एक अडड, ८४ लाख अडडों का एक अववांग, ८४ लाख अववांगों का एक अवव, ८४ लाख अववों का एक हुहुकांग, ८४ लाख हुहुकांगों का एक हुहुक, ८४ लाख हुहुकों का एक उत्पलांग, ८४ लाख उत्पलांगों का एक उत्पल, ८४ लाख उत्पलों का एक पद्मांग, ८३ लाख पद्मांगों का एक पद्म, ८४ लाख पद्मों का एक नलिनांग, ८४ लाख नलिनांगों का एक नलिन, ८४ लाख नलिनों का एक अर्थनिपुरांग, ८४ लाख अर्थनिपुरांगों का एक अर्थनिपुर, ८४ लाख अर्थनिपुरों का एक अयुतांग, ८४ लाख अयुतांगों का एक अयुत, ८४ लाख अयुतों का एक नयुतांग, ८४ लाख नयुतांगों का एक नयुत, ८४ लाख नयुतों का एक प्रयुतांग, ८४ लाख प्रयुतांगों का एक प्रयुत, ८४ लाख प्रयुतों का एक चूलिकांग, ८४ लाख चूलिकांगों की एक चूलिका, ८४ लाख चूलिकाओं का एक शीर्षप्रहेलिकांग तथा ८४ लाख शीर्षप्रहेलिकांगों की एक शीर्षप्रहेलिका होती है । यहाँ तक ही गणित का विषय है । यहाँ से आगे औपमिक काल है ।

सूत्र - २७

भगवन् ! औपमिक काल का क्या स्वरूप है ? गौतम ! औपमिक काल दो प्रकार का है–पल्योपम तथा सागरोपम । पल्योपम का क्या स्वरूप है ? गौतम ! पल्योपम की प्ररूपणा करूँगा–परमाणु दो प्रकार का है–सूक्ष्म तथा व्यावहारिक परमाणु । अनन्त सूक्ष्म परमाणु-पुद्गलों के एक-भावापन्न समुदाय से व्यावहारिक परमाणु निष्पन्न होता है । उसे शस्त्र काट नहीं सकता ।

सूत्र - २८

कोई भी व्यक्ति उसे तेज शस्त्र द्वारा भी छिन्न-भिन्न नहीं कर सकता । ऐसा सर्वज्ञों ने कहा है । वह

(व्यावहारिक परमाणु) सभी प्रमाणों का आदि कारण है ।

सूत्र - २९

अनन्त व्यावहारिक परमाणुओं के समुदाय-संयोग से एक उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका होती है । आठ उत्श्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिकाओं की एक श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका होती है । आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्णिकाओं का एक ऊर्ध्वरेणु होता है । आठ ऊर्ध्वरेणुओं का एक त्रसरेणु होता है । आठ त्रसरेणुओं का एक रथरेणु होता है । आठ रथरेणुओं का देवकुरु तथा उत्तरकुरु निवासी मनुष्यों का एक बालाग्र होता है । इन आठ बालाग्रों का हरिवर्ष तथा रम्यकवर्ष निवासी मनुष्यों का एक बालाग्र होता है । इन आठ बालाग्रों का हैमवत तथा हैरण्यवत निवासी मनुष्यों का एक बालाग्र होता है । इन आठ बालाग्रों का पूर्वविदेह एवं अपरविदेह निवासी मनुष्यों का एक बालाग्र होता है । इन आठ बालाग्रों की एक लीख होती है । आठ लीखों की एक जूं होती है । आठ जूओं का एक यवमध्य होता है । आठ यवमध्यों का एक अंगुल होता है । छः अंगुलों का एक पाद होता है । बारह अंगुलों की एक वितस्ति होती है । चौबीस अंगुलों की एक रत्नि होती है । अड़तालीस अंगुलों की एक कुक्षि होती है । छियानवे अंगुलों का एक अक्ष होता है । इसी तरह छियानवे अंगुलों का एक दंड़, धनुष, जुआ, मूसल तथा नलिका होती है । २००० धनुषों का एक गव्यूत–होता है । चार गव्यूतों का एक योजन होता है ।

इस योजन-परिमाण से एक योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा, एक योजन ऊंचा तथा इससे तीन गुनी परिधि युक्त पल्य हो । देवकुरु तथा उत्तरकुरु में एक दिन, यावत् अधिकाधिक सात दिन-रात के जन्मे यौगलिक के प्ररूढ बालाग्रों से उस पल्य को इतने सघन, ठोस, निचित, निबिड रूप में भरा जाए कि वे बालाग्र न खराब हों, न विध्वस्त हों, न उन्हें अग्नि जला सके, न वायु उड़ा सके, न वे सड़े-गलें । फिर सौ-सौ वर्ष के बाद एक-एक बालाग्र निकाले जाते रहने पर जब वह पल्य बिल्कुल खाली हो जाए, बालाग्रों से रहित हो जाए, निर्लिप्त हो जाए, तब तक का समय एक पल्योपम कहा जाता है ।

सूत्र - ३०

ऐसे कोड़ाकोड़ी पल्योपम का दस गुना एक सागरोपम का परिमाण है ।

सूत्र - ३१

ऐसे सागरोपम परिमाण से सुषमसुषमा का काल चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम, सुषमा का काल तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम, सुषमदुःषमा का काल दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम, दुःषमसुषमा का काल ४२००० वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम, दुःषमा का काल २१००० वर्ष तथा दुःषमदुःषमा का काल २१००० वर्ष है । अव-सर्पिणी काल के छह आरों का परिमाण है । उत्सर्पिणी काल का परिमाण इससे उलटा है ।

इस प्रकार अवसर्पिणी का काल दस सागरोपम कोड़ाकोड़ी तथा उत्सर्पिणी का काल भी दस सागरोपम कोड़ाकोड़ी है । दोनों का काल बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है ।

सूत्र - ३२

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल के सुषमासुषमा नामक प्रथम आरे में, जब वह अपने उत्कर्ष की पराकाष्ठा में था, भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप अवस्थिति– सब किस प्रकार का था ? गौतम ! उस का भूमिभाग बड़ा समतल तथा रमणीय था । मुरज के ऊपरी भाग की ज्यों वह समतल था । नाना प्रकार के काले यावत् सफेद मणियों एवं तृणों से वह उपशोभित था । इत्यादि वर्णन पूर्ववत् । उस समय भरतक्षेत्र में उद्दाल, कुद्दाल, मुद्दाल, कृत्तमाल, नृत्तमाल, दन्तमाल, नागमाल, शृंगमाल, शंखमाल तथा श्वेतमाल नामक वृक्ष थे । उन की जड़ें डाभ तथा दूसरे प्रकार के तृणों से रहित थीं । वे उत्तम मूल, कंद, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल तथा बीज से सम्पन्न थे । वे पत्तों, फूलों और फलों से ढके रहते तथा अतीव कान्ति से सुशोभित थे । उस समय भरतक्षेत्र में जहाँ-तहाँ बहुत से भेरुताल, हेरुताल, मेरुताल, प्रभताल, साल, सरल, सप्तपर्ण, सुपारी, खजूर तथा

नारियल के वृक्षों के वन थे । उनकी जड़ें डाभ तथा दूसरे प्रकार के तृणों से रहित थीं ।

उस समय भरतक्षेत्र में जहाँ-तहाँ अनेक सेरिका, नवमालिका, कोरंटक, बन्धुजीवक, मनोऽवद्य, बीज, बाण, कर्णिकार, कुब्जक, सिंदुवार, मुद्गर, यूथिका, मल्लिका, वासंतिका, वस्तुल, कस्तुल, शैवाल, अगस्ति, मगदंतिका, चंपक, जाती, नवनीतिका, कुन्द तथा महाजाती के गुल्म थे । वे रमणीय, बादलों की घटाओं जैसे गहरे, पंचरंगे फूलों से युक्त थे । वायु से प्रकंपित अपनी शाखाओं के अग्रभाग से गिरे हुए फूलों से वे भरतक्षेत्र के अति समतल, रमणीय भूमिभाग को सुरभित बना देते थे । भरतक्षेत्र में उस समय जहाँ-तहाँ अनेक पद्मलताएं यावत् श्यामलताएं थीं । वे लताएं सब ऋतुओं में फूलती थीं, यावत् कलंगियाँ धारण किये रहती थीं ।

उस समय भरतक्षेत्र में जहाँ-तहाँ बहुत सी वनराजियाँ-थीं । वे कृष्ण, कृष्ण आभायुक्त इत्यादि अनेकविध विशेषताओं से विभूषित थीं। पुष्प-पराग के सौरभ से मत्त भ्रमर, कोरंक, भृंगारक, कुंडलक, चकोर, नन्दीमुख, कपिल, पिंगलाक्षक, करंडक, चक्रवाक, बतक, हंस आदि अनेक पक्षियों के जोड़े उनमें विचरण करते थे । वे वनराजियाँ पक्षियों के मधुर शब्दों से सदा प्रतिध्वनित रहती थीं । उन वनराजियों के प्रदेश कुसुमों का आसव पीने को उत्सुक, मधुर गुंजन करते हुए भ्रमरियों के समूह से परिवृत, दृप्त, मत्त भ्रमरों की मधुर ध्वनि से मुखरित थे । वे वनराजियाँ भीतर की ओर फलों से तथा बाहर की ओर पुष्पों से आच्छन्न थीं । वहाँ के फल स्वादिष्ट होते थे । वहाँ का वातावरण नीरोग था । वे काँटों से रहित थीं । तरह-तरह के फूलों के गुच्छों, लत्ताओं के गुल्मों तथा मंडपों से शोभित थीं । मानो वे उनकी अनेक प्रकार की सुन्दर ध्वजाएं हों । वावड़ियाँ, पुष्करिणी, दीर्घिका–इन सब के ऊपर सुन्दर जालगृह बने थे । वे वनराजियाँ ऐसी तृप्तिप्रद सुगन्ध छोड़ती थीं, जो बाहर नीकलकर पुंजीभूत होकर बहुत दूर फैल जाती थीं, बड़ी मनोहर थीं । उन वनराजियों में सब ऋतुओं में खिलने वाले फूल तथा फलने वाले फल प्रचुर मात्रा में पैदा होते थे । वे सुरम्य, प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप थीं ।

सूत्र - ३३

उस समय भरतक्षेत्र में जहाँ-तहाँ मत्तांग नामक कल्पवृक्ष-समूह थे । वे चन्द्रप्रभा, मणिशिलिका, उत्तम मदिरा, उत्तम वारुणी, उत्तम वर्ण, गन्ध, रस तथा स्पर्श युक्त, बलवीर्यप्रद सुपरिपक्व पत्तों, फूलों और फलों के रस एवं बहुत से अन्य पुष्टिप्रद पदार्थों के संयोग से निष्पन्न आसव, मधु, मेरक, सुरा और भी बहुत प्रकार के मद्य, तथाविध क्षेत्र, सामग्री के अनुरूप फलों से परिपूर्ण थे । उनकी जड़ें डाभ तथा दूसरे प्रकार के तृणों से विशुद्धि-रहित थीं । इसी प्रकार यावत् अनेक कल्पवृक्ष थे ।

सूत्र - ३४

उस समय भरतक्षेत्र में मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा था ? गौतम ! उस समय वहाँ के मनुष्य बड़े सुन्दर, दर्शनीय, अभिरूप एवं प्रतिरूप थे । उनके चरण-सुन्दर रचना युक्त तथा कछुए की तरह उठे हुए होने से मनोज्ञ प्रतीत होते थे इत्यादि वर्णन पूर्ववत् ।

भगवन् ! उस समय भरतक्षेत्र में स्त्रियों का आकार-स्वरूप कैसा था ? गौतम ! वे स्त्रियाँ–उस काल की स्त्रियाँ श्रेष्ठ तथा सर्वांगसुन्दरियाँ थीं । वे उत्तम महिलोचित गुणों से युक्त थीं । उन के पैर अत्यन्त सुन्दर, विशिष्ट प्रमाणोपेत, मृदुल, सुकुमार तथा कच्छपसंस्थान-संस्थित थे । पैरों की अंगुलियाँ सरल, कोमल, परिपुष्ट–एवं सुसंगत थीं । अंगुलियों के नख समुन्नत, रतिद, पतले, ताम्र वर्ण के हलके लाल, शुचि, स्निग्ध थे । उन के जंघा–युगल रोमरहित, वृत्त, रम्य-संस्थान युक्त, उत्कृष्ट, प्रशस्त लक्षण युक्त, अद्वेष्य थे । उन के जानु-मंडल सुनिर्मित, सुगूढ तथा अनुपलक्ष्य थे, सुदृढ स्नायु-बंधनों से युक्त थे । उन के ऊरु केले के स्तंभ जैसे आकार से भी अधिक सुन्दर, घावों के चिह्नों से रहित, सुकुमार, सुकोमल, मांसल, अविरल, सम, सदृश-परिमाण युक्त, सुगठित, सुजात, वृत्त, गोल, पीवर, निरंतर थे । उनके श्रोणिप्रदेश अखंडित द्यूत-फलक जैसे आकार युक्त प्रशस्त, विस्तीर्ण तथा भारी थे । विशाल, मांसल, सुगठित और अत्यन्त सुन्दर थे । उन के देह के मध्यभाग वज्ररत्न जैसे सुहावने, उत्तम

लक्षण युक्त, विकृत उदर रहित, त्रिवली युक्त, गोलाकार एवं पतले थे । उन की रोमराजियाँ सरल, सम, संहित, उत्तम, पतली, कृष्ण वर्णयुक्त, चिकनी, आदेय, लालित्यपूर्ण, तथा सुरचित, सुविभक्त, कान्त, शोभित और रुचिकर थीं । नाभि गंगा के भंवर की तरह गोल, घुमावदार, सुन्दर, विकसित होते कमलों के समान विकट थीं । उन के कुक्षिप्रदेश, अस्पष्ट, प्रशस्त थे । पसवाडे सन्नत, संगत, सुनिष्पन्न, मनोहर थे । देहयष्टियाँ मांसलता लिए थीं, वे देदीप्यमान, निर्मल, सुनिर्मित, निरुपहत थीं । उनके स्तन स्वर्ण-घट सदृश थे, परस्पर समान, संहित से, सुन्दर अग्रभाग युक्त, सम श्रेणिक, गोलाकार, अभ्युन्नत, कठोर तथा स्थूल थे । भुजाएं सर्प की ज्यों क्रमशः नीचे की ओर पतली, गाय की पूँछ की ज्यों गोल, परस्पर समान, नमित आदेय तथा सुललित थीं । नख तांबे की ज्यों कुछ-कुछ लाल थे । यावत् वे सुन्दर, दर्शनीया, अभिरूपा एवं प्रतिरूपा थी ।

भरतक्षेत्र के मनुष्य ओघस्वर, मधुर स्वर युक्त, क्रौंच स्वर से युक्त तथा नन्दी स्वर युक्त थे । उनका स्वर एवं घोष या गर्जना सिंह जैसी जोशीली थी । स्वर तथा घोष में निराली शोभा थी । देह में अंग-अंग प्रभा से उद्योतित थे। वे वज्रऋषभनाराच संहनन, समचौरस संस्थानवाले थे । चमड़ी में किसी प्रकार का आतंक नहीं था । वे देह के अन्तर्वर्ती पवन के उचित वेग, कंक पक्षी की तरह निर्दोष गुदाशय से युक्त एवं कबूतर की तरह प्रबल पाचनशक्ति वाले थे । उनके आपान-स्थान पक्षी की ज्यों निर्लेप थे । उन के पृष्ठभाग तथा ऊरु सुदृढ़ थे । वे छह हजार धनुष ऊंचे होते थे । मनुष्यों की पसलियों की दो सौ छप्पन हड्डियाँ होती थीं । उनकी साँस पद्म एवं उत्पल की-सी अथवा पद्म तथा कुष्ठ नामक गन्ध-द्रव्यों की-सी सुगन्ध लिए होती थी, जिससे उन के मुँह सदा सुवासित रहते थे । वे मनुष्य शान्त प्रकृति के थे । उन के जीवन में क्रोध, मान, माया और लोभ की मात्रा मन्द थी । उन का व्यवहार मृदु, सुखावह था । वे आलीन, गुप्त, चेष्टारत थे । वे भद्र, विनीत, अल्पेच्छ, संग्रह नहीं रखनेवाले, भवनों की आकृति के वृक्षों के भीतर बसनेवाले और ईच्छानुसार काम भोग भोगनेवाले थे ।

सूत्र - ३५

भगवन् ! उन मनुष्यों को कितने समय बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ? हे गौतम ! तीन दिन के बाद होती है । कल्पवृक्षों से प्राप्त पृथ्वी तथा पुष्प-फल का आहार करते हैं । उस पृथ्वी का आस्वाद कैसा होता है ? गौतम ! गुड़, खांड़, शक्कर, मत्स्यंडिका, राब, पर्पट, मोदक, मृणाल, पुष्पोत्तर, पद्मोत्तर, विजया, महाविजया, आकाशिका, आदर्शिका, आकाशफलोपमा, उपमा तथा अनुपमा, उस पृथ्वी का आस्वाद इनसे इष्टतर यावत् अधिक मनोगम्य होता है ।

भगवन् ! उन पुष्पों और फलों का आस्वाद कैसा होता है ? गौतम ! तीन समुद्र तथा हिमवान् पर्यन्त छह खंड़ के साम्राज्य के अधिपति चक्रवर्ती सम्राट् का भोजन एक लाख स्वर्ण-मुद्राओं के व्यय से निष्पन्न होता है । वह कल्याणकर, प्रशस्त वर्ण यावत् प्रशस्त स्पर्शयुक्त होता है, आस्वादनीय, विस्वादनीय, दीपनीय, दर्पणीय, मदनीय, बृंहणीय, उपचित एवं प्रह्लादनीय; ऐसे उन पुष्पों एवं फलों का आस्वाद उस भोजन से इष्टतर होता है ।

सूत्र - ३६

भगवन् ! वे मनुष्य वैसा आहार का सेवन करते हुए कहाँ निवास करते हैं ? हे गौतम ! वे मनुष्य वृक्ष-रूप घरों में निवास करते हैं । उन वृक्षों का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! वे वृक्ष कूट, प्रेक्षागृह, छत्र, स्तूप, तोरण, गोपूर, वेदिका, चोप्फाल, अट्टालिका, प्रासाद, हर्म्य, हवेलियाँ, गवाक्ष, वालाग्रपोतिका तथा वलभीगृह सदृश संस्थान –संस्थित हैं । इस भरतक्षेत्र में और भी बहुत से ऐसे वृक्ष हैं, जिनके आकार उत्तम, विशिष्ट भवनों जैसे हैं, जो सुखप्रद शीतल छाया युक्त हैं ।

सूत्र - ३७

भगवन् ! उस समय भरतक्षेत्र में क्या घर होते हैं ? क्या गेहापण-बाजार होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता। उन मनुष्यों के वृक्ष ही घर होते हैं । क्या उस समय भरतक्षेत्र में ग्राम यावत् सन्निवेश होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं

होता । वे मनुष्य स्वभावतः यथेच्छ-विचरणशील होते हैं । क्या उस समय भरतक्षेत्र में असि, मषि, कृषि, वणिक्-कला, पण्य अथवा व्यापार-कला होती है ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । वे मनुष्य असि आदि जीविका से विरहित होते हैं । भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में चाँदी, सोना, कांसी, वस्त्र, मणियाँ, मोती, शंख, शिला, रक्तरत्न, ये सब होते हैं ? हाँ गौतम ! ये सब होते हैं, किन्तु उन मनुष्यों के परिभोग में नहीं आते ।

क्या उस समय भरतक्षेत्र में राजा, युवराज, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति और सार्थवाह होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । वे मनुष्य ऋद्धि-वैभव तथा सत्कार आदि से निरपेक्ष होते हैं । भगवन्! क्या उस समय भरतक्षेत्र में दास, प्रेष्य, शिष्य, भृतक, भागिक, हिस्सेदार तथा कर्मकर होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । वे मनुष्य स्वामी-सेवक भाव से अतीत होते हैं । क्या उस समय भरतक्षेत्र में माता, पिता, भाई, बहिन, पत्नी, पुत्र, पुत्री तथा पुत्र-वधू ये सब होते हैं ? गौतम ! ये सब वहाँ होते हैं, परन्तु उन मनुष्यों का उनमें तीव्र प्रेम-बन्ध उत्पन्न नहीं होता । क्या उस समय भरतक्षेत्र में अरि, वैरिक, घातक, वधक, प्रत्यनीक अथवा प्रत्यमित्र होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । वे मनुष्य वैरानुबन्ध-रहित होते हैं–क्या उस समय भरतक्षेत्र में मित्र, वयस्य, साथी, ज्ञातक, संघाटिक, मित्र, सुहृद् अथवा सांगतिक होते हैं ? गौतम ! ये सब वहाँ होते हैं, परन्तु उन मनुष्यों का उनमें तीव्र राग-बन्धन उत्पन्न नहीं होता ।

भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में आवाह, विवाह, श्राद्ध-लोकानुगत मृतक-क्रिया तथा मृत-पिण्ड-निवेदन होते हैं ? आयुष्मन् श्रमण गौतम ! ये सब नहीं होते । वे मनुष्य आवाह, विवाह, यज्ञ, श्राद्ध, स्थालीपाक तथा मृत-पिंड-निवेदन से निरपेक्ष होते हैं ? क्या उस समय भरतक्षेत्र में इन्द्रोत्सव, स्कन्दोत्सव, नागोत्सव, यक्षोत्सव, कूपोत्सव, तडागोत्सव, द्रहोत्सव, नद्युत्सव, वृक्षोत्सव, पर्वतोत्सव, स्तूपोत्सव तथा चैत्योत्सव होते हैं ? गौतम ! ये नहीं होते । वे मनुष्य उत्सवों से निरपेक्ष होते हैं । क्या उस समय भरतक्षेत्र में नट, नर्तक, जल्ल, मल्ल, मौष्टिक, विडंबक, कथक, प्लवक अथवा लासक हेतु लोग एकत्र होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । क्योंकि उन मनुष्यों के मन में कौतूहल देखने की उत्सुकता नहीं होती । भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में शकट, रथ, यान, युग्य, गिल्लि, थिल्लि, शिबिका तथा स्यन्दमानिका होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता, क्योंकि वे मनुष्य पादचार-विहारी होते हैं । क्या उस समय भरतक्षेत्र में गाय, भैंस, बकरी, भेड़ होते हैं ? गौतम ! ये पशु होते हैं किन्तु उन मनुष्यों के उपयोग में नहीं आते । क्या उस समय भरतक्षेत्र में घोड़े, ऊंट, हाथी, गाय, गवय, बकरी, भेड़, प्रश्रय, पशु, मृग, वराह, रुरु, शरभ, चँवर, शबर, कुरंग तथा गोकर्ण होते हैं ? गौतम ! ये होते हैं, किन्तु उन मनुष्यों के उपयोग में नहीं आते । क्या उस समय भरतक्षेत्र में सिंह, व्याघ्र, वृक, द्वीपिक, ऋच्छ, तरक्ष, व्याघ्र, शृगाल, बिडाल, शुनक, कोकन्तिक, कोलशुनक ये सब होते हैं ? गौतम ! ये सब होते हैं, पर वे उन मनुष्यों को आबाधा, व्याबाधा नहीं पहुँचाते और न उनका छविच्छेद करते हैं । क्योंकि वे श्वापद प्रकृति से भद्र होते हैं ।

क्या उस समय भरतक्षेत्र में शाली, व्रीहि, गेहूँ, जी, यवयव, कलाय, मसूर, मूँग, उड़द, तिल, कुलथी, निष्पाव, चौला, अलसी, कुसुम्भ, कोद्रव, वरक, रालक, सण, सरसों, मूलक ये सब होते हैं ? गौतम ! ये होते हैं, पर उन मनुष्यों के उपयोग में नहीं आते । क्या उस समय भरतक्षेत्र में गर्त, दरी, अवपात, प्रपात, विषम, कर्दममय स्थान–ये सब होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । उस समय भरतक्षेत्र में बहुत समतल तथा रमणीय भूमि होती है । वह मुरज के ऊपरी भाग आदि की ज्यों एक समान होती है । क्या उस समय भरतक्षेत्र में स्थाणु, शाखा, ठूंठ, काँटे, तृणों का कचरा–ये होते हैं । गौतम ! ऐसा नहीं होता । वह इन सबसे रहित होती है । क्या उस समय भरतक्षेत्र में डांस, मच्छर, जूंयें, लीखें, खटमल तथा पिस्सू होते हैं ? भगवन् ! ऐसा नहीं होता । वह भूमि डांस आदि उपद्रव-विरहित होती है । क्या उस समय भरतक्षेत्र में साँप और अजगर होते हैं ? गौतम ! होते हैं, पर वे मनुष्यों के लिए आबाधाजनक इत्यादि नहीं होते । आदि प्रकृति से भद्र होते हैं ।

भगवन् ! क्या उस समय भरतक्षेत्र में डिम्ब, डमर, कलह, बोल, क्षार, वैर, महायुद्ध, महासंग्राम, महाशस्त्र-पतन, महापुरुष-पतन तथा महारुधिर-निपतन ये सब होते हैं ? गौतम ! ऐसा नहीं होता । वे मनुष्य वैरानुबन्ध-से

रहित होते हैं । क्या उस समय भरतक्षेत्र में दुर्भूत, कुल-रोग, ग्राम-रोग, मंडल-रोग, पोट्ट-रोग, शीर्ष-वेदना, कर्ण-वेदना, ओष्ठ-वेदना, नेत्र-वेदना, नख-वेदना, दंतवेदना, खांसी, श्वास, शोष, दाह, अर्श, अजीर्ण, जलोदर, पांडुरोग, भगन्दर, ज्वर, इन्द्रग्रह, धनुर्ग्रह, स्कन्धग्रह, कुमारग्रह, यक्षग्रह, भूतग्रह आदि उन्मत्तता हेतु व्यन्तरदेव कृत् उपद्रव, मस्तक-शूल, हृदय-शूल, कुक्षि-शूल, योनि-शूल, गाँव यावत् सन्निवेश में मारि, जन-जन के लिए व्यसनभूत, अनार्य, प्राणि-क्षय-आदि द्वारा गाय, बैल आदि प्राणियों का नाश, जन-क्षय, कुल-क्षय–ये सब होते हैं ? गौतम ! वे मनुष्य रोग तथा आतंक–से रहित होते हैं ।

सूत्र - ३८

भगवन् ! उस समय भरतक्षेत्र में मनुष्यों की स्थिति–आयुष्य कितने काल का होता है ? गौतम ! आयुष्य जघन्य–कुछ कम तीन पल्योपम का तथा उत्कृष्ट–तीन पल्योपम का होता है । उस समय भरतक्षेत्र में मनुष्यों के शरीर कितने ऊंचे होते हैं ? गौतम ! जघन्यतः कुछ कम तीन कोस तथा उत्कृष्टतः तीन कोस ऊंचे होते हैं । उन मनुष्यों का संहनन कैसा होता है ? गौतम ! वज्र-ऋषभ-नाराच होता है । उन मनुष्यों का दैहिक संस्थान कैसा होता है ? गौतम ! सम-चौरस-संस्थान-संस्थित होते हैं । उनकी पसलियों २५६ होती हैं । वे मनुष्य अपना आयुष्य पूरा कर कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! जब उनका आयुष्य छह मास बाकी रहता है, वे एक युगल उत्पन्न करते हैं । उनचास दिन-रात उनका पालन तथा संगोपन कर वे खांस कर, छींक कर, जम्हाई लेकर शारीरिक कष्ट, व्यथा तथा परिताप का अनुभव नहीं करते हुए, काल-धर्म को प्राप्त होकर स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं । उन मनुष्यों का जन्म स्वर्ग में ही होता है । उस समय भरतक्षेत्र में कितने प्रकार के मनुष्य होते हैं ? गौतम ! छह प्रकार के, पद्मगन्ध, मृगगंध, अमम, तेजस्वी, सहनशील तथा शनैश्चारी ।

सूत्र - ३९

गौतम ! प्रथम आरक का जब चार सागर कोड़ा-कोड़ी काल व्यतीत हो जाता है, तब अवसर्पिणी काल का सुषमा नामक द्वितीय आरक प्रारम्भ हो जाता है । उसमें अनन्त वर्ण, अनन्त गंध, अनन्त रस, अनन्त स्पर्श, अनन्त संहनन, अनन्त संस्थान, अनन्त उच्चत्व, अनन्त आयु, अनन्त गुरु-लघु, अनन्त अगुरु-लघु, अनन्त उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुरुषकार-पराक्रम इनके सब पर्याय की अनन्तगुण परिहानि होती है । जम्बूद्वीप के अन्तर्गत इस अवसर्पिणी के सुषमा नामक आरक में उत्कृष्टता की पराकाष्ठा-प्राप्त समय में भरतक्षेत्र का कैसा आकार स्वरूप होता है ? गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय होता है । मुरज के ऊपरी भाग जैसा समतल होता है । सुषम-सुषमा के वर्णन समान जानना । उससे इतना अन्तर है–उस काल के मनुष्य ४००० धनुष की अवगाहना वाले होते हैं । शरीर की ऊंचाई दो कोस, पसलियाँ १२८, दो दिन बीतने पर भोजन की ईच्छा, यौगलिक बच्चों की चौंसठ दिन तक सार-सम्हाल, और आयु दो पल्योपम की होती है । शेष पूर्ववत् । उस समय चार प्रकार के मनुष्य होते हैं–प्रवर-श्रेष्ठ, प्रचुरजंघ, कुसुम सदृश सुकुमार, सुशमन ।

सूत्र - ४०

गौतम ! द्वितीय आरक का तीन सागरोपम कोड़ाकोड़ी काल व्यतीत हो जाता है, तब अवसर्पिणी-काल का सुषम-दुःषमा नामक तृतीय आरक प्रारम्भ होता है । उसमें अनन्त वर्ण-पर्याय यावत् पुरुषकार-पराक्रमपर्याय की अनन्त गुण परिहानि होती है । उस आरक को तीन भागों में विभक्त किया है–प्रथम त्रिभाग, मध्यम त्रिभाग, अंतिम त्रिभाग । भगवन् ! जम्बूद्वीप में इस अवसर्पिणी के सुषम-दुषमा आरक के प्रथम तथा मध्यम त्रिभाग का आकार-स्वरूप कैसा है ? गौतम ! उस का भूमिभाग बहुत सतल और रमणीय होता है । उसका पूर्ववत् वर्णन जानना । अन्तर इतना है–उस समय के मनुष्यों के शरीर की ऊंचाई २००० धनुष होती है । पसलियाँ चौंसठ, एक दिन के बाद आहार की ईच्छा, आयुष्य एक पल्योपम, ७९ रात-दिन अपने यौगलिक शिशुओं की सार-सम्हाल यावत् उन मनुष्यों का जन्म स्वर्ग में ही होता है ।

भगवन् ! उस आरक के पश्चिम त्रिभाग-में-भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होता है ? गौतम ! उस का भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय होता है । यावत् कृत्रिम एवं अकृत्रिम मणियों से उपशोभित होता है । उस आरक के अंतिम तीसरे भाग से भरतक्षेत्र में मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा होता है ? गौतम ! उन मनुष्यों के छहों प्रकार के संहनन, छहों प्रकार के संस्थान, शरीर की ऊंचाई सैकड़ों धनुष-परिमाण, आयुष्य जघन्यतः संख्यात वर्षों का तथा उत्कृष्टतः असंख्यात वर्षों का होता है । आयुष्य पूर्ण कर उनमें से कईं नरक-गति में, कईं तिर्यंच-गति में, कईं मनुष्य-गति में, कईं देव-गति में उत्पन्न होते हैं और सिद्ध होते हैं । यावत् समग्र दुःखों का अन्त करते हैं ।

सूत्र - ४१

उस आरक के अंतिम तीसरे भाग के समाप्त होने में जब एक पल्योपम का आठवां भाग अवशिष्ट रहता है तो ये पन्द्रह कुलकर उत्पन्न होते हैं–सुमति, प्रतिश्रुति, सीमंकर, सीमन्धर, क्षेमंकर, क्षेमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वान्, अभिचन्द्र, चन्द्राभ, प्रसेनजित्, मरुदेव, नाभि, ऋषभ ।

सूत्र - ४२

उन पन्द्रह कुलकरों में से सुमति, प्रतिश्रुति, सीमंकर, सीमन्धर तथा क्षेमंकर–इन पाँच कुलकरों की हकार नामक दंड़-नीति होती है । वे मनुष्य हकार-दंड़ से अभिहत होकर लज्जित, विलज्जित, व्यर्द्ध, भीतियुक्त, निःशब्द तथा विनयावनत हो जाते हैं । उनमें से क्षेमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वान् तथा अभिचन्द्र–इन पाँच कुलकरों की मकार दण्डनीति होती है । वे मनुष्य मकार-रूप दण्ड से लज्जित इत्यादि हो जाते हैं । उनमें से चन्द्राभ, प्रसेनजित्, मरुदेव, नाभि तथा ऋषभ–इन पाँच कुलकरों की धिक्कार नीति होती है । वे मनुष्य 'धिक्कार' –रूप दण्ड से अभिहत होकर लज्जित हो जाते हैं ।

सूत्र - ४३

नाभि कुलकर के, उन की भार्या मरुदेवी की कोख से उस समय ऋषभ नामक अर्हत्, कौशलिक, प्रथम राजा, प्रथम जिन, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थंकर चतुर्दिग्व्याप्त अथवा चार गतियों का अन्त करने में सक्षम धर्म-साम्राज्य के प्रथम चक्रवर्ती उत्पन्न हुए । कौशलिक अर्हत् ऋषभ ने बीस लाख पूर्व कुमार-अवस्था में व्यतीत किए। तिरेसठ लाख पूर्व महाराजावस्था में रहते हुए उन्होंने लेखन से लेकर पक्षियों की बोली तक का जिनमें पुरुषों की बहत्तर कलाओं, स्त्रियों के चौंसठ गुणों तथा सौ प्रकार के कार्मिक शिल्पविज्ञान का समावश है, प्रजा के हित के लिए उपदेश किया । अपने सौ पुत्रों को सौ राज्यों में अभिषिक्त किया । वे तियासी लाख पूर्व गृहस्थ-वास में रहे ।

ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास–चैत्र मास में प्रथम पक्ष–कृष्ण पक्ष में नवमी तिथि के उत्तरार्ध में–मध्याह्न के पश्चात् रजत, स्वर्ण, कोश, कोष्ठागार, बल, सेना, वाहन, पुर, अन्तःपुर, धन, स्वर्ण, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिला, राजपट्ट आदि, प्रवाल, पद्मराग आदि लोक के सारभूत पदार्थों का परित्याग कर, उनसे ममत्व भाग हटाकर अपने दायिक, जनों में बंटवारा कर वे सुदर्शना नामक शिबिका में बैठे । देवों, मनुष्यों तथा असुरों की परिषद् उनके साथसाथ चली । शांखिक, चाक्रिक, लांगलिक, मुखमांगलिक, पुष्पमाणव, भाग, चारण आदि स्तुतिगायक, वर्धमानक, आख्यायक, लंख, मंख, घाण्टिक, पीछे-पीछे चले ।

वे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोरम, उदार, दृष्टि से वैशद्ययुक्त, कल्याण, शिव, धन्य, मांगल्य, सश्रीक, हृदयगमनीय, सुबोध, हृदय प्रह्लादनीय, कर्ण-मननिर्वृतिकार, अनुपरुक्त, अर्थशतिक, वाणी द्वारा वे निरन्तर उनका इस प्रकार अभिनन्दन तथा अभिस्तवन करते थे–जगन्नंद ! भद्र ! प्रभुवर ! आपकी जय हो, आपकी जय हो । आप धर्म के प्रभाव से परिषहों एवं उपसर्गों से अभीत रहें, भय, भैरव का सहिष्णुता पूर्वक सामना करने में सक्षम रहें । आपकी धर्मसाधना निर्विघ्न हो । उन आकुल पौरजनों के शब्दों से आकाश आपूर्ण था । इस स्थिति में भगवान् ऋषभ राजधानी के बीचोंबीच होते हुए निकले । सहस्रों नर-नारी अपने नेत्रों से बार-बार उनके दर्शन कर रहे थे, यावत् वे घरों की हजारों पंक्तियों को लांघते हुए आगे बढ़े ।

सिद्धार्थवन, जहाँ वे गमनोद्यत थे, की ओर जानेवाले राजमार्ग पर जल का छिड़काव कराया था । वह झाड़-बुहारकर स्वच्छ कराया हुआ था, सुरभित जल से सिक्त था, शुद्ध था, वह स्थान-स्थान पर पुष्पों से सजाया गया था, घोड़ों, हाथियों तथा रथों के समूह, पदातियों-के पदाघात से-जमीन पर जमी हुई धूल धीरे-धीरे ऊपर की ओर उड़ रही थी । इस प्रकार चलते वे सिद्धार्थवन उद्यान था, जहाँ उत्तम अशोकवृक्ष था, वहाँ आये । उस उत्तम वृक्ष के नीचे शिबिका को रखवाया, नीचे उतरकर स्वयं अपने गहने उतारे । स्वयं आस्थापूर्वक चार मुष्टियों द्वारा अपने केशों को लोच किया । निर्जन बेला किया । उत्तराषाढा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर अपने चार उग्र, भोग, राजन्य, क्षत्रिय के साथ एक देव-दूष्य ग्रहण कर मुण्डित होकर अगार से-अनगारिता में प्रव्रजित हो गये

सूत्र - ४४

कौशलिक अर्हत् ऋषभ कुछ अधिक एक वर्ष पर्यन्त वस्त्रधारी रहे, तत्पश्चात् निर्वस्त्र । जब से वे प्रव्रजित हुए, वे कायिक परिकर्म रहित, दैहिक ममता से अतीत, देवकृत् यावत् जो उपसर्ग आते, उन्हें वे सम्यक् भाव से सहते, प्रतिकूल अथवा अनुकूल परिषह को भी अनासक्त भाव से सहते, क्षमाशील रहते, अविचल रहते । भगवान् ऐसे उत्तम श्रमण थे कि वे गमन, हलन-चलन आदि क्रिया यावत् मल-मूत्र, खंखार, नाक आदि का मल त्यागना-इन पाँच समितियों से युक्त थे । वे मनसमित, वाक्समित तथा कायसमित थे । वे मनोगुप्त, यावत् गुप्त ब्रह्मचारी, अक्रोध यावत् अलोभ, प्रशांत, उपशांत, परिनिर्वृत, छिन्न-स्रोत, निरुपलेप, कांसे के पात्र जैसे आसक्ति रहित, शंखवत् निरंजन, राग आदि की रंजकता से शून्य, जात्य विशोधित शुद्ध स्वर्ण के समान, जातरूप, दर्पणगत प्रतिबिम्ब की ज्यों प्रकट भाव- अनिगूहिताभिप्राय, प्रवंचना, छलना व कपट रहित शुद्ध भावयुक्त, कछुए की तरह गुप्तेन्द्रिय, कमल-पत्र के समान निर्लेप, आकाश के सदृश निरालम्ब, वायु की तरह निरालय, चन्द्र के सदृश सौम्य-दर्शन, सूर्य के सदृश तेजस्वी, पक्षी की ज्यों अप्रतिबद्धगामी, समुद्र के समान गंभीर मंदराचल की ज्यों अकंप, सुस्थिर, पृथ्वी के समान सर्व स्पर्शों को समभाव से सहने में समर्थ, जीव के समान अप्रतिहत थे ।

उन भगवान् ऋषभ के किसी भी प्रकार के प्रतिबन्ध नहीं थे । प्रतिबन्ध चार प्रकार का है-द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से तथा भाव से । द्रव्य से जैसे-ये मेरे माता, पिता, भाई, बहिन यावत् चिरपरिचित जन हैं, ये मेरे चाँदी, सोना, उपकरण हैं, अथवा अन्य प्रकार से संक्षेप में जैसे ये मेरे सचित्त, अचित्त और मिश्र हैं-इस प्रकार इनमें भगवान् का प्रतिबन्ध नहीं था-क्षेत्र से ग्राम, नगर, अरण्य, खेत, खल या खलिहान, घर, आँगन इत्यादि में उनका प्रतिबन्ध नहीं था । काल से स्तोक, लव, मुहूर्त्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर या और भी दीर्घकाल सम्बन्धी कोई प्रतिबन्ध उन्हें नहीं था । भाव से क्रोध, लोभ, भय, हास्य से उनका कोई लगाव नहीं था ।

भगवान् ऋषभ वर्षावास के अतिरिक्त हेमन्त के महीनों तथा ग्रीष्मकाल के महीनों के अन्तर्गत् गाँव में एक रात, नगर में पाँच रात प्रवास करते हुए हास्य, शोक, रति, भय तथा परित्रास-से वर्जित, ममता रहित, अहंकार रहित, लघुभूत, अग्रन्थ, वसूले द्वारा देह की चमड़ी छीले जाने पर भी वैसा करनेवाले के प्रति द्वेष रहित एवं किसी के द्वारा चन्दन का लेप किये जाने पर भी उस और अनुराग या आसक्ति से रहित, पाषाण और स्वर्ण में एक समान भावयुक्त, इस लोक में और परलोक में अप्रतिबद्ध-अतृष्ण, जीवन और मरण की आकांक्षा से अतीत, संसार को पार करने में समुद्यत, जीव-प्रदेशों के साथ चले आ रहे कर्म-सम्बन्ध को विच्छिन्न कर डालने में अभ्युत्थित रहते हुए विहरणशील थे ।

इस प्रकार विहार करते हुए-१००० वर्ष व्यतीत हो जाने पर पुरिमताल नगर के बाहर शकट मुख उद्यान में एक बरगद के वृक्ष के नीचे, ध्यानान्तरिका में फाल्गुण मास कृष्णपक्ष एकादशी के दिन पूर्वाह्न के समय, निर्जल तेले की तपस्या की स्थिति में चन्द्र संयोगाप्त उत्तराषाढा नक्षत्र में अनुत्तर तप, बल, वीर्य, विहार, भावना, क्षान्ति, क्षमाशीलता, गुप्ति, मुक्ति, तुष्टि, आर्जव, मार्दव, लाघव, स्फूर्तिशीलता, सच्चारित्र्य के निर्वाण-मार्ग रूप उत्तम फल से आत्मा को भावित करते हुए उनके अनन्त, अविनाशी, अनुत्तर, निर्व्याघात, सर्वथा अप्रतिहत, निरावरण, कृत्स्न, सकलार्थग्राहक, प्रतिपूर्ण, श्रेष्ठ केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हुए । वे जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हुए । वे गति,

आगति, कार्य-स्थिति, भव-स्थिति, मुक्त, कृत, प्रतिसेवित, आविष्कर्म, रहःकर्म, योग आदि के, जीवों तथा अजीवों के समस्त भावों के, मोक्ष-मार्ग के प्रति विशुद्ध भाव–इन सब के ज्ञाता, द्रष्टा हो गए । भगवान् ऋषभ निर्ग्रन्थों, निर्ग्रन्थियों को–पाँच महाव्रतों, उनकी भावनाओं तथा जीव-निकायों का उपदेश देते हुए विचरण करते थे ।

कौशलिक अर्हत् ऋषभ के चौरासी गण, चौरासी गणधर, ऋषभसेन आदि ८४००० श्रमण, ब्राह्मी, सुन्दरी आदि तीन लाख आर्यिकाएं, श्रेयांस आदि तीन लाख पाँच हजार श्रमणोपासक, सुभद्रा आदि पाँच लाख चौवन हजार श्रमणोपासिकाएं, जिन नहीं पर जिनसदृश सर्वाक्षर-संयोग-वेत्ता जिनवत् अवितथ-निरूपक ४७५० चतुर्दश–पूर्वधर, ९००० अवधिज्ञानी, २०००० जिन, २०६०० वैक्रियलब्धिधर, १२६५० विपुलमति–मनःपर्यवज्ञानी, १२६५० वादी तथा गति-कल्याणक, स्थितिकल्याणक, आगमिष्यद्भद्र, अनुत्तरौपपातिक २२९०० मुनि थे । कौशलिक अर्हत् ऋषभ के २०००० श्रमणों तथा ४०००० श्रमणियों ने सिद्धत्व प्राप्त किया–भगवान् ऋषभ के अनेक अंतेवासी अनगार थे । उनमें कईं एक मास यावत् कईं अनेक वर्ष के दीक्षा–पर्याय के थे । उनमें अनेक अनगार अपने दोनों घुटनों को ऊंचा उठाए, मस्तक को नीचा किये–ध्यान रूप कोष्ठ में प्रविष्ट थे ।

इस प्रकार वे अनगार संयम तथा तप से आत्मा को भावित–करते हुए अपनी जीवन-यात्रा में गतिशील थे । भगवान् ऋषभ की दो प्रकार की भूमि थी–युगान्तकर-भूमि तथा पर्यायान्तकर-भूमि । युगान्तकर-भूमि यावत् असंख्यात पुरुष-परम्परा-परिमित थी तथा पर्यायान्तकर भूमि अन्तमुहूर्त्त थी ।

सूत्र - ४५

भगवान् ऋषभ के जीवन में पाँच उत्तराषाढा नक्षत्र तथा एक अभिजित् नक्षत्र से सम्बद्ध घटनाएं हैं । चन्द्र-संयोगप्राप्त उत्तराषाढा नक्षत्र में उनका च्यवन–हुआ । उसी में जन्म हुआ । राज्याभिषेक हुआ । मुंडित होकर, घर छोड़कर अनगार बने । उसीमें केवलज्ञान, केवलदर्शन समुत्पन्न हुआ । भगवान् अभिजित नक्षत्र में परिनिर्वृत्त हुए ।

सूत्र - ४६

कौशलिक भगवान् ऋषभ वज्रऋषभनाराचसंहनन युक्त, समचौरससंस्थानसंस्थित तथा ५०० धनुष दैहिक ऊंचाई युक्त थे । वे २० लाख पूर्व तक कुमारावस्था में तथा ६३ लाख पूर्व महाराजावस्था में रहे । यों ८३ लाख पूर्व गृहवास में रहे । तत्पश्चात् मुंडित होकर अगारवास से अनगार-धर्म में प्रव्रजित हुए । १००० वर्ष छद्मस्थ-पर्याय में रहे । १००० वर्ष कम एक लाख पूर्व वे केवली-पर्याय में रहे । इस प्रकार एक लाख पूर्व तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर–चौरासी लाख पूर्व का परिपूर्ण आयुष्य भोगकर हेमन्त के तीसरे मास में, पाँचवे पक्ष में–माघ मास कृष्ण पक्ष में तेरस के दिन १०००० साधुओं से संपरिवृत्त अष्टापद पर्वत के शिखर पर छह दिनों के निर्जल उपवासमें पूर्वाह्न-काल में पर्यंकासन में अवस्थित, चन्द्र योग युक्त अभिजित् नक्षत्र में, जब सुषम-दुःषमा आरक में नवासी पक्ष बाकी थे, वे जन्म, जरा, मृत्यु के बन्धन छिन्नकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अंतकृत्, परिनिर्वृत्त सर्व-दुःख रहित हुए ।

जिस समय कौशलिक, अर्हत् ऋषभ कालगत हुए, जन्म, वृद्धावस्था तथा मृत्यु के बन्धन तोड़कर सिद्ध, वृद्ध तथा सर्व दुःख-विरहित हुए, उस समय देवेन्द्र, देवराज शक्र का आसन चलित हुआ । अवधिज्ञान का प्रयोग किया, भगवान् तीर्थंकर को देखकर वह यों बोला–जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् भरतक्षेत्र में कौशलिक, अर्हत् ऋषभ ने परिनिर्वाण प्राप्त कर लिया है, अतः अतीत, वर्तमान, अनागत देवराजों, देवेन्द्रों, शक्रों का यह जीत है कि वे तीर्थंकरों के परिनिर्वाण महोत्सव मनाएं । इसलिए मैं भी तीर्थंकर भगवान् का परिनिर्वाण-महोत्सव आयोजित करने हेतु जाऊं । यों सोचकर देवेन्द्र वन्दन-नमस्कार कर अपने ८४००० सामानिक देवों, ३३००० त्रायस्त्रिंशक देवों, परिवारोपेत अपनी आठ पट्टरानियों, तीन परिषदों, सात सेनाओं, चारों दिशाओं के ८४-८४ हजार आत्मरक्षक देवों और भी अन्य बहुत से सौधर्मकल्पवासी देवों एवं देवियों से संपरिवृत्त, उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चंड, जवन, उद्धत, शीघ्र तथा दिव्य गति से तिर्यक्-लोकवर्ती असंख्य द्वीपों एवं समुद्रों के बीच से होता हुआ जहाँ अष्टापद

पर्वत और जहाँ भगवान् तीर्थंकर का शरीर था, वहाँ आया । उसने उदास, आनन्द रहित, आँखों में आँसू भरे, तीर्थंकर के शरीर को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की । वैसा कर, न अधिक निकट न अधिक दूर स्थित होकर पर्युपासना की ।

उस समय उत्तरार्ध लोकाधिपति, २८ लाख विमानों के स्वामी, शूलपाणि, वृषभवाहन, निर्मल आकाश के रंग जैसा वस्त्र पहने हुए, यावत् यथोचित रूप में माला एवं मुकुट धारण किए हुए, नव-स्वर्ण-निर्मित मनोहर कुंडल पहने हुए, जो कानों से गालों तक लटक रहे थे, अत्यधिक समृद्धि, द्युति, बल, यश, प्रभाव तथा सुखसौभाग्य युक्त, देदीप्यमान शरीर युक्त, सब ऋतुओं के फूल से बनी माला, जो गले से घुटनों तक लटकती थी, धारण किए हुए, ईशानकल्प में ईशानावतंसक विमान की सुधर्मा सभा में ईशान-सिंहासन पर स्थित, अठ्ठाईस लाख वैमानिक देवों, अस्सी हजार सामानिक देवों, तेतीस त्रायस्त्रिंश-गुरुस्थानीय देवों, चार लोकपालों, परिवार सहित आठ पट्टरानियों, तीन परिषदों, सात सेनाओं, सात सेनापतियों, अस्सी-अस्सी हजार चारों दिशाओं के आत्मरक्षक देवों तथा अन्य बहुत से ईशानकल्पवासी देवों और देवियों का आधिपत्य, पुरापतित्व, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञेश्वरत्व, सेनापतित्व करता हुआ देवराज ईशानेन्द्र निरवच्छिन्न नाट्य, गीत, निपुण वादकों के वाद्य, विपुल भोग भोगता हुआ विहरणशील था । ईशान देवेन्द्र ने अपना आसन चलित देखा । वैसा देखकर अवधि-ज्ञान का प्रयोग किया । भगवान् तीर्थंकर को अवधिज्ञान द्वारा देखा । देखकर शक्रेन्द्र की ज्यों पर्युपासना की ।

ऐसे सभी देवेन्द्र अपने-अपने परिवार के साथ वहाँ आये । उसी प्रकार भवनवासियों के बीस इन्द्र, वाणव्यन्तरों के सोलह इन्द्र, ज्योतिष्कों के दो इन्द्र, अपने-अपने देव-परिवारों के साथ वहाँ–अष्टापद पर्वत पर आये

तथा देवराज, देवेन्द्र शक्र ने बहुत से भवनपति, वाणव्यन्तर तथा ज्योतिष्क देवों से कहा–देवानुप्रियों ! नन्दनवन से शीघ्र स्निग्ध, उत्तम गोशीर्ष चन्दन-काष्ठ लाओ । लाकर तीन चिताओं की रचना करो–एक भगवान् तीर्थंकर के लिए, एक गणधरों के लिए तथा एक बाकी के अनगारों के लिए । तब वे भवनपति आदि देव नन्दनवन से स्निग्ध, उत्तम गोशीर्ष चन्दन-काष्ठ लाये । चिताएं बनाई । तत्पश्चात् देवराज शक्रेन्द्र ने आभियोगिक देवों को कहा–देवानुप्रियों ! क्षीरोदक समुद्र से शीघ्र क्षीरोदक लाओ । वे आभियोगिक देव क्षीरोदक समुद्र से क्षीरोदक लाये । तदनन्तर देवराज शक्रेन्द्र ने तीर्थंकर के शरीर को क्षीरोदक से स्नान कराया । सरस, उत्तम गोशीर्ष चन्दन से उसे अनुलिप्त किया । हंस-सदृश श्वेत वस्त्र पहनाये । सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित किया । फिर उन भवनपति, वैमानिक आदि देवों ने गणधरों के शरीरों को तथा साधुओं के शरीरों को क्षीरोदक से स्नान कराया । स्निग्ध, उत्तम गोशीर्ष चन्दन से अनुलिप्त किया । दो दिव्य देवदूष्य-धारण कराये । सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित किया ।

तत्पश्चात् देवराज शक्रेन्द्र ने उन अनेक भवनपति, वैमानिक आदि देवों से कहा–देवानुप्रियों ! ईहामृग, वृषभ, तुरंग यावत् वनलता–के चित्रों से अंकित तीन शिबिकाओं की विकुर्वणा करो–एक भगवान् तीर्थंकर के लिए, एक गणधरों के लिए तथा एक अवशेष साधुओं के लिए । इस पर उन बहुत से भवनपति, वैमानिकों आदि देवों ने तीन शिबिकाओं की विकुर्वणा की । तब उदास, खिन्न एवं आँसू भरे देवराज देवेन्द्र शक्र ने भगवान् तीर्थंकर के, जिन्होंने जन्म, जरा तथा मृत्यु को विनष्ट कर दिया था–शरीर को शिबिका पर आरूढ किया । चिता पर रखा । भवनपति तथा वैमानिक आदि देवों ने गणधरों एवं साधुओं के शरीर शिबिका पर आरूढ कर उन्हें चिता पर रखा ।

देवराज शक्रेन्द्र ने तब अग्निकुमार देवों को कहा–देवानुप्रियों ! तीर्थंकर आदि को चिता में, शीघ्र अग्निकाय की विकुर्वणा करो । इस पर उदास, दुःखित तथा अश्रुपूरित नेत्रवाले अग्निकुमार देवों ने तीर्थंकर की चिता, गणधरों की चिता तथा अनगारों की चिता में अग्निकाय की विकुर्वणा की । देवराज शक्र ने फिर वायुकुमार देवों को कहा–वायुकाय की विकुर्वणा करो, अग्नि प्रज्वलित करो, तीर्थंकर के देह को, गणधरों तथा अनगारों के देह को ध्मापित करो । विमनस्क, शोकान्वित तथा अश्रुपूरित नेत्रवाले वायुकुमार देवों ने चिताओं में वायुकाय की विकुर्वणा की, तीर्थंकर आदि के शरीर ध्मापित किये । देवराज शक्रेन्द्र ने बहुत से भवनपति तथा वैमानिक आदि देवों से कहा–देवानुप्रियों ! तीर्थंकर-चिता, गणधर-चिता तथा अनगार-चिता में विपुल परिमाणमय अगर, तुरुष्क तथा

अनेक घट परिमित घृत एवं मधु ड़ालो । तब उन भवनपति आदि देवों ने घृत एवं मधु ड़ाला ।

देवराज शक्रेन्द्र ने मेघकुमार देवों को कहा–देवानुप्रियों ! तीर्थंकर-चिता, गणधर-चिता तथा अनगार-चिता को क्षीरोदक से निर्वापित करो । मेघकुमार देवों ने निर्वापित किया । तदनन्तर देवराज शक्रेन्द्र ने भगवान् तीर्थंकर के ऊपर की दाहिनी डाढ़ ली । असुराधिपति चमरेन्द्र ने नीचे की दाहिनी डाढ़ ली । वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बली ने नीचे की बाई डाढ़ ली । बाकी के भवनपति, वैमानिक आदि देवों ने यथायोग्य अंगों की हड्डियाँ लीं । कईंयों ने जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति से, कईंयों ने यह समुचित पुरातन परंपरानुगत व्यवहार है, यह सोचकर तथा कईंयों ने इसे अपना धर्म मानकर ऐसा किया । तदनन्तर देवराज, देवेन्द्र शक्र ने भवनपति एवं वैमानिक आदि देवों को यथायोग्य यों कहा–देवानुप्रियों ! तीन सर्व रत्नमय विशाल स्तूपों का निर्माण करो–एक भगवान् तीर्थंकर के, एक गणधरों के, तथा एक अवशेष अनगारों के चिता-स्थान पर । उन बहुत से देवों ने वैसा ही किया । फिर उन अनेक भवनपति, वैमानिक आदि देवों ने तीर्थंकर भगवान् का परिनिर्वाण महोत्सव मनाया । वे नन्दीश्वर द्वीप में आ गये ।

देवराज, देवेन्द्र शक्र ने पूर्व दिशा में स्थित अंजनक पर्वत पर अष्टदिवसीय परिनिर्वाण-महोत्सव मनाया । देवराज, देवेन्द्र शक्र के चार लोकपालों ने चारों दधिमुख पर्वतों पर, देवराज ईशानेन्द्र ने उत्तरदिशावर्ती अंजनक पर्वत पर, उसके लोकपालों ने चारों दधिमुख पर्वतों पर, चमरेन्द्र ने दक्षिण दिशावर्ती अंजनक पर्वत पर, उसके लोकपालों ने पर्वतों पर, बलि ने पश्चिम दिशावर्ती अंजनक पर्वत पर और उसके लोकपालों ने दधिमुख पर्वतों पर परिनिर्वाण-महोत्सव मनाया । इस प्रकार बहुत से भवनपति, वाणव्यन्तर आदि ने अष्टदिवसीय महोत्सव मनाये । ऐसा कर वे जहाँ-तहाँ अपने विमान, भवन, सुधर्मासभाएं तथा अपने माणवक नामक चैत्यस्तंभ थे, वहाँ आये । आकर जिनेश्वर देव की डाढ़ आदि अस्थियों को वज्रमय समुद्गक में रखा । अभिनव, उत्तम मालाओं तथा सुगन्धित द्रव्यों से अर्चना की । अपने विपुल सुखोपभोगमय जीवन में धुलमिल गये ।

सूत्र - ४७

गौतम ! तीसरे आरक का दो सागरोपम कोड़ाकोड़ी काल व्यतीत हो जाने पर अवसर्पिणी काल का दुःषम –सुषमा नामक चौथा आरक प्रारम्भ होता है । उसमें अनन्त वर्णपर्याय आदि का क्रमशः ह्रास होता जाता है । भगवन् ! उस समय भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होता है ? गौतम ! उस समय भरतक्षेत्र का भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय होता है यावत् मणियों से उपशोभित होता है ।

उस समय मनुष्यों का आकार स्वरूप कैसा होता है ? गौतम ! उन मनुष्यों के छह प्रकार के संहनन होते हैं, छह प्रकार के संस्थान होते हैं । उनकी ऊंचाई अनेक धनुष-प्रमाण होती है । जघन्य अन्तमुहूर्त्त का तथा उत्कृष्ट पूर्वकोटि का आयुष्य भोगकर उनमें से कईं नरक-गति में, यावत् कईं देव-गति में जाते हैं, कईं सिद्ध, बुद्ध होकर समस्त दुःखों का अन्त करते हैं । उस काल में तीन वंश उत्पन्न होते हैं–अर्हत्-वंश, चक्रवर्ती-वंश तथा दशारवंश–बलदेव-वासुदेव-वंश । उस काल में तेईस तीर्थंकर, ग्यारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव तथा नौ वासुदेव उत्पन्न होते हैं ।

सूत्र - ४८

गौतम ! चतुर्थ आरक के ४२००० वर्ष कम एक सागरोपम कोड़ाकोड़ी काल व्यतीत हो जाने पर अव-सर्पिणी-काल का दुःषमा नामक पंचम आरक प्रारंभ होता है । उसमें अनन्त वर्णपर्याय आदि का क्रमशः ह्रास होता जाता है । भगवन् ! उस काल में भरतक्षेत्र का कैसा आकार-स्वरूप होता है ? गौतम ! भरतक्षेत्र का भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय होता है यावत् मणियों द्वारा उपशोभित होता है ।

उस काल में भरतक्षेत्र के मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा होता है ? गौतम ! उस समय भरतक्षेत्र के मनुष्यों के छह प्रकार के संहनन एवं संस्थान होते हैं । उनकी ऊंचाई सात हाथ की होती है । वे जघन्य अन्तमुहूर्त्त तथा उत्कृष्ट कुछ अधिक सौ वर्ष के आयुष्य का भोग करते हैं । कईं नरक-गति में, यावत् तिर्यंच देव-गति में परिनिर्वृत्त होते हैं । उस काल के अन्तिम तीसरे भाग में गणधर्म, पाखण्ड-धर्म, राजधर्म, जाततेज तथा चारित्र-धर्म

विच्छिन्न हो जाता है ।

सूत्र - ४९

गौतम ! पंचम आरक के २१००० वर्ष व्यतीत हो जाने पर अवसर्पिणी काल का दुःषम-दुःषमा नामक छठ्ठा आरक प्रारंभ होगा । उसमें अनन्त वर्णपर्याय, गन्धपर्याय, समपर्याय तथा स्पर्शपर्याय आदि का क्रमशः ह्रास होता जायेगा । भगवन् ! जब वह आरक उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर पहुँचा होगा, तो भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होगा ? गौतम ! उस समय दुःखार्त्ततावश लोगों में हाहाकार मच जायेगा, अत्यन्त दुःखोद्विग्नता से चीत्कार फैल जायेगा और विपुल जन-क्षय के कारण जन-शून्य हो जायेगा । तब अत्यन्त कठोर, धूल से मलिन, दुस्सह, व्याकुल, भयंकर वायु चलेंगे, संवर्तक वायु चलेंगे । दिशाएं अभीक्ष्ण धुंआ छोड़ती रहेंगी । वे सर्वथा रज से भरी, धूल से मलिन तथा घोर अंधकार के कारण प्रकाशशून्य हो जाएंगी । चन्द्र अधिक अपथ्य शीत छोड़ेंगे । सूर्य अधिक असह्य रूप में तपेंगे । गौतम ! उसके अनन्तर अरसमेघ, विरसमेघ, क्षारमेघ, खात्रमेघ, अग्निमेघ, विद्युन्मेघ, विषमेघ, व्याधि, रोग, वेदनोत्पादक जलयुक्त, अप्रिय जलयुक्त मेघ, तूफानजनित तीव्र मधुर जलधारा छोड़नेवाले मेघ निरंतर वर्षा करेंगे ।

भरतक्षेत्र में ग्राम, आकार, नगर, खेट कर्वट, मडम्ब, द्रोणमुख, पट्टन, आश्रमगत जनपद, चौपाये प्राणी, खेचर, पक्षियों के समूह, त्रस जीव, बहुत प्रकार के वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लताएं, बेलें, पत्ते, अंकुर इत्यादि बादर वानस्पतिक जीव, वनस्पतियाँ, औषधियाँ–इन सबका वे विध्वंस कर देंगे । वैताढ्य आदि शाश्वत पर्वतों के अतिरिक्त अन्य पर्वत, गिरि, डूंगर, उन्नत स्थल, टींबे, भ्राष्ट्र, पठार, इन सब को तहस-नहस कर डालेंगे । गंगा और सिन्धु महानदी के अतिरिक्त जल के स्रोतों, झरनों, विषमगर्त, नीचे-ऊंचे जलीय स्थानों को समान कर देंगे । भगवन्! उस काल में भरतक्षेत्र की भूमि का आकार-स्वरूप कैसा होगा ? गौतम ! भूमि अंगारभूत, मुर्मुरभूत, क्षारिकभूत, तप्तकवेल्लुकभूत, ज्वालामय होगी । उसमें धूलि, रेणु, पंक और प्रचुर कीचड़ की बहुलता होगी । प्राणियों का उस पर चलना बड़ा कठिन होगा । उस काल में भरतक्षेत्र में मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा होगा ?

गौतम ! उस समय मनुष्यों का रूप, रंग, गंध, रस तथा स्पर्श अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ तथा अमनोऽम होगा । उनका स्वर हीन, दीन, अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोगम्य और अमनोज्ञ होगा । उनका वचन अनादेय–होगा । वे निर्लज्ज, कूट, कपट, कलह, बन्ध तथा वैर में निरत होंगे । मर्यादाएं लाँघने, तोड़ने में प्रधान, अकार्य करने में सदा उद्यत एवं गुरुजन के आज्ञापालन और विनय से रहित होंगे। वे विकलरूप, काने, लंगड़े, चतुरंगुलिक आदि, बढ़े हुए नख, केश तथा दाढ़ी-मूँछ युक्त, काले, कठोर स्पर्शयुक्त, सलवटों के कारण फूटे हुए से मस्तक युक्त, धूएं के से वर्ण वाले तथा सफेद केशों से युक्त, अत्यधिक स्नायुओं परिबद्ध, झुर्रियों से परिव्याप्त अंग युक्त, जरा-र्जर बूढ़ों के सदृश, प्रविल तथा परिशटित दन्तश्रेणी युक्त, घड़े के विकृत मुख सदृश, असमान नेत्रयुक्त, वक्र-टेढ़ी नासिकायुक्त, भीषण मुखयुक्त, दाद, खाज, सेहुआ आदि से विकृत, कठोर धर्मयुक्त, चित्रल अवयवमय देहयुक्त, चर्मरोग से पीड़ित, कठोर, खरोंची हुई देहयुकत्टोलगति, विषम, सन्धि बन्धनयुक्त, अयथावत् स्थित अस्थियुक्त, पौष्टिक भोजनरहित, शक्तिहीन, कुत्सित ऐसे संहनन, परिमाण, संस्थान रूप, आश्रय, आसन, शय्या तथा कुत्सित भोजनसेवी, अशुचि, व्याधियों से पीड़ित, विह्वल गतियुक्त, उत्साह-रहित, सत्त्वहीन, निश्श्रेष्ट, नष्टतेज, निरन्तर शीत, उष्ण, तीक्ष्ण, कठोर वायु से व्याप्त शरीरयुक्त, मलिन धूलि से आवृत्त देहयुक्त, बहुत क्रोधी, अहंकारी, मायावी, लोभी तथा मोहमय, अत्यधिक दुःखी, प्रायः धर्मसंज्ञा–तथा सम्यक्त्व से परिभ्रष्ट होंगे । उत्कृष्टतः उनका देह-परिमाण-एक हाथ होगा । उनका अधिकतम आयुष्य–स्त्रियों का सोलह वर्ष का तथा पुरुषों का बीस वर्ष का होगा । अपने बहुपुत्र-पौत्रमय परिवार में उनका बड़ा प्रणय रहेगा । वे गंगा, सिन्धु के तट तथा वैताढ्य पर्वत के आश्रय में बिलों में रहेंगे ।

भगवन् ! वे मनुष्य क्या आहार लेंगे ? गौतम ! उस काल में गंगा और सिन्धु दो नदियाँ रहेंगी । रथ चलने के लिए अपेक्षित पथ जितना विस्तार होगा । रथचक्र के छेद जितना गहरा जल रहेगा । उसमें अनेक मत्स्य तथा

कच्छप रहेंगे । उस जल में सजातीय अप्काय के जीव नहीं होंगे । वे मनुष्य सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय अपने बिलों से तेजी से दौड़ कर निकलेंगे । मछलियों और कछुओं को पकड़ेंगे, जमीन पर लायेंगे । रात में शीत द्वारा तथा दिन में आतप द्वारा उनको रसरहित बनायेंगे । वे अपनी जठराग्नि के अनुरूप उन्हें आहारयोग्य बना लेंगे । इस आहार-वृत्ति द्वारा वे २१००० वर्ष पर्यन्त अपना निर्वाह करेंगे । वे मनुष्य, जो निःशील, आचाररहित, निर्वृत्त, निर्मर्याद, प्रत्याख्यान, पौषध व उपवासरहित होंगे, प्रायः मांस-भोजी, मत्स्य-भोजी, यत्र-तत्र अवशिष्ट क्षुद्र धान्यादिक-भोजी, कुणिपभोजी आदि दुर्गन्धित पदार्थ-भोजी होंगे । अपना आयुष्य समाप्त होने पर मरकर वे प्रायः नरकगति और तिर्यंचगति में उत्पन्न होंगे । तत्कालवर्ती सिंह, बाघ, भेड़िए, चीत्ते, रींछ, तरक्ष, गेंड़े, शरभ, शृगाल, बिलाव, कुत्ते, जंगली कुत्ते या सूअर, खरगोश, चीतल तथा चिल्ललक, जो प्रायः मांसाहारी, मत्स्याहारी, क्षुद्राहारी तथा कुणपाहारी होते हैं, मरकर प्रायः नरकगति और तिर्यंचगति में उत्पन्न होंगे । भगवन् ! ढ़ंक, कंक, पीलक, मद्गुक, शिखी, जो प्रायः मांसाहारी हैं, मरकर प्रायः नरकगति और तिर्यंचगति में जायेंगे ।

सूत्र - ५०

गौतम ! अवसर्पिणी काल के छठे आरक के २१००० वर्ष व्यतीत हो जाने पर आनेवाले उत्सर्पिणी-काल का श्रावण मास, कृष्ण पक्ष प्रतिपदा के दिन बालव नामक करण में चन्द्रमा के साथ अभिजित् नक्षत्र का योग होने पर चतुर्दशविध काल के प्रथम समय में दुषम-दुषमा आरक प्रारम्भ होगा । उसमें अनन्त वर्णपर्याय आदि अनन्त-गुण–क्रम से परिवर्द्धित हो जायेंगे । भगवन् ! उस काल में भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होगा ? गौतम ! उस समय हाहाकारमय, चीत्कारमय स्थिति होगी, जैसा अवसर्पिणी-काल के छठे आरक के सन्दर्भ में वर्णन किया गया है । उत्सर्पिणी के प्रथम आरक दुःषम-दुःषमा के इक्कीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर उसका दुःषमा नामक द्वितीय आरक प्रारम्भ होगा । उसमें अनन्त वर्णपर्याय आदि अनन्तगुण–परिवृद्धि-क्रम से परिवर्द्धित होने जायेंगे ।

सूत्र - ५१

उस उत्सर्पिणी-काल के दुःषमा नामक द्वितीय आरक के प्रथम समय में भरतक्षेत्र की अशुभ अनुभावमय रूक्षता, दाहकता आदि का अपने प्रशान्त जल द्वारा शमन करनेवाला पुष्कर-संवर्तक नामक महामेघ प्रकट होगा । वह महामेघ लम्बाई, चौड़ाई तथा विस्तार में भरतक्षेत्र प्रमाण होगा । वह पुष्कर-संवर्तक महामेघ शीघ्र ही गर्जन कर शीघ्र ही विद्युत से युक्त होगा, विद्युत-युक्त होकर शीघ्र ही वह युग के अवयव-विशेष, मूसल और मुष्टि-परिमित धाराओं से सात दिन-रात तक सर्वत्र एक जैसी वर्षा करेगा । इस प्रकार वह भरतक्षेत्र के अंगारमय, मुर्मुरमय, क्षारमय, तप्त-कटाह सदृश, सब ओर से परितप्त तथा दहकते भूमिभाग को शीतल करेगा । उसके बाद क्षीरमेघ नामक महामेघ प्रकट होगा । वह लम्बाई, चौड़ाई तथा विस्तार में भरतक्षेत्र जितना होगा । वह विशाल बादल शीघ्र ही गर्जन करेगा, शीघ्र ही युग, मूसल और मुष्टि परिमित एक सदृश सात दिन-रात तक वर्षा करेगा । यों वह भरत क्षेत्र की भूमि में शुभ वर्ण, शुभ गन्ध, शुभ रस तथा शुभ स्पर्श उत्पन्न करेगा, जो पूर्वकाल में अशुभ हो चूके थे । फिर घृतमेघ नामक महामेघ प्रकट होगा । वह लम्बाई, चौड़ाई और विस्तार में भरतक्षेत्र जितना होगा । वह भरत क्षेत्र की भूमि में स्निग्धता उत्पन्न करेगा ।

फिर अमृतमेघ प्रकट होगा । वह भरतक्षेत्र में वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वेल, तृण, पर्वग, हरित, औषधि, पत्ते तथा कोंपल आदि बादर जीवों को उत्पन्न करेगा । फिर रसमेघ प्रकट होगा । बहुत से वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वेल, तृण, पर्वग, हरियाली, औषधि, पत्ते तथा कोंपल आदि में तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल तथा मधुर पाँच प्रकार के रस उत्पन्न करेगा । तब भरतक्षेत्र में वृक्ष, यावत् कोंपल आदि उगेंगे । उनकी त्वचा, पत्र, प्रवाल, पल्लव, अंकुर, पुष्प, फल, ये सब परिपुष्ट होंगे, समुदित होंगे, सुखोपभोग्य होंगे ।

सूत्र - ५२

तब वे बिलवासी मनुष्य देखेंगे–भरतक्षेत्र में वृक्ष, गुच्छ, यावत् औषधि आये हैं । छाल, पत्र इत्यादि सुखोप-

भोग्य हो गये हैं । वे बिलों से निकल आयेंगे । हर्षित एवं प्रसन्न होते हुए एक दूसरे को पुकार कर कहेंगे–देवानुप्रियों ! भरतक्षेत्र में वृक्ष आदि सब उग आये हैं । छाल, पत्र आदि सुखोपभोग्य हैं । इसलिए आज से हम में से जो कोई अशुभ, मांसमूलक आहार करेगा, उसकी छाया तक वर्जनीय होगी– । ऐसा निश्चय कर वे समीचीन व्यवस्था कायम करेंगे । भरतक्षेत्र में सुखपूर्वक, सोल्लास रहेंगे ।

सूत्र - ५३

उत्सर्पिणी काल के दुःषमा नामक द्वितीय आरक में भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होगा ? गौतम ! उनका भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय होगा । उस समय मनुष्यों का आकार-प्रकार कैसा होगा ? गौतम ! उस मनुष्यों के छह प्रकार के संहनन एवं संस्थान होंगे । उनकी ऊंचाई सात हाथ की होगी । उनका जघन्य अन्तमुहूर्त्त का तथा उत्कृष्ट कुछ अधिक सौ वर्ष का आयुष्य होगा । आयुष्य को भोगकर उन में से कईं नरक-गतिमें, यावत् कईं देव-गति में जायेंगे, किन्तु सिद्ध नहीं होंगे ।

गौतम ! उस आरक के २१००० वर्ष व्यतीत हो जाने पर उत्सर्पिणी काल का दुःषम-सुषमा नामक तृतीय आरक आरम्भ होगा । उसमें अनन्त वर्णपर्याय आदि क्रमशः परिवर्द्धित होते जायेंगे । उस काल में भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होगा ? गौतम ! उनका भूमिभाग बड़ा समतल एवं रमणीय होगा । उन मनुष्यों का आकार-स्वरूप कैसा होगा ? गौतम ! उन मनुष्यों के छह प्रकार के संहनन तथा संस्थान होंगे । शरीर की ऊंचाई अनेक धनुष-परिमाण होगी । जघन्य अन्तमुहूर्त्त तथा उत्कृष्ट एक पूर्व कोटि तक आयुष्य होगा । कईं नरक-गति में जाएंगे यावत् कईं समस्त दुःखों का अन्त करेंगे । उस काल में तीन वंश उत्पन्न होंगे–१. तीर्थंकर-वंश, २. चक्रवर्ती-वंश तथा ३. दशारवंश–बलदेव-वासुदेव वंश । उस काल में तेईस तीर्थंकर, ग्यारह चक्रवर्ती तथा नौ वासुदेव उत्पन्न होंगे।

गौतम ! उस आरक का ४२००० वर्ष कम एक सागरोपम कोड़ा-कोड़ी काल व्यतीत हो जाने पर उत्सर्पिणी-काल का सुषम-दुःषमा नामक आरक प्रारम्भ होगा । उसमें अनन्त वर्णपर्याय आदि अनन्तगुण परिवृद्धि क्रम से परिवर्द्धित होंगे । वह काल तीन भागों में विभक्त होगा–प्रथम तृतीय भाग, मध्यम तृतीय भाग तथा अन्तिम तृतीय भाग । उस काल के प्रथम त्रिभाग में भरतक्षेत्र का आकार-स्वरूप कैसा होगा ? गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय होगा । अवसर्पिणी-काल के सुषम-दुःषमा आरक के अन्तिम तृतीयांश के समान में मनुष्य होंगे । केवल इतना अन्तर होगा, इसमें कुलकर नहीं होंगे, भगवान् ऋषभ नहीं होंगे । इस संदर्भ में अन्य प्राचार्यों का कथन है–उस काल के प्रथम त्रिभाग में पन्द्रह कुलकर होंगे–सुमति यावत् ऋषभ । शेष उसी प्रकार है । दण्ड-नीतियाँ विपरीत क्रम से होंगी । उस काल के प्रथम त्रिभाग में राज-धर्म यावत् चारित्र-धर्म विच्छिन्न हो जायेगा । मध्यम तथा अन्तिम त्रिभाग की वक्तव्यता अवसर्पिणी के प्रथम-मध्यम त्रिभाग की ज्यों समझना । सुषमा और सुषम-सुषमा काल भी उसी जैसे हैं । छह प्रकार के मनुष्यों आदि का वर्णन उसी के सदृश है ।

वक्षस्कार-२-का मुनि दीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

वक्षस्कार-३- 'भरत चक्रवर्ति'

सूत्र - ५४

भगवन् ! भरतक्षेत्र का 'भरतक्षेत्र' यह नाम किस कारण पड़ा ? गौतम ! भरतक्षेत्र-स्थित वैताढ्य पर्वत के दक्षिण के ११४-११/१९ योजन तथा लवणसमुद्र के उत्तर में ११४-११/१९ योजन की दूरी पर, गंगा महानदी के पश्चिम में और सिन्धु महानदी के पूर्व में दक्षिणार्ध भरत के मध्यवर्ती तीसरे भाग के ठीक बीच में विनीता राजधानी है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बी एवं उत्तर-दक्षिण चौड़ी है । यह लम्बाई में बारह योजन तथा चौड़ाई में नौ योजन है । कुबेर ने अपने बुद्धि-कौशल से उस की रचना की हो ऐसी है । स्वर्णमय प्राकार, तद्गत विविध प्रकार के मणिमय पंचरंगे कपि-शीर्षकों, भीतर से शत्रु-सेना को देखने आदि हेतु निर्मित बन्दर के मस्तक के आकार के छेदों से सुशोभित एवं रमणीय है । वह अलकापुरी-सदृश है । वह प्रमोद और प्रक्रीड़ामय है । मानो प्रत्यक्ष स्वर्ग का ही रूप हो, ऐसी लगती है । वह वैभव, सुरक्षा तथा समृद्धि से युक्त है । वहाँ के नागरिक एवं जनपद के अन्य भागों से आये हुए व्यक्ति आमोद-प्रमोद के प्रचुर साधन होने से बड़े प्रमुदित रहते हैं । वह प्रतिरूप है ।

सूत्र - ५५

विनीता राजधानी में भरत चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुआ । वह महाहिमवान् पर्वत के समान महत्ता तथा मलय, मेरु एवं महेन्द्र के सदृश प्रधानता या विशिष्टता लिये हुए था । वह राजा भरत राज्य का शासन करता था । राजा के वर्णन का दूसरा गम इस प्रकार है –

वहाँ असंख्यात वर्ष बाद भरत नामक चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ । वह यशस्वी, उत्तम, अभिजात, सत्त्व, वीर्य तथा पराक्रम आदि गुणों से शोभित, प्रशस्त वर्ण, स्वर, सुदृढ़ देह-संहनन, तीक्ष्ण बुद्धि, धारणा, मेघा, उत्तम शरीर-संस्थान, शील एवं प्रकृति युक्त, उत्कृष्ट गौरव, कान्ति एवं गतियुक्त, अनेकविध प्रभावकर वचन बोलने में निपुण, तेज, आयु-बल, वीर्ययुक्त, निश्छिद्र, सघन, लोह-शृंखला की ज्यों सुदृढ़ वज्र-ऋषभ-नाराच-संहनन युक्त था । उसकी हथेलियों और पगथलियों पर मत्स्य, यग, भृंगार, वर्धमानक, भद्रासन, शंख, छत्र, चँवर, पताका, चक्र, लांगन, मूसल, रथ, स्वस्तिक, अंकुश, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, यूप, समुद्र, इन्द्रध्वज, कमल, पृथ्वी, हाथी, सिंहासन, दण्ड, कच्छप, उत्तम पर्वत, उत्तम अश्व, श्रेष्ठ मुकुट, कुण्डल, नन्दावर्त, धनुष, कुन्त, गागर, भवन, विमान प्रभृति पृथक्-पृथक् स्पष्ट रूप में अंकित अनेक सामुद्रिक शुभ लक्षण विद्यमान थे । उसके विशाल वक्षःस्थल पर ऊर्ध्वमुखी, सुकोमल, स्निग्ध, मृदु एवं प्रशस्त केश थे, जिनसे सहज रूप में श्रीवत्स का चिह्न था । देश एवं क्षेत्र के अनुरूप उसका सुगठित, सुन्दर शरीर था । बाल-सूर्य की किरणों से विकसित कमल के मध्यभाग जैसा उस का वर्ण था । पृष्ठान्त-घोड़े के पृष्ठान्त की ज्यों निरुपलिप्त था, प्रशस्त था । उसके शरीर से पद्म, उत्पल, चमेली, मालती, जूही, चंपक, केसर तथा कस्तूरी के सदृश सुगंध आती थी । वह छत्तीस से कहीं अधिक प्रशस्त राजोचित लक्षणों से युक्त था । अखण्डित-छत्र-का स्वामी था । उसके मातृवंश तथा पितृवंश निर्मल थे । अपने विशुद्ध कुलरूपी आकाश में वह पूर्णिमा के चन्द्र जैसा था । वह चन्द्र-सदृश सौम्य था, मन और आँखों के लिए आनन्दप्रद था । वह समुद्र के समान निश्चल-गंभीर तथा सुस्थिर था । वह कुबेर की ज्यों भोगोपभोग में द्रव्य का समुचित, प्रचुर व्यय करता था । वह युद्ध में सदैव अपराजित, परम विक्रमशाली था, उसके शत्रु नष्ट हो गये थे । यों वह सुखपूर्वक भरत क्षेत्र के राज्य का भोग करता था ।

सूत्र - ५६

एक दिन राजा भरत की आयुधशाला में दिव्य चक्ररत्न उत्पन्न हुआ । आयुधशाला के अधिकारी ने देखा । वह हर्षित एवं परितुष्ट हुआ, चित्त में आनन्द तथा प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ अत्यन्त सौम्य मानसिक भाव और हर्षातिरेक से विकसित हृदय हो उठा । दिव्य चक्र-रत्न को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, हाथ जोड़ते हुए चक्ररत्न को प्रणाम कर आयुधशाला से निकला, बाहरी उपस्थानशाला में आ कर उसने हाथ जोड़ते हुए राजा को

'आपकी जय हो, आपकी विजय हो'–शब्दों द्वारा वर्धापित किया और कहा आपकी आयुधशाला में दिव्य चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है, आपकी प्रियतार्थ यह प्रिय संवाद निवेदित करता हूँ ।

तब राजा भरत आयुधशाला के अधिकारी से यह सुनकर हर्षित हुआ यावत् हर्षातिरेक से उसका हृदय खिल उठा । उसके श्रेष्ठ कमल जैसे नेत्र एवं मुख विकसित हो गये । हाथों में पहने हुए उत्तम कटक, त्रुटित, केयूर, मस्तक पर धारण किया हुआ मुकुट, कानों के कुंडल चंचल हो उठे, हिल उठे, हर्षातिरेकवश हिलते हुए हार से उनका वक्षःस्थल अत्यन्त शोभित प्रतीत होने लगा। उसके गले में लटकती हुई लम्बी पुष्पमालाएं चंचल हो उठीं । राजा उत्कण्ठित होता हुआ बड़ी त्वरा से, शीघ्रता से सिंहासन से उठा, नीचे उतरकर पादुकाएं उतारीं, एक वस्त्र का उत्तरासंग किया, हाथों को अंजलिबद्ध किये हुए चक्ररत्न के सम्मुख सात-आठ कदम चला, बायें घुटने को ऊंचा किया, दायें घुटने को भूमि पर टिकाया, हाथ जोड़ते हुए, उन्हें मस्तक के चारों ओर घुमाते हुए अंजलि बाँध चक्ररत्न को प्रणाम किया । आयुधशाला के अधिपति को अपने मुकुट के अतिरिक्त सारे आभूषण दान में दे दिए । उसे जीविकोपयोगी विपुल प्रीतिदान किया–सत्कार किया, सम्मान किया । फिर पूर्वाभिमुख हो सिंहासन पर बैठा ।

तत्पश्चात् राजा भरत ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा राजधानी विनीता नगरी की भीतर और बाहर से सफाई कराओ, उसे सम्मार्जित कराओ, सुगंधित जल से उसे आसिक्त कराओ, नगरी की सड़कों और गलियों को स्वच्छ कराओ, वहाँ मंच, अतिमंच, निर्मित कराकर उसे सज्जित कराओ, विविध रंगी वस्त्रों से निर्मित ध्वजाओं, पताकाओं, अतिपताकाओं, सुशोभित कराओ, भूमि पर गोबर का लेप कराओ, गोशीर्ष एवं सरस चन्दन से सुरभित करो, प्रत्येक द्वारभाग को चंदनकलशों और तोरणों से सजाओ यावत् सुगंधित धुएं की प्रचुरता से वहाँ गोल-गोल धूममय छल्ले से बनते दिखाई दें । ऐसा कर आज्ञा पालने की सूचना करो । राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर व्यवस्थाधिकारी बहुत हर्षित एवं प्रसन्न हुए । उन्होंने विनीता राजधानी को राजा के आदेश के अनुरूप सजाया, सजवाया और आज्ञापालन की सूचना दी ।

तत्पश्चात् राजा भरत स्नानघर में प्रविष्ट हुआ । वह स्नानघर मुक्ताजालयुक्त-मोतियों की अनेकानेक लड़ियों से सजे हुए झरोखों के कारण बड़ा सुन्दर था । उसका प्रांगण विभिन्न मणियों तथा रत्नों से खचित था । उसमें रमणीय स्नान-मंड़प था । स्नान-मंड़प में अनेक प्रकार से चित्रात्मक रूप में जड़ी गई मणियों एवं रत्नों से सुशोभित स्नान-पीठ था । राजा सुखपूर्वक उस पर बैठा । राजा ने शुभोदक, गन्धोदक, पुष्पोदक एवं शुद्ध जल द्वारा परिपूर्ण, कल्याणकारी, उत्तम स्नानविधि से स्नान किया । स्नान के अनन्तर राजा ने नजर आदि निवारण हेतु रक्षाबन्धन आदि के सैकड़ों विधि-विधान किये । रोएंदार, सुकोमल काषायित, बिभीतक, आमलक आदि कसैली वनौषधियों से रंगे हुए वस्त्र से शरीर पोंछा । सरस, सुगन्धित गोशीर्ष चन्दन का देह पर लेप किया । अहत, बहुमूल्य दूष्यरत्न पहने । पवित्र माला धारण की । केसर आदि का विलेपन किया । मणियों से जड़े सोने के आभूषण पहने। पवित्र माला धारण की । केसर आदि का विलेपन किया । मणियों से जड़े सोने के आभूषण पहने हार, अर्धहार, तीन लड़ों के हार और लम्बे, लटकते कटिसूत्र-से अपने को सुशोभित किया । गले के आभरण धारण किये । अंगुलियों में अंगुठियाँ पहनी । नाना मणिमय कंकणों तथा त्रुटितों द्वारा भुजाओं को स्तम्भित किया । यों राजा की शोभा और अधिक बढ़ गई । कुंड़लों से मुख उद्योतित था । मुकुट से मस्तक दीप्त था । हारों से ढ़का हुआ उसका वक्षःस्थल सुन्दर प्रतीत हो रहा था । राजा ने एक लम्बे, लटकते हुए वस्त्र को उत्तरीय रूप में धारण किया । मुद्रिकाओं के कारण राजा की अंगुलियाँ पीली लग रही थीं । सुयोग्य शिल्पियों द्वारा नानाविध, मणि, स्वर्ण, रत्न–इनके योग से सुरचित विमल, महार्ह, सुश्लिष्ट, उत्कृष्ट, प्रशस्त, वीरवलय–धारण किया ।

इस प्रकार अलंकृत, विभूषित, राजा कल्पवृक्ष ज्यों लगता था । अपने ऊपर लगाये गये कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र, दोनों ओर डुलाये जाते चार चँवर, देखते ही लोगों द्वारा किये गये मंगलमय जय शब्द के साथ राजा स्नान-गृह से बाहर निकला । अनेक गणनायक यावत् संधिपाल, इन सबसे घिरा हुआ राजा धवल महामेघ, चन्द्र के सदृश देखने में बड़ा प्रिय लगता था । वह हाथ में धूप, पुष्प, गन्ध, माला–लिए हुए स्नानघर से निकला, जहाँ

आयुधशाला थी, जहाँ चक्ररत्न था, वहाँ के लिए चला । राजा भरत के पीछे-पीछे बहुत से ऐश्वर्यशाली विशिष्ट जन चल रहे थे । उनमें से किन्हीं-किन्हीं के हाथों में पद्म, यावत् शतसहस्रपत्र कमल थे । बहुत सी दासियाँ भी साथ थीं ।

सूत्र – ५७, ५८

उनमें से अनेक कुबड़ी, अनेक किरात देश की, अनेक बौनी, अनेक कमर से झुकी थी, अनेक बर्बर देश की, बकुश, यूनान, पह्लव, इसिन, थारुकिनिक देश की थी । लासक देश की, लकुश, सिंहल, द्रविड़, अरब, पुलिन्द, पक्कण, बहल, मुरुंड, शबर, पारस–यों विभिन्न देशों की थीं ।

सूत्र - ५९

इनके अतिरिक्त कतिपय दासियाँ तेल-समुद्गक, कोष्ठ, पत्र, चोय, तगर, हरिताल, हिंगुल, मैनसिल, तथा सर्षप समुद्गक लियें थीं । कतिपय दासियों के हाथों में तालपत्र, धूपकडच्छुक–धूपदान थे ।

सूत्र - ६०

उनमें से किन्हीं-किन्हीं के हाथों में मंगलकलश, भृंगार, दर्पण, थाल, छोटे पात्र, सुप्रतिष्ठक, वातकरक, रत्न करंडक, फूलों की डलियाँ, माला, वर्ण, चूर्ण, गन्ध, वस्त्र, आभूषण, मोर-पंखों से बनी फूलों की गुलदस्तों से भरी डलियाँ, मयूरपिच्छ, सिंहासन, छत्र, चँवर तथा तिलसमुद्गक-आदि भिन्न-भिन्न वस्तुएं थीं । यों वह राजा भरत सब प्रकार की ऋद्धि, द्युति, बल, समुदय, आदर, विभूषा, वैभव, वस्त्र, पुष्प, गन्ध, अलंकार–इस सबकी शोभा से युक्त कलापूर्ण शैली में साथ बजाये गये शंख, प्रणव, पटह, भेरी, झालर, खरमुखी, मुरज, मृदंग, दुन्दुभि के निनाद के साथ जहाँ आयुधशाला थी, वहाँ आया ।

चक्ररत्न की ओर देखते ही, प्रणाम किया, मयूरपिच्छ द्वारा चक्ररत्न को झाड़ा-पोंछा, दिव्य जल-धारा द्वारा सिंचन किया, सरस गोशीर्ष-चन्दन से अनुलेपन किया, अभिनव, उत्तम सुगन्धित द्रव्यों और मालाओं से उसकी अर्चा की, पुष्प चढ़ाये, माला, गन्ध, वर्णक एवं वस्त्र चढ़ाये, आभूषण चढ़ाये । चक्ररत्न के सामने उजले, स्निग्ध, श्वेत, रत्नमय अक्षत चावलों से स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्दावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, मत्स्य, कलश, दर्पण–इन अष्ट मंगलों का आलेखन किया । गुलाब, मल्लिका, चंपक, अशोक, पुन्नाग, आम्रमंजरी, नवमल्लिका, बकुल, तिलक, कणवीर, कुन्द, कुब्जक, कोरंटक, पत्र, दमनक–ये सुरभित-सुगन्धित पुष्प राजा ने हाथ में लिये, चक्ररत्न के आगे बढ़ाये, इतने चढ़ाये कि उन पंचरंगे फूलों का चक्ररत्न के आगे जानु-प्रमाण–ऊंचा ढेर लग गया ।

तदनन्तर राजा ने धूपदान हाथ में लिया जो चन्द्रकान्त, वज्र-हीरा, वैडूर्य रत्नमय दंडयुक्त, विविध चित्रांकन के रूप में संयोजित स्वर्ण, मणि एवं रत्नयुक्त, काले अगर, उत्तम कुन्दरुक, लोबान तथा धूप की महक से शोभित, वैडूर्य मणि से निर्मित था । आदरपूर्वक धूप जलाया, धूप जलाकर सात-आठ कदम पीछे हटा, बायें घूटने को ऊंचा किया, यावत् चक्ररत्न को प्रणाम किया । आयुधशाला से निकला, बाहरी उपस्थानशाला–में आकर पूर्वाभिमुख हो सिंहासन पर विधिवत् बैठा । अठारह श्रेणिप्रश्रेणि के प्रजाजनों को बुलाकर कहा–

देवानुप्रियों ! चक्ररत्न के उत्पन्न होने के उपलक्ष्य में तुम सब महान विजय का संसूचक अष्ट दिवसीय महोत्सव आयोजित करो । 'इन दिनों राज्य में कोई भी क्रय-विक्रय आदि सम्बन्धी शुल्क, राज्य-कर नहीं लिया जायेगा । आदान-प्रदान का, नाप-जोख का क्रम बन्द रहे, राज्य के कर्मचारी, अधिकारी किसी घर में प्रवेश न करे, दण्ड, कुदण्ड नहीं लिये जायेंगे । ऋणी को ऋण-मुक्त कर दिया जाए । नृत्यांगनाओं के तालवाद्य-समन्वित नाटक, नृत्य आदि आयोजित कर समारोह को सुन्दर बनाया जाए, यथाविधि समुद्भावित मृदंग-से महोत्सव को गुंजा दिया जाए । नगरसज्जा में लगाई गई या पहनी गई मालाएं कुम्हलाई हुई न हों, ताजे फूलों से बनी हों । यों प्रत्येक नगरवासी और जनपदवासी प्रमुदित हो आठ दिन तक महोत्सव मनाएं । राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वे अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि के प्रजाजन हर्षित हुए, विनयपूर्वक राजा का वचन शिरोधार्य किया । उन्होंने राजा की आज्ञानुसार अष्ट दिवसीय महोत्सव की व्यवस्था की, करवाई ।

सूत्र - ६१

अष्ट दिवसीय महोत्सव के संपन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न आयुधगृहशाला-से निकला । निकलकर आकाश में प्रतिपन्न हुआ । वह एक सहस्र यक्षों से संपरिवृत था । दिव्य वाद्यों की ध्वनि एवं निनाद से आकाश व्याप्त था । वह चक्ररत्न विनीता राजधानी के बीच से निकला । निकलकर गंगा महानदी के दक्षिणी किनारे से होता हुआ पूर्व दिशा में मागध तीर्थ की ओर चला । राजा भरत ने उस दिव्य चक्ररत्न को गंगा महानदी के दक्षिणी तट से होते हुए पूर्व दिशा में मागध तीर्थ की ओर बढ़ते हुए देखा, वह हर्षित व परितुष्ट हुआ, उसके कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–आभिषेक्य-हस्तिरत्न को शीघ्र ही सुसज्ज करो । घोड़े, हाथी, रथ तथा श्रेष्ठ योद्धाओं–से परिगठित चतुरंगिणी सेना को तैयार करो । यथावत् आज्ञापालन कर मुझे सूचित करो ।

तत्पश्चात् राजा भरत स्नानघर में प्रविष्ट हुआ । वह स्नानघर मुक्ताजाल युक्त–झरोखों के कारण बड़ा सुन्दर था । यावत् वह राजा स्नानघर से निकला । निकलकर घोड़े, हाथी, रथ, अन्यान्य उत्तम वाहन तथा योद्धाओं के विस्तार से युक्त सेना से सुशोभित वह राजा जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी, आभिषेक्य हस्तिरत्न था, वहाँ आया और अंजनगिरि के शिखर के समान विशाल गजपति पर आरूढ हुआ ।

भरताधिप-राजा भरत का वक्षस्थल हारों से व्याप्त, सुशोभित एवं प्रीतिकर था । उसका मुख कुंड़लों से उद्योतित था । मस्तक मुकुट से देदीप्यमान था । नरसिंह, नरपति, परिपालक, नरेन्द्र, परम ऐश्वर्यशाली अभिनायक, नरवृषभ, कार्यभार के निर्वाहक, मरुद्राजवृषभ-कल्प, इन्द्रों के मध्य वृषभ सदृश, दीप्तिमय, वंदिजनों द्वारा संस्तुत, जयनाद से सुशोभित, गजारूढ राजा भरत सहस्रों यक्षों से संपरिवृत धनपति यक्षराज कुबेर सदृश लगता था । देवराज इन्द्र के तुल्य उसकी समृद्धि थी, जिससे उसका यश सर्वत्र विश्रुत था । कोरंट के पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र उस पर तना था । श्रेष्ठ, श्वेत चँवर डुलाये जा रहे थे ।

राजा भरत गंगा महानदी के दक्षिणी तट से होता हुआ सहस्रों ग्राम, यावत् संबाध–से सुशोभित, प्रजाजन युक्त पृथ्वी को–जीतता हुआ, उत्कृष्ट, श्रेष्ठ रत्नों को भेंट के रूप में ग्रहण करता हुआ, दिव्य चक्ररत्न का अनुगमन करता हुआ, एक-एक योजन पर अपने पड़ाव डालता हुआ, दिव्य चक्ररत्न का अनुगमन करता हुआ जहाँ मागध तीर्थ था, वहाँ आया । आकर मागध तीर्थ के न अधिक दूर, न अधिक समीप, बारह योजन लम्बा तथा नौ योजन चौड़ा उत्तम नगर जैसा विजय स्कन्धावार लगाया । फिर राजा ने वर्धकिरत्न-को बुलाकर कहा–

देवानुप्रिय ! शीघ्र ही मेरे लिए आवास-स्थान एवं पोषधशाला का निर्माण करो । उसने राजा के लिए आवास-स्थान तथा पोषधशाला का निर्माण किया । तब राज भरत आभिषेक्य हस्तिरत्न से नीचे उतरा । पोषधशाला में प्रविष्ट हुआ, पोषधशाला का प्रमार्जन किया, सफाई की । डाभ का बिछौना बिछाया । उस पर बैठा। मागध तीर्थकुमार देव को उद्दिष्ट कर तत्साधना हेतु तेल की तपस्या की । पोषधशाला में पोषध लिया । आभूषण शरीर से उतार दिये । माला, वर्णक आदि दूर किये, शस्त्र, मूसल आदि हथियार एक ओर रखे । यों डाभ के बिछौने पर अवस्थित राजा भरत निर्भीकता–से आत्मबलपूर्वक तेले की तपस्या में प्रतिजागरित हुआ । तपस्या पूर्ण होने पर राजा भरत पौषधशाला से बाहर निकला । कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–घोड़े, हाथी, रथ एवं उत्तम योद्धाओंसे सुशोभित चतुरंगिणी सेना शीघ्र सुसज्ज करो । चातुर्घंट–अश्वरथ तैयार करो । स्नानादि से निवृत्त होकर राजा स्नानघर से निकला । घोड़े, हाथी, रथ, अन्यान्य उत्तम वाहन तथा सेना से सुशोभित वह राजा रथारूढ हुआ ।

सूत्र - ६२

तत्पश्चात् राज भरत चातुर्घंट–अश्वरथ पर सवार हुआ । वह घोड़े, हाथी, रथ तथा पदातियों से युक्त चातुरंगिणी सेना से घिरा था । बड़े-बड़े योद्धाओं का समूह साथ चल रहा था । हजारों मुकुटधारी श्रेष्ठ राजा पीछे-पीछे चल रहे थे । चक्ररत्न द्वारा दिखाये गये मार्ग पर वह आगे बढ़ रहा था । उस के द्वारा किये गये सिंहनाद के कलकल शब्द से ऐसा भान होता था कि मानो वायु द्वारा प्रक्षुभित महासागर गर्जन कर रहा हो । उसने पूर्व दिशा

की और आगे बढ़ते हुए, मागध तीर्थ होते हुए अपने रथ के पहिये भीगे, उतनी गहराई तक लवणसमुद्र में प्रवेश किया । फिर घोड़ों को रोका, रथ को ठहराया और धनुष उठाया । वह धनुष अचिरोद्गत बालचन्द्र-जैसा एवं इन्द्रधनुष जैसा था । उत्कृष्ट, गर्वोद्धत भैंसे के सुदृढ़, सघन सींगों की ज्यों निश्छिद्र था । उस धनुष का पृष्ठ भगा उत्तम नाग, महिषशृंग, श्रेष्ठ कोकिल, भ्रमरसमुदाय तथा नील के सदृश उज्ज्वल काली कांति से युक्त, तेज से जाज्वल्यमान एवं निर्मल था । निपुण शिल्पी द्वारा चमकाये गये, देदीप्यमान मणियों और रत्नों की घंटियों के समूह से वह परिवेष्टित था । बिजली की तरह जगमगाती किरणों से युक्त, स्वर्ण से परिबद्ध तथा चिह्नित था । दर्दर एवं मलय पर्वत के शिखर पर रहनेवाले सिंह के अयाल तथा चँवरी गाय की पूँछ के बालों के उस पर सुन्दर, अर्ध चन्द्राकार बन्ध लगे थे । काले, हरे, लाल, पीले तथा सफेद स्नायुओं-की प्रत्यञ्चा बंधी थी । शत्रुओं के जीवन का विनाश करने में वह सक्षम था ।

राजा ने वह धनुष पर बाण चढ़ाया । बाण की दोनों कोटियाँ उत्तम वज्र-से बनी थीं। उसका मुख वज्र की भांति अभेद्य था । उसकी पुंख-स्वर्ण में जड़ी हुई चन्द्रकांत आदि मणियों तथा रत्नों से सुसज्ज था । उस पर अनेक मणियों और रत्नों द्वारा सुन्दर रूप में राजा भरत का नाम अंकित था । भरत ने धनुष चढ़ाने के समय प्रयुक्त किये जाने वाले विशेष पादन्यास में स्थित होकर उस उत्कृष्ट बाण को कान तक खींचा और वह यों बोला-

सूत्र - ६३, ६४

मेरे द्वारा प्रयुक्त बाण के बहिर्भाग में तथा आभ्यन्तर भाग में अधिष्ठित नागकुमार, असुरकुमार, सुपर्ण-कुमार, आदि देवों ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ । आप उसे स्वीकार करें । यों कहकर राजा भरत ने बाण छोड़ा ।

सूत्र - ६५, ६६

मल्ल जब अखाड़े में उतरता है, तब जैसे वह कमर बांधे होता है, उसी प्रकार भरत युद्धोचित वस्त्र-बन्ध द्वारा अपनी कमर बांधे था । उसका कौशेय-पहना हुआ वस्त्र-विशेष हवा से हिलता हुआ बड़ा सुन्दर प्रतीत होता था ।

विचित्र, उत्तम धनुष धारण किये वह साक्षात् इन्द्र की ज्यों सुशोभित हो रहा था, विद्युत् की तरह देदीप्यमान था । पञ्चमी के चन्द्र सदृश शोभित वह महाधनुष राजा के विजयोद्यत बायें हाथ में चमक रहा था ।

सूत्र - ६७

राजा भरत द्वारा छोड़े जाते ही वह बाण तुरन्त बारह योजन तक जाकर मागध तीर्थ के अधिपति-के भवन में गिरा । मागध तीर्थाधिपति देव तत्क्षण क्रोध से लाल हो गया, रोषयुक्त, कोपाविष्ट, प्रचण्ड और क्रोधाग्नि से उद्दीप्त हो गया । कोपाधिक्य से उसके ललाट पर तीन रेखाएं उभर आई । उसकी भृकुटि तन गई । वह बोला- 'अप्रार्थित-मृत्यु को चाहने वाला, दुःखद अन्त तथा अशुभ लक्षण वाला, पुण्य चतुर्दशी जिस दिन हीन-थी, उस अशुभ दिन में जन्मा हुआ, लज्जा तथा श्री-शोभा से परिवर्जित वह कौन अभागा है, जिसने उत्कृष्ट देवानुभाव से लब्ध प्राप्त स्वायत्त मेरी ऐसी दिव्य देवऋद्धि, देवद्युति पर प्रहार करते हुए मौत से न ड़रते हुए मेरे भवन में बाण गिराया है ?' वह अपने सिंहासन से उठा और उस बाण को उठाया, नामांकन देखा । देखकर उसके मन में ऐसा चिन्तन, विचार, मनोभाव तथा संकल्प उत्पन्न हुआ-

'जम्बूद्वीप के अन्तर्वर्ती भरतक्षेत्र में भरत नामक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुआ है । अतः अतीत, प्रत्युत्पन्न तथा अनागत-मागधतीर्थ के अधिष्ठातृ देवकुमारों के लिए यह उचित है, परम्परागत व्यवहारानुरूप है कि वे राजा को उपहार भेंट करे । इसलिए मैं भी जाऊं, राजा को उपहार भेंट करूँ ।' यों विचार कर उसने हार, मुकुट, कुण्डल, कटक, कड़े, त्रुटित, वस्त्र, अन्यान्य विविध अलंकार, भरत के नाम से अंकित बाण और मागध तीर्थ का जल लिया । वह उत्कृष्ट, त्वरित वेगयुक्त, सिंह की गति की ज्यों प्रबल, शीघ्रतायुक्त, तीव्रतायुक्त, दिव्य देवगति से जहाँ राजा भरत था, वहाँ आकर छोटी-छोटी घंटियों से युक्त पंचरंगे उत्तम वस्त्र पहने हुए, आकाश में संस्थित होते हुए उसने अपने जुड़े हुए दोनों हाथों से अंजलिपूर्वक राजा भरत को 'जय, विजय' शब्दों द्वारा वर्धापित करके

कहा–आपने पूर्व दिशा में मागध तीर्थ पर्यन्त समस्त भरतक्षेत्र भली-भाँति जीत लिया है । मैं आप द्वारा जीते हुए देश का निवासी हूँ, आपका अनुज्ञावर्ती सेवक हूँ, आपका पूर्व दिशा का अन्तपाल हूँ–। अतः आप मेरे द्वारा प्रस्तुत यह प्रीतिदान–एवं हर्षपूर्वक अपहृत भेंट स्वीकार करें ।'

राजा भरत ने मागध तीर्थकुमार द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत प्रीतिदान स्वीकार किया । मागध तीर्थकुमार देव का सत्कार किया, सम्मान किया, विदा किया । फिर राजा भरत ने अपना रथ वापस मोड़ा । वह मागध तीर्थ से होता हुआ लवणसमुद्र से वापस लौटा । जहाँ उसका सैन्य था, वहाँ आकर घोड़ों को रोका, रथ को ठहराया, रथ से नीचे उतरा, स्नानघर में प्रविष्ट हुआ । स्नानादि सम्पन्न कर भोजनमण्डप में आकर सुखासन से बैठा, तेले का पारण किया । भोजनमण्डप से बाहर निकला, पूर्व की ओर मुँह किये सिंहासन पर आसीन हुआ । सिंहासनासीन होकर उसने अठारह श्रेणीप्रश्रेणी-अधिकृत पुरुषों को बुलाया । उन्हें कहा–मागधतीर्थकुमार देव को विजित कर लेने के उपलक्ष में अष्ट दिवसीय महोत्सव आयोजित करो । तत्पश्चात् शस्त्रागार में प्रतिनिष्क्रान्त हुआ– ।

उस चक्ररत्न का अरक-हीरों से जड़ा था । आरे लाल रत्नों से युक्त थे । उसकी नेमि स्वर्णमय थी । उस का भीतरी परिधिभाग अनेक मणियों से परिगत था । वह चक्रमणियों तथा मोतियों के समूह से विभूषित था । वह मृदंग आदि बारह प्रकार के वाद्यों के घोष से युक्त था । उसमें छोटी-छोटी घण्टियाँ लगी थीं । वह दिव्य प्रभावयुक्त था, मध्याह्न के सूर्य के सदृश तेजयुक्त था, गोलाकार था, अनेक प्रकार की मणियों एवं रत्नों की घण्टियों के समूह से परिव्याप्त था । सब ऋतुओं में खिलनेवाले सुगन्धित पुष्पमालाओं से युक्त था, अन्तरिक्ष प्रतिपन्न था, गतिमान था, १००० यक्षों से संपरिवृत्त था, दिव्य वाद्यों के शब्द से गगनतल को मानो भर रहा था । उसका सुदर्शन नाम था। राजा भरत के उस प्रथम–चक्ररत्नने यों शस्त्रागार से निकलकर नैऋत्यकोण में वरदाम तीर्थ की ओर प्रयाण किया।

सूत्र - ६८

राजा भरत ने दिव्य चक्ररत्न को दक्षिण-पश्चिम दिशा में वरदामतीर्थ की ओर जाते हुए देखा । वह बहुत हर्षित तथा परितुष्ट हुआ । उस के कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–घोड़े, हाथी, रथ तथा श्रेष्ठ योद्धाओं–से परिगठित चातुरंगिणी सेना को तैयार करो, आभिषेक्य हस्तिरत्न को शीघ्र ही सुसज्ज करो । यों कहकर राजा स्नानघर में प्रविष्ट हुआ । स्नानादि सम्पन्न कर बाहर निकला । गजपति पर वह नरपति आरूढ हुआ । यावत् हजारों योद्धाओं से यह विजय परिगत था । उन्नत, उत्तम मुकुट, कुण्डल, पताका, ध्वजा तथा वैयजन्ती–चँवर, छत्र –इनकी सघनता से प्रसूत अन्धकार से आच्छन्न था । असि, क्षेपणी, खड्ग, चाप, नाराच, कणक, कल्पनी, शूल, लकुट, भिन्दिपाल, धनुष, तूणीर, शर–आदि शस्त्रों से, जो कृष्ण, नील, रक्त, पीत तथा श्वेत रंग के सैकड़ों चिह्नों से युक्त थे, व्याप्त था । भुजाओं को ठोकते हुए, सिंहनाद करते हुए योद्धा राजा भरत के साथ-साथ चल रहे थे । घोड़े हर्ष से हिनहिना रहे थे, हाथी चिंघाड़ रहे थे, लाखों रथों के चलने की ध्वनि, घोड़ों को ताड़ने हेतु प्रयुक्त चाबुकों की आवाज, भम्भा, कौरम्भ, वीणा, खरमुखी, मुकुन्द, शंखिका, परिली तथा वच्चक, परिवादिनी, दंस, बांसुरी, विपञ्ची, महती कच्छपी, सारंगी, करताल, कांस्यताल, परस्पर हस्त–ताड़न आदि से उत्पन्न विपुल ध्वनि-प्रतिध्वनि से मानो सारा जगत् आपूर्ण हो रहा था । इन सबके बीच राजा भरत अपनी चातुरंगिणी सेना तथा विभिन्न वाहनों से युक्त, सहस्र यक्षों से संपरिवृत कुबेर सदृश वैभवशाली तथा अपनी ऋद्धि से इन्द्र जैसा यशस्वी–प्रतीत होता था । वह ग्राम, आकर यावत् संबाध–इनसे सुशोभित भूमण्डल की विजय करता हुआ–उत्तम, श्रेष्ठ रत्नों को भेंट के रूप में स्वीकार करता हुआ, दिव्य चक्ररत्न का अनुगमन करता हुआ–वरदामतीर्थ था, वहाँ आया । वरदामतीर्थ से कुछ ही दूरी पर बारह योजन लम्बा, नौ योजन चौड़ा, विशिष्ट नगर के सदृश अपना सैन्य–शिबिर लगाया । उसने वर्द्धकि रत्न को बुलाया । कहा–शीघ्र ही मेरे लिए आवासस्थान तथा पौषधशाला का निर्माण करो ।

सूत्र - ६९

वह शिल्पी आश्रम, द्रोणमुख, ग्राम, पट्टन, नगर, सैन्यशिबिर, गृह, आपण–इत्यादि की समुचित संरचना में

कुशल था । इक्यासी प्रकार के वास्तु-क्षेत्र का जानकार था । विधिज्ञ था । विशेषज्ञ था । विविध परम्परानुगत भवनों, भोजनशालाओं, दुर्ग-भित्तियों, वासगृहों-के यथोचित रूप में निर्माण करने में निपुण था । काठ आदि के छेदन-वेधन में, गैरिक लगे धागे से रेखाएं अंकित कर नाप-जोख में कुशल था । जलगत तथा स्थलगत सुरंगों के, घटिकायन्त्र आदि के निर्माण में, परिखाओं-के खनन में शुभ समय के, इनके निर्माण के प्रशस्त के प्रशस्त एवं अप्रशस्त रूप के परिज्ञान में प्रवीण था । शब्दशास्त्र, अंकन, लेखन आदि में, वास्तुप्रदेश में-सुयोग्य था । भवन निर्माणोचित भूमि में उत्पन्न फलाभिमुख बेलों, दूरफल बेलों, वृक्षों एवं उन पर छाई हुई बेलों के गुणों तथा दोषों को समझने में सक्षम था । गुणाढ्य था-सान्तन, स्वस्तिक आदि सोलह प्रकार के भवनों के निर्माण में कुशल था । शिल्पशास्त्र में प्रसिद्ध चौंसठ प्रकार के घरों की रचना में चतुर था । नन्द्यावर्त, वर्धमान, स्वस्तिक, रुचक तथा सर्वतोभद्र आदि विशेष प्रकार के गृहों, ध्वजाओं, इन्द्रादि देवप्रतिमाओं, धान्य के कोठों की रचना में, भवन-निर्माणार्थ अपेक्षित काठ के उपयोग में, दुर्ग आदि निर्माण, इन सबके संचयन और सन्निर्माण में समर्थ था ।

सूत्र - ७०

वह शिल्पकार अनेकानेक गुणयुक्त था । राजा भरत को अपने पूर्वाचरित तप तथा संयम के फलस्वरूप प्राप्त उस शिल्पी ने कहा-स्वामी ! मैं क्या निर्माण करूँ ?

सूत्र - ७१

राजा के वचन के अनुरूप उसने देवकर्मविधि से-दिव्य क्षमता द्वारा मुहूर्त्त मात्र में-सैन्यशिबिर तथा सुन्दर आवास-भवन की रचना कर दी । पौषधशाला का निर्माण किया ।

सूत्र - ७२

तत्पश्चात् राजा भरत के पास आकर निवेदित किया कि आपके आदेशानुरूप निर्माण-कार्य सम्पन्न कर दिया है । इससे आगे का वर्णन पूर्ववत् है ।

सूत्र - ७३

वह रथ पृथ्वी पर शीघ्र गति से चलनेवाला था । अनेक उत्तम लक्षण युक्त था । हिमालय पर्वत की वायु-रहित कन्दराओं में संवर्धित तिनिश नामक रथनिर्माणोपयोगी वृक्षों के काठ से बना था । उसका जुआ जम्बूनद स्वर्ण से निर्मित था । आरे स्वर्णमयी ताड़ियों के थे । पुलक, वरेन्द्र, नील सासक, प्रवाल, स्फटिक, लेष्टु, चन्द्रकांत, विद्रुम रत्नों एवं मणियों से विभूषित था । प्रत्येक दिशा में बारह बारह के क्रम से उसके अड़तालीस आरे थे । दोनों तुम्ब स्वर्णमय पट्टों से दृढ़ीकृत थे, पृष्ठ-विशेष रूप से घिरी हुई, बंधी हुई, सटी हुई, नई पट्टियों से सुनिष्पन्न थी । अत्यन्त मनोज्ञ, नूतन लोहे की सांकल तथा चमड़े के रस्से से उसके अवयव बंधे थे । दोनों पहिए वासुदेव के शस्त्र रत्न-सदृश थे । जाली चन्द्रकांत, इन्द्रनील तथा शस्यक रत्नों से सुरचित और सुसज्जित थी । धुरा प्रशस्त, विस्तीर्ण तथा एकसमान थी । श्रेष्ठ नगर की ज्यों वह गुप्त था, घोड़ों के गले में डाली जाने वाली रस्सी कमनीय किरणयुक्त, लालिमामय स्वर्ण से बनी थी । उसमें स्थान-स्थान पर कवच प्रस्थापित थे । प्रहरणों-से परिपूरित था । ढालों, कणकों, धनुषों, पण्डलाओं, त्रिशूलों, भालों, तोमरों तथा सैकड़ों बाणों से युक्त बत्तीस तूणीरों से वह परिमंडित था। उस पर स्वर्ण एवं रत्नों द्वारा चित्र बने थे । उसमें हलीमुख, बगुले, हाथीदांत, चन्द्र, मुक्ता, भल्लिका, कुन्द, कुटज तथा कन्दल के पुष्प, सुन्दर फेन-राशि, मोतियों के हार और काश के सदृश धवल, अपनी गति द्वारा मन एवं वायु की गति को जीतनेवाले, चपल शीघ्रगामी, चँवरों और स्वर्णमय आभूषणों से विभूषित चार घोड़े जुते थे । उस पर छत्र बना था । ध्वजाएं, घण्टियाँ तथा पताकाएं लगी थीं ।

उस का सन्धि-योजन सुन्दर रूपमें निष्पादित था । सुस्थापित समर के गम्भीर गोष जैसा उसका घोष था। उस के कूर्पर-उत्तम थे । वह सुन्दर चक्रयुक्त तथा उत्कृष्ट नेमिमंडल युक्त था । जुए के दोनों किनारे बड़े सुन्दर थे । दोनों तुम्ब श्रेष्ठ वज्र रत्न से-बने थे । वह श्रेष्ठ स्वर्ण से-सुशोभित था । सुयोग्य शिल्पकारों द्वारा निर्मित था । उत्तम

घोड़े जोते जाते थे । सुयोग्य सारथि द्वारा सुनियोजित था । उत्तमोत्तम रत्नों से परिमंडित था । सोने की घण्टियों से शोभित था । वह अयोध्य था, उसका रंग विद्युत, परितप्त स्वर्ण, कलम, जपाकुसुम, दीप्त अग्नि तथा तोते की चाँच जैसा था । उसकी प्रभा घुंघची के अर्ध भाग, बन्धुजीवक पुष्प, सम्मर्दित हिंगुल-राशि, सिन्दूर, श्रेष्ठ केसर, कबूतर के पैर, कोयल की आँखें, अधरोष्ठ, मनोहर रक्ताशोक तरु, स्वर्ण, पलाशपुष्प, हाथी के तालु, इन्द्रगोपक जैसी थी । कांति बिम्बफल, शिलाप्रवाल एवं उदीयमान सूर्य के सदृश थी । सब ऋतुओं में विकसित होनेवाले पुष्पों की मालाएं लगी थीं । उन्नत श्वेत ध्वजा फहरा रही थी । उस का घोष गम्भीर था, शत्रु के हृदय को कँपा देनेवाला था । लोक-विश्रुत यशस्वी राजा भरत प्रातःकाल पौषध पारित कर उस सर्व अवयवों से युक्त चातुर्घण्ट 'पृथ्वीविजयलाभ' नामक अश्वरथ पर आरूढ हुआ । शेष पूर्ववत् ।

राजा भरत ने पूर्व दिशा की ओर बढ़ते हुए वरदाम तीर्थ होते हुए अपने रथ के पहिये भीगे, उतनी गहराई तक लवणसमुद्र में प्रवेश किया । शेष कथन मागध तीर्थकुमार समान जानना । वरदाम तीर्थकुमार ने राजा भरत को दिव्य, सर्व विषापहारी चूडामणि, वक्षःस्थल और गले के अलंकार, मेखला, कटक, त्रुटित भेंट किये और कहा कि मैं आपका दक्षिण दिशा का अन्तपाल हूँ । इस विजय के उपलक्ष्य में राजा की आज्ञा के अनुसार अष्टदिवसीय महोत्सव आयोजित हुआ । महोत्सव के परिसम्पन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकला । आकाश में अधर अवस्थित हुआ । वह एक हजार यक्षों से परिवृत्त था । दिव्य वाद्यों के शब्द से गगनमण्डल को आपूरित करते हुए उसने उत्तर-पश्चिम दिशा में प्रभास तीर्थ की ओर होते हुए प्रयाण किया ।

राजा भरत ने उस दिव्य चक्ररत्न का अनुगमन करते हुए, उत्तर-पश्चिम दिशा होते हुए, पश्चिम में, प्रभास तीर्थ की ओर जाते हुए, अपने रथ के पहिये भीगे, उतनी गहराई तक लवणसमुद्र में प्रवेश किया । शेष कथन पूर्ववत् । प्रभासतीर्थकुमार ने भी प्रीतिदान के रूप में भेंट करने हेतु रत्नों की माला, मुकुट यावत् राजा भरत के नाम से अंकित बाण तथा प्रभासतीर्थ का जल दिया– और कहा–मैं आप द्वारा विजित देश का वासी हूँ, पश्चिम दिशा का अन्तपाल हूँ । शेष पूर्ववत् जानना ।

सूत्र - ७४

प्रभास तीर्थकुमार को विजित कर लेने के उपलक्ष्य में समायोजित अष्टदिवसीय महोत्सव के परिसम्पन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकला । यावत् उसने सिन्धु महानदी के दाहिने किनारे होते हुए पूर्व दिशा में सिन्धु देवी के भवन की ओर प्रयाण किया । राजा भरत बहुत हर्षित हुआ, परितुष्ट हुआ । जहाँ सिन्धु देवी का भवन था, उधर आया । सिन्धु देवी के भवन के थोड़ी ही दूरी पर बारह योजन लम्बा तथा नौ योजन चौड़ा, श्रेष्ठ नगर के सदृश सैन्य–शिबिर स्थापित किया । यावत् सिन्धु देवी की साधना हेतु तेल किया । पौषधशाला में पौषध लिया, ब्रह्मचर्य स्वीकार किया । यावत् यों डाभ के बिछौने पर उपगत, तेले की तपस्या में अभिरत भरत मन में सिन्धु देवी का ध्यान करता हुआ स्थित हुआ । सिन्धु देवी का आसन चलित हुआ ।

सिन्धु देवी ने अवधिज्ञान का प्रयोग किया । भरत को देखा, देवी के मन में ऐसा चिन्तन, विचार, मनोभाव तथा संकल्प उत्पन्न हुआ–जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरतक्षेत्र में भरत नामक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुआ है । यावत् देवी रत्नमय १००८ कलश, विविध मणि, स्वर्ण, रत्नाञ्चित चित्रयुक्त दो स्वर्ण-निर्मित उत्तम आसन, कटक, त्रुटित तथा अन्यान्य आभूषण लेकर तीव्र गतिपूर्वक यहाँ आई और बोली–आपने भरतक्षेत्र को विजय कर लिया है। मैं आपके देश में–आज्ञा-कारिणी सेविका हूँ । देवानुप्रिय ! मेरे द्वारा प्रस्तुत उपहार आप ग्रहण करें । शेष पूर्ववत् । यावत् पूर्वाभिमुख हो उत्तम सिंहासन पर बैठना । सिंहासन पर बैठकर अपने अठारह श्रेणी-प्रश्रेणी-अधिकृत पुरुषों को बुलाया और उनसे कहा कि अष्टदिवसीय महोत्सव का आयोजन करो ।

सूत्र - ७५

सिन्धुदेवी के विजयोपलक्ष्य में अष्टदिवसीय महोत्सव सम्पन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न पूर्ववत्

शास्त्रागार से बाहर निकला । ईशानकोण में वैताढ्य पर्वत की ओर प्रयाण किया । राजा भरत वैताढ्य पर्वत की दाहिनी ओर की तलहटी थी, वहाँ आया । वहाँ बारह योजन लम्बा तथा नौ योजन चौड़ा सैन्य-शिबिर स्थापित किया । वैताढ्यकुमार देव को उद्दिष्ट कर तेला किया । पौषध लिया, वैताढ्य गिरिकुमार का ध्यान करता हुआ अवस्थित हुआ । वैताढ्य गिरिकुमार का आसन डोला । आगे सिन्धुदेवी के समान समझना । राजा की आज्ञा से अष्टदिवसीय महोत्सव आयोजित कर आयोजकों ने राजा को सूचित किया ।

अष्टदिवसीय महोत्सव के सम्पन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न पश्चिम दिशा में तमिस्रा गुफा की ओर आगे बढ़ा । राजा भरत ने तमिस्रा गुफा से थोड़ी ही दूरी पर बारह योजन लम्बा और नौ योजन चौड़ा सैन्य शिबिर स्थापित किया । कृतमाल देव को उद्दिष्ट कर उसने तेला किया यावत् कृतमाल देव का आसन चलित हुआ । शेष वर्णन वैताढ्य गिरिकुमार समान है । कृतमाल देव ने राजा भरत को प्रीतिदान देते हुए राजा के स्त्री-रत्न के लिए रत्न-निर्मित चौदह तिलक-सहित आभूषणों की पेटी, कटक आदि लिये । राजा को ये उपहार भेंट किये । राजा ने उसका सत्कार किया, सम्मान किया, विदा किया । यावत् अष्टदिवसीय महोत्सव आयोजित हुआ ।

सूत्र - ७६

कृतमाल देव के विजयोपलक्ष्य में समायोजित अष्टदिवसीय महोत्सव के सम्पन्न हो जाने पर राजा भरत ने अपने सुषेण सेनापति को बुलाकर कहा-सिंधु महानदी के पश्चिम से विद्यमान, पूर्व में तथा दक्षिण में सिन्धु महानदी द्वारा, पश्चिम में पश्चिम समुद्र द्वारा तथा उत्तर में वैताढ्य पर्वत द्वारा विभक्त भरतक्षेत्र के कोणवर्ती खण्डरूप निष्कुट प्रदेशों को, उसके सम, विषम अवान्तर-क्षेत्रों को अधिकृत करो । उनसे अभिनव, उत्तम रत्न-गृहीत करो । सेनापति सुषेण चित्त में हर्षित, परितुष्ट तथा आनन्दित हुआ । सुषेण भरतक्षेत्र में विश्रुतयशा-था । विशाल सेना का अधिनायक था, अत्यन्त बलशाली तथा पराक्रमी था । स्वभाव से उदात्त था । ओजस्वी, तेजस्वी था । वह भाषाओं में निष्णात था । उन्हें बोलने में, समझने में, उन द्वारा औरों को समझाने में समर्थ था । सुन्दर, शिष्ट भाषा-भाषी था। निम्न, गहरे, दुर्गम, दुष्प्रवेश्य स्थानों का विशेषज्ञ था । अर्थशास्त्र आदि में कुशल था । सेनापति सुषेण ने अपने दोनों हाथ जोड़े । उन्हें मस्तक से लगाया-राजा का आदेश विनयपूर्वक स्वीकार किया । चलकर अपने आवास में आया । अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा-

आभिषेक्य हस्तिरत्न तैयार करो, घोड़े, हाथी, रथ तथा उत्तम योद्धाओंसे चातुरंगिणी सेना सजाओ । ऐसा आदेश देकर स्नान किया, नित्यनैमित्तिक कृत्य किये, कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त किया, अंजन आंजा, तिलक लगाया, दुःस्वप्न आदि दोष-निवारण हेतु मंगल-विधान किया । अपने शरीर पर लोहे के मोटे-मोटे तारों से निर्मित कवच कसा, धनुष पर दृढता के साथ प्रत्यञ्चा आरोपित की । गले में हार पहना । मस्तक पर अत्यधिक वीरतासूचक निर्मल, उत्तम वस्त्र गाँठ लगाकर बाँधा । बाण आदि क्षेप्य तथा खड्ग आदि अक्षेप्य धारण किये । अनेक गणनायक, दण्डनायक आदि से वह घिरा था । उस पर कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र तना था । लोग मंगलमय जय-जय शब्द द्वारा उसे वर्धापित कर रहे थे । वह स्नानघर से बाहर निकला । गजराज पर आरूढ हुआ।

कोरंट पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र गजराज पर लगा था, घोड़े, हाथी, उत्तम योद्धाओं-से युक्त सेना से वह संपरिवृत्त था । विपुल योद्धाओं के समूह से समवेत था । उस द्वारा किये गये गम्भीर, उत्कृष्ट सिंहनाद की कलकल ध्वनि से ऐसा प्रतीत होता था, मानो समुद्र गर्जन कर रहा हो । सब प्रकार की ऋद्धि, द्युति, बल, शक्ति से युक्त वह जहाँ सिन्धु महानदी थी, वहाँ आया । चर्म-रत्न का स्पर्श किया । चर्म-रत्न श्रीवत्स-जैसा रूप लिये था । उस पर मोतियों के, तारों के तथा अर्धचन्द्र के चित्र बने थे । वह अचल एवं अकम्प था । वह अभेद्य कवच जैसा था। नदियों एवं समुद्रों को पार करने का यन्त्र-था । दैवी विशेषता लिये था । चर्म-निर्मित वस्तुओं में वह सर्वोत्कृष्ट था । उस पर बोये हुए सत्तरह प्रकार के धान्य एक दिन में उत्पन्न हो सकें, ऐसी विशेषता लिये था । गृहपतिरत्न इस चर्म-रत्न पर सूर्योदय के समय धान्य बोता है, जो उग कर दिन भर में पक जाते हैं, गृहपति सायंकाल उन्हें काट लेता है । चक्रवर्ती भरत द्वारा परामृष्ट वह चर्मरत्न कुछ अधिक बारह योजन विस्तृत था ।

सेनापति सुषेण द्वारा छुए जाने पर चर्मरत्न शीघ्र ही नौका के रूप में परिणत हो गया । सेनापति सुषेण सैन्य-शिबिर-में विद्यमान सेना सहित उस चर्म-रत्न पर सवार हुआ । निर्मल जल की ऊंची उठती तरंगों से परिपूर्ण सिन्धु महानदी को सेनासहित पार किया । सिन्धु महानदी को पार कर अप्रतिहत-शासन, वह सेनापति सुषेण ग्राम, आकर, नगर, पर्वत, खेट, कर्बट, मडम्ब, पट्टन आदि जीतता हुआ, सिंहल, बर्बर, अंगलोक, बलावलोक, यवन द्वीप, अरब, रोम, अलसंड, पिक्खुरों, कालमुखों तथा उत्तर वैताढ्य पर्वत की तलहटी में बसी हुई बहुविध म्लेच्छ जाति के जनों को, नैऋत्यकोण से लेकर सिन्धु नदी तथा समुद्र के संगम तक के सर्वश्रेष्ठ कच्छ देश को साधकर-वापस मुड़ा । कच्छ देश के अत्यन्त सुन्दर भूमिभाग पर ठहरा । तब उन जनपदों, नगरों, पत्तनों के स्वामी, अनेक आकरपति, मण्डलपति, पत्तनपति-वृन्द ने आभरण, भूषण, रत्न, बहुमूल्य वस्त्र, अन्यान्य श्रेष्ठ, राजोचित वस्तुएं हाथ जोड़कर, जुड़े हुए तथा मस्तक से लगाकर उपहार के रूप में सेनापति सुषेण को भेंट की ।

वे बड़ी नम्रता से बोले-'आप हमारे स्वामी हैं । देवता की ज्यों आप के हम शरणागत हैं, आप के देशवासी हैं। इस प्रकार विजयसूचक शब्द कहते हुए उन सबको सेनापति सुषेण ने पूर्ववत् यथायोग्य कार्यो में प्रस्थापित किया, नियुक्त किया, सम्मान किया और विदा किया । अपने राजा के प्रति विनयशील, अनुपहत-शासन एवं बलयुक्त सेनापति सुषेण ने सभी उपहार आदि लेकर सिन्धु नदी को पार किया । राजा भरत के पास आकर सारा वृत्तान्त निवेदित किया । प्राप्त सभी उपहार राजा को अर्पित किये । राजा ने सेनापति का सत्कार किया, सम्मान किया, सहर्ष विदा किया ।

तत्पश्चात् सेनापति सुषेण ने स्नान किया, नित्य-नैमित्तिक कृत्य किये, अंजन आंजा, तिलक लगाया, मंगल -विधान किया । भोजन किया । विश्रामगृह में आया । शुद्ध जल से हाथ, मुँह आदि धोये, शुद्धि की । शरीर पर गोशीर्ष चन्दन का जल छिड़का, अपने आवास में गया । वहाँ मृदंग बज रहे थे । सुन्दर, तरुण स्त्रियाँ बत्तीस प्रकार के अभिनयों द्वारा वे उसके मन को अनुरंजित करती थीं । गीतों के अनुरूप वीणा, तबले एवं ढोल बज रहे थे । मृदंगों से बादल की-सी गंभीर ध्वनि निकल रही थी । वाद्य बजाने वाले वादक निपुणता से अपने-आप वाद्य बजा रहे थे । सेनापति सुषेण इस प्रकार अपनी ईच्छा के अनुरूप शब्द, स्पर्श, रस, रूप तथा गन्धमय मानवोचित, प्रिय कामभोगों का आनन्द लेने लगा ।

सूत्र - ७७

राजा भरत ने सेनापति सुषेण को बुलाकर कहा-जाओ, शीघ्र ही तमिस्र गुफा के दक्षिणी द्वार के दोनों कपाट उद्घाटित करो । राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर सेनापति सुषेण अपने चित्त में हर्षित, परितुष्ट तथा आनन्दित हुआ । उसने अपने दोनों हाथ जोड़े । विनयपूर्वक राजा का वचन स्वीकार किया । पौषधशाला में आया। डाभ का बिछौना बिछाया । कृतमाल देव को उद्दिष्ट कर तेला किया, पौषध लिया । ब्रह्मचर्य स्वीकार किया । तेले के पूर्ण हो जाने पर वह पौषधशाला से बाहर निकला । स्नान किया, नित्यनैमित्तिक कृत्य किये । अंजन आंजा, तिलक लगाया, मंगल-विधान किया । उत्तम, प्रवेश्य, मांगलिक वस्त्र पहने । थोड़े पर बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया । धूप, पुष्प, सुगन्धित पदार्थ एवं मालाएं हाथ में लीं । तमिस्रा गुफा के दक्षिणी द्वार के कपाट थे, उधर चला । माण्डलिक अधिपति, ऐश्वर्यशाली, प्रभावशाली पुरुष, राजसम्मानित विशिष्ट जन, जागीरदार तथा सार्थवाह आदि सेनापति सुषेण के पीछे-पीछे चले, बहुत सी दासियाँ पीछे-पीछे चलती थीं । वे चिन्तित तथा अभिलषित भाव को संकेत या चेष्टा मात्र से समझ लेने में विज्ञ थीं, प्रत्येक कार्य में निपुण थीं, कुशल थीं तथा स्वभावतः विनयशील थीं ।

सब प्रकार की समृद्धि तथा द्युति से युक्त सेनापति सुषेण वाद्य-ध्वनि के साथ जहाँ तमिस्रा गुफा के दक्षिणी द्वार के कपाट थे, वहाँ आया । प्रणाम किया । मयूरपिच्छ की प्रमार्जनिका उठाई । कपाटों को प्रमार्जित किया -। उन पर दिव्य जलधारा छोड़ी । आर्द्र गोशीर्ष चन्दन से हथेली के थापे लगाये । अभिनव, उत्तम सुगन्धित पदार्थों से तथा मालाओं से अर्चना की । उन पर पुष्प, वस्त्र चढ़ाये । ऐसा कर इन सबके ऊपर से नीचे तक फैला, विस्तीर्ण,

गोल चँदवा ताना । स्वच्छ बारीक चाँदी के चावलों से, तमिस्रा गुफा के कपाटों के आगे स्वस्तिक, श्रीवत्स आदि आठ मांगलिक अंकित किये । कचग्रह ज्यों पाँचों अंगुलियों से ग्रहीत पंचरंगे फूल उसने अपने करतल से उन पर छोड़े । वैडूर्य रत्नों से बना धूपपात्र हाथ में लिया । धूपपात्र का हत्था चन्द्रमा की ज्यों उज्ज्वल था, वज्ररत्न एवं वैडूर्यरत्न से बना था । धूप-पात्र पर स्वर्ण, मणि तथा रत्नों द्वारा चित्रांकन किया हुआ था । काले अगर, उत्तम कुन्दरुक, लोबान एवं धूप की गमगमाती महक उससे उठ रही थी । उसने उस धूपपात्र में धूप दिया – । फिर अपने बाएं घुटने को जमीन से ऊंचा रखा । दोनों हाथ मस्तक से लगाया । कपाटों को प्रणाम किया । दण्डरत्न को उठाया

वह दण्ड रत्नमय तिरछे अवयव-युक्त था, वज्रसार से बना था, समग्र शत्रु-सेना का विनाशक था, राजा के सैन्य-सन्निवेश में गड्ढो, कन्दराओं, ऊबड़-खाबड़ स्थलों, पहाड़ियों, चलते हुए मनुष्यों के लिए कष्टकर पथरीले टीलों को समतल बना देने वाला था । वह राजा के लिए शांतिकर, शुभकर, हितकर तथा उसके ईच्छित मनोरथों का पूरक था, दिव्य था, अप्रतिहत था । वेग-अपवादन हेतु वह सात आठ कदम पीछे हटा, तमिस्रा गुफा के दक्षिणी द्वार के किवाड़ों पर तीन बार प्रहार किया, जिससे भारी शब्द हुआ । इस प्रकार क्रौञ्च पक्षी की ज्यों जोर से आवाज कर अपने स्थान से कपाट सरके । यों सेनापति सुषेण ने तमिस्रा गुफा के दक्षिणी द्वार के कपाट खोले । राजा को 'जय, विजय' शब्दों द्वारा वर्धापित कर कहा–तमिस्रा गुफा के दक्षिणी द्वार के कपाट खोल दिये हैं ।

राजा भरत यह संवाद सुनकर अपने मन में हर्षित, परितुष्ट तथा आनन्दित हुआ । राजा ने सेनापति सुषेण का सत्कार किया, सम्मान किया । अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–आभिषेक्य हस्तिरत्न को शीघ्र तैयार करो । तब घोड़े, हाथी, रथ तथा श्रेष्ठ योद्धाओं से परिगठित चातुरंगिणी सेना से संपरिवृत्त, अनेकानेक सुभटों के विस्तार से युक्त राजा उच्च स्वर में समुद्र के गर्जन के सदृश सिंहनाद करता हुआ अंजनगिरि के शिखर के समान गजराज पर आरूढ हुआ ।

सूत्र - ७८

तत्पश्चात् राजा भरत ने मणिरत्न का स्पर्श किया । वह मणिरत्न विशिष्ट आकारयुक्त, सुन्दरतायुक्त था । चार अंगुल प्रमाण था, अमूल्य था–वह तिखूंटा, ऊपर नीचे षट्कोणयुक्त, अनुपम द्युतियुक्त, दिव्य, मणिरत्नों में सर्वोत्कृष्ट, सब लोगों का मन हरने वाला था–जो सर्व-कष्ट-निवारक था, सर्वकाल आरोग्यप्रद था । उस के प्रभाव से तिर्यञ्च, देव तथा मनुष्य कृत उपसर्ग–कभी भी दुःख उत्पन्न नहीं कर सकते थे । उस को धारण करने वाले मनुष्य को शस्त्र स्पर्श नहीं होता । यौवन से सदा स्थिर रहता था, बाल तथा नाखून नहीं बढ़ते थे । भयों से विमुक्ती होती । राजा भरत ने इन अनुपम विशेषताओं से युक्त मणिरत्न को गृहीत कर गजराज के मस्तक के दाहिने भाग पर बाँधा। भरतक्षेत्र के अधिपति राजा भरत का वक्षःस्थल हारों से व्याप्त, सुशोभित एवं प्रीतिकर था । यावत् वह अपनी ऋद्धि से इन्द्र जैसा ऐश्वर्यशाली, यशस्वी लगता था । मणिरत्न से फैलते हुए प्रकाश तथा चक्ररत्न द्वारा निर्देशित किये जाते मार्ग के सहारे आगे बढ़ता हुआ, अपने पीछे-पीछे चलते हुए हजारों नरेशों से युक्त राजा भरत उच्चस्वर से समुद्र के गर्जन ज्यों सिंहनाद करता, तमिस्रागुफा के दक्षिणीद्वार आया । तमिस्रागुफा में प्रविष्ट हुआ ।

फिर राजा भरत ने काकणी-रत्न लया । यह रत्न चार दिशाओं तथा ऊपर नीचे छः तलयुक्त था । ऊपर, नीचे एवं तिरछे–चार-चार कोटियों से युक्त था, उसकी आठ कर्णिकाएं थीं । अधिकारणी के आकारयुक्त था । वह अष्ट सौवर्णिक था–वह चार-अंगुल-परिमित था । विषनाशक, अनुपम, चतुरस्र-संस्थान-संस्थित, समतल तथा समुचित मानोन्मानयुक्त था, सर्वजन-प्रज्ञापक–था । जिस गुफा के अन्तर्वर्ती अन्धकार को न चन्द्रमा नष्ट कर पाता था, न सूर्य ही जिसे मिटा सकता था, न अग्नि ही उसे दूर कर सकती थी तथा न अन्य मणियाँ ही जिसे अपगत कर सकती थीं, उस अन्धकार को वह काकणी-रत्न नष्ट करता जाता था । उसकी दिव्य प्रभा बारह योजन तक विस्तृत थी । चक्रवर्ती के सैन्य-सन्निवेश में रात में दिन जैसा प्रकाश करते रहना उस मणि-रत्न का विशेष गुण था । उत्तर भरतक्षेत्र को विजय करने हेतु उसी के प्रकाश में राजा भरत ने सैन्यसहित तमिस्रा गुफा में प्रवेश किया ।

राजा भरत ने काकणी रत्न हाथ में लिए तमिस्रा गुफा की पूर्व दिशावर्ती तथा पश्चिम दिशावर्ती भित्तियों पर

एक एक योजन के अन्तर से पाँच सौ धनुष प्रमाण विस्तीर्ण, एक योजन क्षेत्र को उद्योतित करने वाले, रथ के चक्के की परिधि की ज्यों गोल, चन्द्र-मण्डल की ज्यों भास्वर, उनचास मण्डल आलिखित किये । वह तमिस्रा गुफा राजा भरत द्वारा यों एक एक योजन की दूरी पर आलिखित एक योजन तक उद्योत करने वाले उनचास मण्डलों से शीघ्र ही दिन के समान आलोकयुक्त हो गई ।

सूत्र - ७९

तमिस्रा गुफा के ठीक बीच में उन्मग्नजला तथा निमग्नजला नामक दो महानदियाँ हैं, जो तमिस्रा गुफा के पूर्वी भित्तिप्रदेश से निकलती हुई पश्चिमी भित्ति प्रदेश होती हुई सिन्धु महानदी में मिलती हैं । भगवन् ! इन नदियों के उन्मग्नजला तथा निमग्नजला–ये नाम किस कारण पड़े ? गौतम ! उन्मग्नजला महानदी में तृण, पत्र काष्ठ पाषाणखण्ड, घोड़ा, हाथी, रथ, योद्धा–या मनुष्य जो भी प्रक्षिप्त कर दिये जाए–वह नदी उन्हें तीन बार इधर-उधर घुमाकर किसी एकान्त, निर्जल स्थान में डाल देती है । निमग्नजला महानदी में तृण, पत्र, काष्ठ, यावत् मनुष्य जो भी प्रक्षिप्त कर दिये जाएं–वह उन्हें तीन बार इधर-उधर घुमाकर जल में निमग्न कर देती है–तत्पश्चात् अनेक नरेशों से युक्त राजा भरत चक्ररत्न द्वारा निर्देशित किये जाते मार्ग के सहारे आगे बढ़ता हुआ उच्च स्वर से सिंहनाद करता हुआ सिन्धु महानदी के पूर्वी तट पर अवस्थित उन्मग्नजला महानदी के निकट आया । वर्द्धकिरत्न को बुलाकर कहा–उन्मग्नजला और निमग्नजला महानदियों पर उत्तम पुलों का निर्माण करो, जो सैकड़ों खंभों पर सन्निविष्ट हों, अचल हों, अकम्प हों, कवच की ज्यों अभेद्य हों, जिसके ऊपर दोनों ओर दीवारें बनी हों, जो सर्वथा रत्नमय हों ।

राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वार्धकी रत्न चित्त में हर्षित, परितुष्ट एवं आनन्दित हुआ । विनयपूर्वक राजा का आदेश स्वीकार किया । शीघ्र ही उत्तम पुलों का निर्माण कर दिया, तत्पश्चात् राजा भरत अपनी समग्र सेना के साथ उन पुलों द्वारा, उन्मग्नजला तथा निमग्नजला नदियों को पार किया । यों ज्यों ही उसने नदियाँ पार की, तमिस्रा गुफा के उत्तरी द्वारा के कपाट क्रोञ्च पक्षी की तरह आवाज करते हुए सरसराहट के साथ अपने आप अपने स्थान से सरक गये– ।

सूत्र - ८०

उस समय उत्तरार्ध भरतक्षेत्र में–आपात संज्ञक किरात निवास करते थे । वे आढ्य, दीप्त, वित्त, भवन, शयन, आसन, यान, वाहन तथा स्वर्ण, रजत आदि प्रचुर धन के स्वामी थे । आयोग-प्रयोग-संप्रवृत्त–थे । उनके यहाँ भोजन कर चुकने के बाद भी खाने-पीने के बहुत पदार्थ बचते थे । उनके घरों में बहुत से नौकर-नौकरानियाँ, गायें, भैंसे, बैल, पाड़े, भेड़ें, बकरियाँ आदि थीं । वे लोगों द्वारा अपरिभूत थे, उनका कोई तिरस्कार या अपमान करने का साहस नहीं कर पाते थे । वे शूर थे, वीर थे, विक्रांत थे । उनके पास सेना और सवारियों की प्रचुरता एवं विपुलता थी । अनेक ऐसे युद्धों में, जिसमें मुकाबले की टक्करें थीं, उन्होंने अपना पराक्रम दिखाया था । उन आपात किरातों के देश में अकस्मात् सैकड़ों उत्पात हुए । असमय में बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी, फूलों के खिलने क समय न आने पर भी पेड़ों पर फूल आते दिखाई देने लगे । आकाश में भूत-प्रेत पुनः पुनः नाचने लगे ।

आपात किरातों ने अपने देश में इन सैकड़ों उत्पातों को आविर्भूत होते देखा । वे आपस में कहने लगे–हमारे देश में असमय में बादलों का गरजना यावत् सैकड़ों उत्पात प्रकट हुए हैं । न मालूम हमारे देश में कैसा उपद्रव होगा । वे उन्मनस्क हो गये । राज्य-भ्रंश, धनापहार आदि की चिन्ता से उत्पन्न शोकरूपी सागर में डूब गये–अपनी हथेली पर मुँह रखे वे आर्तध्यान में ग्रस्त हो भूमि की और दृष्टि डाले सोच–विचार में पड़ गये । तब राजा भरत चक्ररत्न द्वारा निर्देशित किये जाते मार्ग के सहारे तमिस्रा गुफा के उत्तरी द्वार से निकला । आपात किरातों ने राजा भरत की सेना के अग्रभाग को जब आगे बढ़ते हुए देखा तो वे तत्काल अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, विकराल तथा कुपित होते हुए, मिसमिसाहट करते हुए–कहने लगे–अप्रार्थित मृत्यु को चाहने वाला, दुःखद अन्त एवं अशुभ लक्षणवाला, पुण्य चतुर्दशी जिस दिन हीन थी–उस अशुभ दिन में जन्मा हुआ, अभागा, लज्जा, शोभा से परिवर्जित

वह कौन है, जो हमारे देश पर बलपूर्वक जल्दी-जल्दी चढ़ा आ रहा है । हम उसकी सेना को तितर-भितर कर दें, जिससे वह आक्रमण न कर सके । इस प्रकार उन्होंने मुकाबला करने का निश्चय किया ।

लोहे के कवच धारण किये, वे युद्धार्थ तत्पर हुए, अपने धनुषों पर प्रत्यंचा चढ़ा कर उन्हें हाथ में लिया, गले पर ग्रैवेयक-बाँधे, विशिष्ट वीरता सूचक चिह्न के रूप में उज्ज्वल वस्त्र-विशेष मस्तक-पर बाँधे । विविध प्रकार के आयुध, तलवार आदि शस्त्र धारण किये । वे जहाँ राजा भरत की सेना का अग्रभाग था वहाँ पहुँचकर वे उससे भिड़ गये । उन आपात किरातों ने राजा भरत की सेना के अग्रभाग के कतिपय विशिष्ट योद्धाओं को मार डाला, मथ डाला, घायल कर डाला, गिरा डाला । उनकी गरुड आदि चिह्नों से युक्त ध्वजाएं, पताकाएं नष्ट कर डालीं । राजा भरत की सेना के अग्रभाग के सैनिक बड़ी कठिनाई से अपने प्राण बचाकर इधर-उधर भाग छूटे ।

सूत्र - ८१

सेनापति सुषेण ने राजा भरत के सैन्य के अग्रभाग के अनेक योद्धाओं को आपात किरातों द्वारा हत, मथित देखा । सैनिकों को भागते देखा । सेनापति सुषेण तत्काल अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, विकराल एवं कुपित हुआ । वह मिसमिसाहट करता हुआ-कमलामेल नामक अश्वरत्न पर-आरूढ़ हुआ । वह घोड़ा अस्सी अंगुल ऊंचा था, निन्यानवे अंगुल मध्य परिधियुक्त था, एक सौ आठ अंगुल लम्बा था । उसका मस्तक बत्तीस अंगुल-प्रमाण था । उसके कान चार अंगुल प्रमाण थे । उसकी बाहा-बीस अंगुल था । उसके घुटने चार अंगुल-प्रमाण थे । जंघा-सोलह अंगुल थी । खुर चार अंगुल ऊंचे थे । देह का मध्य भाग मुक्तोली-सदृश गोल तथा वलित था । पीठ उपर ज सवार बैठता, तब वह कुछ कम एक अंगुल झुक जाती थी । पीठ क्रमशः देहानुरूप अभिनत थी, देह-प्रमाण के अनुरूप थी, सुजात थी, प्रशस्त थी, शालिहोत्रशास्त्र निरूपित लक्षणों के अनुरूप थी, विशिष्ट थी । हरिणी के जानु-ज्यों उन्नत थी, दोनों पार्श्व-भागों में विस्तृत तथा चरम भाग में स्तब्ध थी । उसका शरीर वेत्र, लता, कशा आदि के प्रहारों से परिवर्जित था-घुड़सवार के मनोनुकूल चलते रहने के कारण उसे बेंत, छड़ी, चाबुक आदि से तर्जित करना, ताडित करना सर्वथा अनपेक्षित था । लगाम स्वर्ण में जड़े दर्पण जैसा आकार लिये अश्वोचित स्वर्णाभरणों से युक्त थी । काठी बाँधने हेतु प्रयोजनीय रस्सी, उत्तम स्वर्णघटित सुन्दर पुष्पों तथा दर्पणों से समायुक्त थी, विविध रत्नमय थी । उसकी पीठ, स्वर्णयुक्त मणि-रचित तथा केवल स्वर्ण-निर्मित पत्रकसंज्ञक आभूषण जिनके बीच-बीच में जड़े थे, ऐसी नाना प्रकार की घंटियों और मोतियों की लड़ियों से परिमंडित थी, वह अश्व बड़ा सुन्दर प्रतीत होता था । मुखालंकरण हेतु कर्केतन मणि, इन्द्रनील मणि, मरकत मणि आदि रत्नों द्वारा रचित एवं माणिक के साथ आवद्धि-से वह विभूषित था । स्वर्णमय कमल के तिलक से उसका मुख सुसज्ज था ।

वह अश्व देवमति से-विरचित था । वह देवराज इन्द्र की सवारी के उच्चैःश्रवा नामक अश्व के समान गतिशील तथा सुन्दर रूप युक्त था । अपने मस्तक, गले, ललाट, मौलि एवं दोनों कानों के मूल में विनिवेशित पाँच चँवरों को-धारण किये था । वह अनभ्रचारी था-उसकी अन्यान्य विशेषताएं उच्चेःश्रवा जैसी ही थी । उसकी आँखें विकसित थीं, दृढ़ थीं, रोमयुक्त थीं । डांस, मच्छर आदि से रक्षा हेतु उस पर लगाये गये प्रच्छादनपट में-स्वर्ण के तार गुंथे थे । तालु तथा जिह्वा तपाये हुए स्वर्ण की ज्यों लाल थे । नासिका पर लक्ष्मी के अभिषेक का चिह्न था । जलगत कमल-पत्र जैसे वायु द्वारा आहत पानी की बूँदों से युक्त होकर सुन्दर प्रतीत होता है, उसी प्रकार वह अश्व अपने शरीर के लावण्य से बड़ा सुन्दर प्रतीत होता था । वह अचंचल था-उसके शरीर में स्फूर्ति थी । वह अश्व अपवित्र स्थानों को छोड़ता हुआ उत्तम एवं सुगम मार्ग द्वारा चलने की वृत्ति वाला था । अपने खुरों की टापों से भूमितल को अभिहत करता हुआ चलता था । अपने आरोहक द्वारा नचाये जाने पर वह अपने आगे के दोनों पैर एक साथ इस प्रकार ऊपर उठाता था, जिससे ऐसा प्रतीत होता, मानो उसके दोनों पैर एक ही साथ उसके मुख से निकल रहे हों । उसकी गति लाघवयुक्त-थी था-वह जल में भी स्थल की ज्यों शीघ्रता से चलने में समर्थ था ।

वह प्रशस्त बारह आवर्तों से युक्त था, जिनसे उसके उत्तम जाति, कुल तथा रूप का परिचय मिलता था । वह अश्वशास्त्रोक्त उत्तम कुल प्रसूत था । मेघावी-था । भद्र एवं विनीत था, उसके रोम अति सूक्ष्म, सुकोमल एवं

स्निग्ध थे, अपनी गति से दोड, मन वायु तथा गरुड़ की गति को जीतने वाला था, बहुत चपल और द्रुतगामी था । क्षमा में ऋषितुल्य था–प्रत्यक्षतः विनीत था । वह उदक, अग्नि, पत्थर, मिट्टी, कीचड़, कंकड़ों से युक्त स्थान, रेतीले स्थान, नदियों के तट, पहाड़ों की तलहटियाँ, ऊंचे-नीचे पठार, पर्वतीय गुफाएं–इन सबको लाँघने में, समर्थ था । प्रबल योद्धाओं द्वारा युद्ध में पातित–दण्ड की ज्यों शत्रु की छावनी पर अतर्कित रूप में आक्रमण करने की विशेषता से युक्त था । मार्ग में चलने से होनेवाली थकावट के बावजूद उसकी आँखों से कभी आँसू नहीं गिरते थे । उसका तालु कालेपन से रहित था । वह समुचित समय पर ही हिनहिनाहट करता था । वह जितनिद्र–था । मूत्र, पुरीष–का उत्सर्ग उचित स्थान खोजकर करता था । कष्टों में भी अखिन्न रहता था । नाक मोगरे के फूल के सदृश शुभ था । वर्ण तोते के पंख के समान सुन्दर था । देह कोमल थी । वह वास्तव में मनोहर था ।

ऐसे अश्वरत्न पर आरूढ़ सेनापति सुषेण ने राजा के हाथ से असिरत्न ली । वह तलवार नीलकमल की तरह श्यामल थी । घुमाये जाने पर चन्द्रमण्डल के सदृश दिखाई देती थी । शत्रुओं का विनाश करनेवाली थी । मूठ स्वर्ण तथा रत्न से निर्मित थी । उसमें से नवमालिका के पुष्प जैसी सुगन्ध आती थी । विविध प्रकार की मणियों से निर्मित बेल आदि के चित्र थे । धार बड़ी चमकीली और तीक्ष्ण थी । लोक में वह अनुपम थी । वह बाँस, वृक्ष, भैंसे आदि के सींग, हाथी आदि के दाँत, लोह, लोहमय भारी दण्ड, उत्कृष्ट वज्र–आदि का भेदन करने में समर्थ थी । वह सर्वत्र अप्रतिहत थी–बिना किसी रुकावट के दुर्भेद्य वस्तुओं के भेदन में समर्थ थी ।

सूत्र - ८२

वह तलवार पचास अंगुल लम्बी, सोलह अंगुल चौड़ी और मोटाई अर्ध-अंगुल प्रमाण थी ।

सूत्र - ८३

राजा के हाथ से उत्तम तलवार को लेकर सेनापति सुषेण, आपात किरातों से भिड़ गया । उसने आपात किरातों में से अनेक प्रबल योद्धाओं को मार डाला, मथ डाला तथा घायल कर डाला ।

सूत्र - ८४

सेनापति सुषेण द्वारा हत–मथित किये जाने पर, मेदान छोड़कर भागे हुए आपात किरात बड़े भीत, त्रस्त, व्यथित, पीड़ायुक्त, उद्विग्न होकर घबरा गये । वे अपने को निर्बल, निर्वीर्य तथा पौरुष-पराक्रम रहित अनुभव करने लगे । शत्रु-सेना का सामना करना शक्य नहीं है, यह सोचकर वे वहाँ से अनेक योजन दूर भाग गये । यों दूर जाकर वे एक स्थान पर आपस में मिले, सिन्धु महानदी आये । बालू के बिछौने तैयार किये । तेले की तपस्या की । वे अपने मुख ऊंचे किये, निर्वस्त्र हो घोर आतापना सहते हुए मेघमुख नामक नागकुमारों का, जो उनके कुल-देवता थे, मन में ध्यान करते हुए अभिरत हो गए । मेघमुख नागकुमार देवों के आसन चलित हुए । मेघमुख नागकुमार देवों ने अवधिज्ञान द्वारा आपात किरातों को देखा । उन्हें देखकर कहने लगे–जम्बूद्वीप के उत्तरार्ध भरतक्षेत्र में सिन्धु महानदी पर आपात किरात हमारा ध्यान करते हुए विद्यमान हैं । देवानुप्रियों ! यह उचित है कि हम उन आपात किरातों के समक्ष प्रकट हों ।

इस प्रकार परस्पर विचार कर उन्होंने वैसा करने का निश्चय किया । वे उत्कृष्ट, तीव्र गति से, आपात किरात थे, वहाँ आये । उन्होंने छोटी-छोटी घण्टिओं सहित पंचरंगे उत्तम वस्त्र पहन रखे थे । आकाश में अधर अवस्थित होते हुए वे आपात किरातों से बोले–तुम बालू के संस्तारकों पर अवस्थित हो, यावत् हमारा–ध्यान कर रहे हो । यह देखकर हम तुम्हारे कुलदेव मेघमुख नागकुमार तुम्हारे समक्ष प्रकट हुए हैं । तुम क्या चाहते हो ? हम तुम्हारे लिए क्या करें ? मेघमुख नागकुमार देवों का यह कथन सुनकर आपात किरात अपने चित्त में हर्षित, परितुष्ट तथा आनन्दित हुए, मेघमुख नागकुमार देव को हाथ जोड़े, मेघमुख नागकुमार देवों को जय-विजय शब्दों द्वारा वर्धापित किया और बोले–

देवानुप्रियों ! अप्रार्थित मृत्यु का प्रार्थी यावत् लज्जा, शोभा से परिवर्जित कोई पुरुष है, जो बलपूर्वक

जल्दी-जल्दी हमारे देश पर चढ़ा आ रहा है । आप उसे वहाँ से हटा दीजिए, जिससे वह हमारे देश पर आक्रमण नहीं कर सके । तब मेघमुख नागकुमार देवों ने कहा–तुम्हारे देश पर आक्रमण करनेवाला महाऋद्धिशाली, परम द्युतिमान्, परम सौख्ययुक्त, चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा है । उसे न कोई देव, न कोई किंपुरुष, न कोई महोरग तथा न कोई गन्धर्व ही रोक सकता है, न बाधा उत्पन्न कर सकता है । न उसे शस्त्र, अग्नि तथा मन्त्र प्रयोग द्वारा ही उपद्रुत किया जा सकता है । फिर भी तुम्हारे अभीष्ट हेतु उपसर्ग करेंगे । उन्होंने वैक्रिय समुद्घात द्वारा आत्मप्रदेशों को देह से बाहर निकाला । गृहीत पुद्गलों के सहारे बादलों की विकुर्वणा की । जहाँ राजा भरत की छावनी थी, वहाँ आये । बादल शीघ्र ही धीमे-धीमे गरजने लगे । बिजलियाँ चमकने लगीं । पानी बरसाने लगे । सात दिन-रात तक युग, मूसल एवं मुष्टिका के सदृश मोटी धाराओं से पानी बरसता रहा ।

सूत्र - ८५

राजा भरत ने उस वर्षा को देखा । अपने चर्मरत्न का स्पर्श किया । वह चर्मरत्न कुछ अधिक बारह योजन तिरछा विस्तीर्ण हो गया– । तत्पश्चात् राजा भरत अपनी सेना सहित उस चर्मरत्न पर आरूढ़ हो गया । छत्ररत्न छुआ, वह छत्ररत्न निन्यानवें हजार स्वर्ण-निर्मित शलाकाओं से–ताड़ियों से परिमण्डित था । बहुमूल्य था, अयोध्या था, निर्व्रण था, सुप्रशस्त, विशिष्ट, मनोहर एवं स्वर्णमय सुदृढ़ दण्ड से युक्त था । उसका आकार मृदु था । वह बस्ति-प्रदेश में–अनेक शलाकाओं से युक्त था । पिंजरे जैसा प्रतीत होता था । उस पर विविध प्रकार की चित्रकारी थी । उस पर मणि, मोती, मूंगे, तपाये हुए स्वर्ण तथा रत्नों द्वारा पूर्ण कलश आदि मांगलिक-वस्तुओं के पंचरंगे उज्ज्वल आकार बने थे । रत्नों की किरणों के सदृश रंगरचना में निपुण पुरुषों द्वारा वह सुन्दर रूप में रंगा हुआ था। उस पर राजलक्ष्मी का चिह्न अंकित था । अर्जुन स्वर्ण द्वारा उसका पृष्ठभाग आच्छादित था । उसके चार कोण परितापित स्वर्णमय पट्ट से परिवेष्टित थे । वह अत्यधिक श्री से युक्त था । उसका रूप शरद् ऋतु के निर्मल, परिपूर्ण चन्द्रमण्डल के सदृश था । उसका स्वाभाविक विस्तार राजा भरत द्वारा तिर्यक्प्रसारित–अपनी दोनों भुजाओं के विस्तार जितना था । वह कुमुद–वन सदृश धवल था । राजा भरत का मानो जंगम विमान था । सूर्य के आतप, आयु, वर्षा आदि दोषों–का विनाशक था । पूर्व जन्म में आचरित तप, पुण्यकर्म के फलस्वरूप वह प्राप्त था ।

सूत्र - ८६

वह छत्ररत्न अहत–था, ऐश्वर्य आदि अनेक गुणों का प्रदायक था । हेमन्त आदि ऋतुओं में तद्विपरीत सुखप्रद छाया देता था । छत्रों में उत्कृष्ट एवं प्रधान था ।

सूत्र - ८७

अल्पपुण्य–पुरुषों के लिए दुर्लभ था । वह छत्ररत्न छह खण्डों के अधिपति चक्रवर्ती राजाओं के पूर्वाचरित तप के फल का एक भाग था । देवयोनि में भी अत्यन्त दुर्लभ था । उस पर फूलों की मालाएं लटकती थीं, शरद् ऋतु के धवल मेघ तथा चन्द्रमा के प्रकाश के समान भास्वर था । एक सहस्र देवों से अधिष्ठित था । राजा भरत का वह छत्ररत्न ऐसा प्रतीत होता था, मानो भूतल पर परिपूर्ण चन्द्रमण्डल हो । राजा भरत द्वारा छुए जाने पर वह छत्ररत्न कुछ अधिक बारह योजन तिरछा विस्तीर्ण हो गया– ।

सूत्र - ८८

राजा भरत ने छत्ररत्न को अपनी सेना पर तान दिया । मणिरत्न का स्पर्श किया । उस मणिरत्न को राजा भरत ने छत्ररत्न के बस्तिभाग में–स्थापित किया । राजा भरत के साथ गाथापतिरत्न था । वह अपनी अनुपम विशेषता–लिये था । शिला की ज्यों अति स्थिर चर्मरत्न पर केवल वपन मात्र द्वारा शालि, जौ, गेहूँ, मूँग, उर्द, तिल, कुलथी, षष्टिक, निष्पाव, चने, कोद्रव, कुस्तुंभरी, कंगु, वरक, रालक, धनिया, वरण, लौकी, ककड़ी, तुम्बक, बिजौरा, कटहल, आम, इमली आदि समग्र फल, सब्जी आदि पदार्थों को उत्पन्न करने में कुशल था । उस श्रेष्ठ गाथापति ने उसी दिन बोये हुए, पके हुए, साफ किये हुए सब प्रकार के धान्यों के सहस्रों कुंभ राजा भरत को

समर्पित किये । राजा भरत उस भीषण वर्षा के समय चर्मरत्न पर आरूढ़ रहा, छत्ररत्न द्वारा आच्छादित रहा, मणिरत्न द्वारा किये गये प्रकाश में सात दिन-रात सुखपूर्वक सुरक्षित रहा ।

सूत्र - ८९

उस अवधि में राजा भरत को तथा उस की सेना को न भूख ने पीड़ित किया, न उन्होंने दैन्य का अनुभव किया और न वे भयभीत और दुःखित ही हुए ।

सूत्र - ९०

राजा भरत को इस रूप में रहते हुए सात दिन रात व्यतीत हो गये तो उस के मन में ऐसा विचार, भाव, संकल्प उत्पन्न हुआ–कौन ऐसा है, जो मेरी दिव्य ऋद्धि तथा दिव्य द्युति की विद्यामानता में भी मेरी सेना पर युग, मूसल एवं मुष्टिका प्रमाण जलधारा द्वारा सात दिन-रात हुए, भारी वर्षा करता जा रहा है । राजा भरत ने मन में ऐसा विचार, भाव १६००० देव, जानकर चौदह रत्नों के रक्षक १४००० देव तथा २००० राजा भरत के अंगरक्षक देव–युद्ध हेतु सन्नद्ध हो गये । मेघमुख नागकुमार देव थे, वहाँ आकर बोले–मृत्यु को चाहने वाले, मेघमुख नागकुमार देवों ! क्या तुम चातुरन्त चक्रवर्ती राजा भरत को नहीं जानते ? वह महा ऋद्धिशाली है । फिर भी तुम राजा भरत की सेना पर युग, मूसल तथा मुष्टिकाप्रमाण जलधाराओं द्वारा सात दिन-रात हुए भीषण वर्षा कर रहे हो। तुम्हारा यह कार्य अनुचित है–तुम अब शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ, अन्यथा मृत्यु की तैयारी करो ।

जब उन देवताओं ने मेघमुख नागकुमार देवों को इस प्रकार कहा तो वे भीत, त्रस्त, व्यथित एवं उद्विग्न हो गये, बहुत डर गये । उन्होंने बादलों की घटाएं समेट लीं । जहाँ आपात किरात थे, वहाँ आए और बोले–राजा भरत महा ऋद्धिशाली है । फिर भी हमने तुम्हारा अभीष्ट साधने हेतु राजा भरत के लिए उपसर्ग–किया । अब तुम जाओ, स्नान करो, गीली धोती, गीला दुपट्टा धारण किये हुए, वस्त्रों के नीचे लटकते किनारों को सम्हाले हुए–श्रेष्ठ, उत्तम रत्नों को लेकर हाथ जोड़े राजा भरत के चरणों में पड़ो, उसकी शरण लो । उत्तमपुरुष विनम्रजनों प्रति वात्सल्य-भाव रखते हैं, उनका हित करते हैं । तुम्हें राजा भरत से कोई भय नहीं होगा । मेघमुख नागकुमार देवों द्वारा यों कहे जाने पर वे आपात किरात उठे । स्नान किया यावत् श्रेष्ठ, उत्तम रत्न लेकर जहाँ राजा भरत था, वहाँ आये । हाथ जोड़े, राजा भरत को 'जय विजय' शब्दों द्वारा वर्धापित किया, श्रेष्ठ, उत्तम रत्न भेंट किये तथा इस प्रकार बोले–

सूत्र - ९१

षट्खण्डवर्ती वैभव के स्वामिन् ! गुणभूषित ! जयशील ! लज्जा, लक्ष्मी, धृति, कीर्ति के धारक ! राजोचित सहस्रों लक्षणों से सम्पन्न ! नरेन्द्र ! हमारे इस राज्य का चिरकाल पर्यन्त आप पालन करें ।

सूत्र - ९२

अश्वपते ! गजपते ! नरपते ! नवनिधिपते ! भरत क्षेत्र के प्रथमाधिपते ! बत्तीस हजार देशों के राजाओं के अधिनायक ! आप चिरकाल तक जीवित रहें–दीर्घायु हों ।

सूत्र - ९३

प्रथम नरेश्वर ! ऐश्वर्यशालीन् ! ६४००० नारियों के हृदयेश्वर–मागध तीर्थाधिपति आदि लाखों देव के स्वामिन् ! चतुर्दश रत्नों के धारक ! यशस्विन् !

सूत्र - ९४

आपने दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम दिशा में समुद्रपर्यन्त और उत्तर दिशा में क्षुल्ल हिमवान् गिरि पर्यन्त समग्र भरतक्षेत्र को जीत लिया है । हम आपके प्रजाजन हैं ।

सूत्र - ९५

आपकी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार तथा पराक्रम–ये सब आश्चर्यकारक हैं । आपको दिव्य देव–द्युति–परमोत्कृष्ट प्रभाव अपने पुण्योदय से प्राप्त है । हमने आपकी ऋद्धि का साक्षात् अनुभव किया है । देवानुप्रिय ! हम आपसे क्षमायाचना करते हैं । आप हमें क्षमा करें । हम भविष्य में फिर कभी ऐसा नहीं करेंगे ।

यों कहकर वे हाथ जोड़े राजा भरत के चरणों में गिर पड़े । फिर राजा भरत ने उन आपात किरातों द्वार भेंट के रूप में उपस्थापित उत्तम, श्रेष्ठ रत्न स्वीकार किये । उन से कहा–तुम अब अपने स्थान पर जाओ । मैंने तुमको अपनी भुजाओं की छाया में स्वीकार कर लिया है । तुम निर्भय, निरुद्वेग, व्यथा रहित होकर सुखपूर्वक रहो । अब तुम्हें किसी से भी भय नहीं है । यों कहकर राजा भरत ने उन्हें सत्कृत, सम्मानित कर विदा किया । तब राजा भरत ने सेनापति सुषेण को बुलाया और कहा–जाओ, पूर्वसाधित निष्कुट, सिन्धु महानदी के पश्चिम भागवर्ती कोण में विद्यमान, पश्चिम में सिन्धु महानदी तथा पश्चिमी समुद्र, उत्तर में क्षुल्ल हिमवान् पर्वत तथा दक्षिण में वैताढ्य पर्वत द्वारा मर्यादित–प्रदेश को, उसके, सम-विषम कोणस्थ स्थानों को साधित करो । वहाँ से उत्तम, श्रेष्ठ रत्नों को भेंट के रूप में प्राप्त करो । यह सब कर मुझे शीघ्र ही अवगत कराओ । शेष वर्णन पूर्ववत् जानना ।

सूत्र - ९६

तत्पश्चात् वह दिव्य चक्ररत्न शास्त्रागार से बाहर निकला, ईसान-कोण में लघु हिमवान् पर्वत की ओर चला। राजा भरत ने क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत से कुछ ही दूरी पर सैन्य-शिबिर स्थापित किया । उसने क्षुद्र हिमवान् गिरिकुमार देव को उद्दिष्ट कर तेले की तपस्या की । शेष कथन मागधतीर्थ समान जानना । राजा भरत क्षुद्र हिमवान् वर्षधर पर्वत आया । उसने वेगपूर्वक चलते हुए घोड़ों को नियन्त्रित किया । यावत् राजा भरत द्वारा ऊपर आकाश में छोड़ा गया वह बाण शीघ्र ही बहत्तर योजन तक जाकर क्षुद्र हिमवान् गिरिकुमार देव की मर्यादा में–गिरा । यावत् उसने प्रीतिदान–रूप में सर्वोषधियाँ, कल्पवृक्ष के फूलों की माला, गोशीर्ष चन्दन, कटक, पद्मद्रह का जल लिया । राजा भरत के पास आकर बोला–मैं क्षुद्र हिमवान् पर्वत की सीमा में आपके देश का वासी हूँ । मैं आपका आज्ञानुवर्ती सेवक हूँ । उत्तर दिशा का अन्तपाल हूँ–आप मेरे द्वारा उपहृत भेंट स्वीकार करें । राजा भरत ने क्षुद्र हिमवान्–गिरिकुमार देव द्वारा इस प्रकार भेंट किये गए उपहार स्वीकार करके देव को विदा किया ।

सूत्र – ९७-१००

तत्पश्चात् राजा भरत ने अपने रथ के घोड़ों को नियन्त्रित किया । रथ को वापस मोड़ा । ऋषभकूट पर्वत आया । रथ के अग्र भाग से तीन बार ऋषभकूट पर्वत का स्पर्श किया । काकणी रत्न का स्पर्श किया । वह रत्न चार दिशाओं तथा ऊपर, नीचे छह तलयुक्त था । यावत् अष्टस्वर्णमानपरिमाण था । राजा ने काकणी रत्न का स्पर्श कर ऋषभकूट पर्वत के पूर्वीय कटक में–नामांकन किया–

इस अवसर्पिणी काल के तीसरे आरक के पश्चिम भाग में–मैं भरत चक्रवर्ती हुआ हूँ । मैं भरतक्षेत्र का प्रथम राजा–हूँ, अधिपति हूँ, नरवरेन्द्र हूँ । मेरा कोई प्रतिशत्रु नहीं है । मैंने भरतक्षेत्र को जीत लिया है ।

वैसा कर अपने रथ को वापस मोड़ा । अपना सैन्य-शिबिर था, वहाँ आया । यावत् क्षुद्र हिमवान्-गिरिकुमार देव को विजय करने के उपलक्ष्य में समायोजित अष्ट दिवसीय महोत्सव के सम्पन्न हो जाने पर वह दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकला । दक्षिण दिशा में वैताढ्य पर्वत की ओर प्रयाण किया ।

सूत्र - १०१

राजा भरत ने उस दिव्य चक्ररत्न को दक्षिण दिशा में वैताढ्य पर्वत की ओर जाते हुए देखा । वह वैताढ्य पर्वत की उत्तर दिशावर्ती तलहटो में आया । वहाँ सैन्यशिबिर स्थापित किया । पौषधशाला में प्रविष्ट हुआ । श्रीऋषभस्वामी के कच्छ तथा महाकच्छ नामक प्रधान सामन्तों के पुत्र नमि एवं विनमि नामक विद्याधर राजाओं को उद्दिष्ट कर तेला किया । नमि, विनमि विद्याधर राजाओं का मन में ध्यान करता हुआ वह स्थित रहा । तब नमि,

विनमि विद्याधर राजाओं को अपनी दिव्य मति द्वारा इसका भान हुआ । वे एक दूसरे के पास आये और कहने लगे –जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में भरत चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ है । अतीत, प्रत्युत्पन्न तथा अनागत–विद्याधर राजाओं के लिए यह उचित है–कि वे राजा को उपहार भेंट करें । यह सोचकर विद्याधर राज विनमि ने चक्रवर्ती राजा भरत को भेंट करने हेतु सुभद्रा नामक स्त्रीरत्न लिया । स्त्रीरत्न–सुभद्रा का शरीर मानोन्मान प्रमाणयुक्त था–वह तेजस्विनी थी, रूपवती एवं लावण्यमयी थी । वह स्थिर यौवन युक्त थी–शरीर के केश तथा नाखून नहीं बढ़ते थे । उसके स्पर्श से सब रोग मिट जाते थे । वह बल-वृद्धिकारिणी थी–ग्रीष्म ऋतु में वह शीतस्पर्शी तथा शीत ऋतु में उष्णस्पर्शी थी।

सूत्र - १०२

वह तीन स्थानों में–कृश थी । तीन स्थानों में लाल थी । त्रिवलियुक्त थी । तीन स्थानों में–उन्नत थी । तीन स्थानों में गंभीर थी । तीन स्थानों में कृष्णवर्ण थी । तीन स्थानों में–श्वेतता लिये थी । तीन स्थानों में–लम्बाई लिये थी । तीन स्थानों में–चौड़ाई युक्त थी ।

सूत्र - १०३

वह समचौरस दैहिक संस्थानयुक्त थी । भरतक्षेत्र में समग्र महिलाओं में वह प्रधान–थी । उसके स्तन, जघन, हाथ, पैर, नेत्र, केश, दाँत–सभी सुन्दर थे, देखने वाले पुरुष के चित्त को आह्लादित करनेवाले थे, आकृष्ट करनेवाले थे । वह मानो शृंगार–रस का आगार थी । लोक–व्यवहार में वह कुशल थी । वह रूप में देवांगनाओं के सौन्दर्य का अनुसरण करती थी । वह सुखप्रद यौवन में विद्यमान थी । विद्याधरराज नमि ने चक्रवर्ती भरत को भेंट करने हेतु रत्न, कटक तथा त्रुटित लिये । उत्कृष्ट त्वरित, तीव्र विद्याधर-गति द्वारा वे दोनों, राजा भरत था, वहाँ आये। वे आकाश में अवस्थित हुए । उन्होंने जय-विजय शब्दों द्वारा राजा भरत को वर्धापित किया और कहा–

हम आपके आज्ञानुवर्ती सेवक हैं । यह कहकर विनमि ने स्त्रीरत्न तथा नेमि ने रत्न, आभरण भेंट किये । राज भरत ने उपहार स्वीकार कर नमि एवं विनमि का सत्कार किया, सम्मान किया । विदा किया । यावत् अष्ट दिवसीय महोत्सव आयोजित किया । पश्चात् दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकाला । उसने ईशान-कोण में गंगा देवी के भवन की ओर प्रयाण किया । शेष कथन सिन्धु देवी के प्रसंग समान है । विशेष यह की गंगा देवी ने राजा भरत को भेंट रूप में विविध रत्नों से युक्त १००८ कलश, स्वर्ण एवं विविध प्रकार की मणियों से चित्रित–दो सोने के सिंहासन विशेषरूप से उपहृत किये । फिर राजा ने अष्टदिवसीय महोत्सव आयोजित करवाया ।

सूत्र - १०४

तत्पश्चात् वह दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकला । उसने गंगा महानदी के पश्चिमी किनारे दक्षिण दिशा के खण्डप्रपात गुफा की ओर प्रयाण किया । तब राजा भरत खण्डप्रपात गुफा आया । शेष कथन तमिस्रा गुफा के अधिपति कृतमाल देव समान है । केवल इतना सा अन्तर है, खण्डप्रपात गुफा के अधिपति नृत्तमालक देव ने प्रीतिदान के रूप में राजा भरत को आभूषणों से भरा हुआ पात्र, कटक–भेंट किये । नृत्तमालक देव को विजय करने के उपलक्ष्य में आयोजित अष्टदिवसीय महोत्सव के सम्पन्न हो जाने पर राजा भरत ने सेनापति सुषेण को बुलाया । शेष कथन सिन्धुदेवी समान है ।

सेनापति सुषेण ने गंगा महानदी के पूर्वभागवर्ती कोण–प्रदेश को, जो पश्चिम में महानदी से, पूर्व में समुद्र से, दक्षिण में वैताढ्य पर्वत से एवं उत्तर में लघु हिमवान् पर्वत से मर्यादित था, तथा सम-विषम अवान्तरक्षेत्रीय कोणवर्ती भागों को साधा । श्रेष्ठ, उत्तम रत्न भेंट में प्राप्त किये । वैसा कर सेनापति सुषेण गंगा महानदी आया । उसने निर्मल जल की ऊंची उछलती लहरों से युक्त गंगा महानदी को नौका के रूप में परिणत चर्मरत्न द्वारा सेना सहित पार किया । जहाँ राजा भरत था, वहाँ आकर आभिषेक्य हस्तिरत्न से नीचे ऊतरा । उत्तम, श्रेष्ठ रत्न लिये, जहाँ दोनों हाथ जोड़े अंजलि बाँधे राजा भरत को जय-विजय समर्पित किए । राजा भरत ने सेनापति सुषेण द्वारा समर्पित रत्न स्वीकार कर सेनापति सुषेण का सत्कार किया, सम्मान किया । विदा किया । शेष कथन पूर्ववत्

जानना । तत्पश्चात् एक समय राजा भरत ने सेनापतिरत्न सुषेण को बुलाकर कहा–जाओ, खण्डप्रपात गुफा के उत्तरी द्वार के कपाट उद्घाटित करो । शेष कथन तमिस्रा गुफा के समान है ।

फिर राजा भरत उत्तरी द्वार से गया । सघन अन्धकार को चीर कर जैसे चन्द्रमा आगे बढ़ता है, उसी तरह खण्डप्रपात गुफा में प्रविष्ट हुआ, मण्डलों का आलेखन किया । खण्डप्रपात गुफा के ठीक बीच के भाग में उन्मग्न जला तथा निमग्नजला नामक दो बड़ी नदियाँ नीकलती हैं । इनका वर्णन पूर्ववत् है । केवल इतना अन्तर है, ये नदियाँ खण्डप्रपात गुफा के पश्चिमी भाग से निकलती हुई, आगे बढ़ती हुई पूर्वी भाग में गंगा महानदी में मिल जाती हैं । शेष वर्णन पूर्ववत् । केवल इतना अन्तर है, पुल गंगा के पश्चिमी किनारे पर बनाया । तत्पश्चात् खण्डप्रपात गुफा के दक्षिणी द्वार के कपाट क्रौञ्चपक्षी की ज्यों जोर से आवाज करते हुए सरसराहट के साथ स्वयमेव अपने स्थान से सरक गये, चक्ररत्न द्वारा निर्देशित मार्ग का अनुसरण करता हुआ, राजा भरत निबिड अन्धकार को चीर कर आगे बढ़ते हुए चन्द्रमा की ज्यों खण्डप्रपात गुफा के दक्षिणी द्वार से निकला ।

सूत्र – १०५-१०६

तत्पश्चात्–गुफा से निकलने के बाद राजा भरत ने गंगा महानदी के पश्चिमी तट पर बारह योजन लम्बा, नौ योजन चौड़ा, श्रेष्ठ-नगर-सदृश-सैन्यशिबिर स्थापित किया । शेष कथन मागध देव समान है । फिर राजा ने नौ निधिरत्नों को–उद्दिष्ट कर तेला किया । राजा भरत नौ निधियों का मन में चिन्तन करता हुआ पौषधशाला में अवस्थित रहा । नौ निधियाँ अपने अधिष्ठातृ-देवों के साथ वहाँ राजा भरत के समक्ष उपस्थित हुईं ।

वे निधियाँ अपरिमित-लाल, नीले, पीले, हरे, सफेद आदि अनेक वर्णों के रत्नों से युक्त थीं, ध्रुव, अक्षय तथा अव्यय–थीं, लोकविश्रुत थीं । वे इस प्रकार हैं– नैसर्प, पाण्डुक, पिंगलक, सर्वरत्न, महापद्म, काल, महाकाल, माणवक तथा शंखनिधि ।

सूत्र - १०७

नैसर्प निधि–ग्राम, आकर, नगर, पट्टन, द्रोणमुख, मडम्ब, स्कन्धावार, आपण तथा भवन–इनके स्थापन–की विशेषता होती है ।

सूत्र - १०८

पाण्डुक निधि–गिने जाने योग्य, मापे जानेवाले धान्य आदि, तोले जानेवाले चीनी, गुड़ आदि, कमल जाति के उत्तम चावल आदि धान्यों के बीजों को उत्पन्न करने में समर्थ होती हैं ।

सूत्र - १०९

पिंगलक निधि–पुरुषों, नारियों, घोड़ों तथा हाथियों के आभूषणों को उत्पन्न करने में समर्थ होती है ।

सूत्र - ११०

सर्वरत्न निधि–चक्रवर्ती के चौदह उत्तम रत्नों को उत्पन्न करती है । उनमें चक्ररत्न आदि सात एकेन्द्रिय होते हैं । सेनापतिरत्न आदि सात पंचेन्द्रिय होते हैं ।

सूत्र - १११

महापद्म निधि–सब प्रकार के वस्त्रों को उत्पन्न करती है । वस्त्रों के रंगने, धोने आदि समग्र सज्जा के निष्पादन में समर्थ होती है ।

सूत्र - ११२

काल निधि–समस्त ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान, तीर्थंकर, चक्रवर्ती तथा बलदेव-वासुदेव–वंश में जो शुभ, अशुभ घटित हुआ, होगा, हो रहा है, उन सब के ज्ञान, सौ प्रकार के शिल्पों के ज्ञान, उत्तम, मध्यम तथा अधम कर्मों के ज्ञान को उत्पन्न करने में समर्थ होती है ।

सूत्र - ११३

महाकाल निधि–विविध प्रकार के लोह, रजत, स्वर्ण, मणि, मोती, स्फटिक तथा प्रवाल आदि के आकारों को उत्पन्न करने की विशेषतायुक्त होती है ।

सूत्र - ११४

माणवक निधि–योद्धाओं, आवरणों, प्रहरणों, सब प्रकार की युद्ध-नीति के तथा साम, दाम, दण्ड एवं भेद मूलक राजनीति के उद्भव की विशेषता युक्त होती है ।

सूत्र - ११५

शंख निधि–नृत्य-विधि, नाटक-विधि–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष–के प्रतिपादक काव्यों की अथवा गद्य, पद्य, गेय, चौर्ण–काव्यों की उत्पत्ति एवं सब प्रकार के वाद्यों को उत्पन्न करने की विशेषतायुक्त होती है ।

सूत्र - ११६

उनमें से प्रत्येक निधि का अवस्थान आठ-आठ चक्रों के ऊपर होता है–जहाँ-जहाँ ये ले जाई जाती हैं, वहाँ-वहाँ ये आठ चक्रों पर प्रतिष्ठित होकर जाती हैं । उनकी ऊंचाई आठ-आठ योजन की, चौड़ाई नौ-नौ योजन की तथा लम्बाई बारह-बारह योजन की होती है । उनका आकार मंजूषा–पेटी जैसा होता है । गंगा जहाँ समुद्र में मिलती है, वहाँ उनका निवास है ।

सूत्र - ११७

उन के कपाट वैडूर्य मणिमय होते हैं । वे स्वर्ण-घटित होती हैं । विविध प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण–होती हैं। उन पर चन्द्र, सूर्य तथा चक्र के आकार के चिह्न होते हैं । उन के द्वारों की रचना अनुसम–अविषम होती है ।

सूत्र – ११८-११९

निधियों के नामों के सदृश नामयुक्त देवों की स्थिति एक पल्योपम होती है । उन देवों के आवास अक्रयणीय–होते हैं–उन पर आधिपत्य प्राप्त नहीं कर सकता । प्रचुर धन-रत्न-संचय युक्त ये नौ निधियाँ भरतक्षेत्र के छहों खण्डों को विजय करने वाले चक्रवर्ती राजाओं के वंशगत होती हैं ।

सूत्र - १२०

राजा भरत तेले की तपस्या के परिपूर्ण हो जाने पर पौषधशाला से बाहर निकला, स्नानघर में प्रविष्ट हुआ । स्नान आदि सम्पन्न कर उसने श्रेणि-प्रश्रेणि-जनों को बुलाया, नौ निधियों को साध लेने के उपलक्ष्य में । अष्ट-दिवसीय महोत्सव के सम्पन्न हो जाने पर राजा भरत ने सेनापति सुषेण को बुलाया । उससे कहा–जाओ, गंगा महानदी के पूर्व में अवस्थित, भरतक्षेत्र के कोणस्थित दूसरे प्रदेश को, जो पश्चिम दिशा में गंगा से, पूर्व एवं दक्षिण दिशा में समुद्रों से और उत्तर दिशा में वैताढ्य पर्वत से मर्यादित हैं तथा वहाँ के अवान्तरक्षेत्रीय समविषम कोणस्थ प्रदेशों को अधिकृत करो । शेष वर्णन पूर्ववत् । सेनापति सुषेणने उन क्षेत्रों को अधिकृत कर राजा भरत को उस से अवगत कराया । राजा भरत ने उसे सत्कृत, सम्मानित कर बिदा किया ।

तत्पश्चात् वह दिव्य चक्ररत्न शस्त्रागार से बाहर निकला । यावत् वह एक सहस्र योद्धाओं से संपरिवृत्त था–घिरा था । दिव्य नैऋत्य कोण में विनीता राजधानी की ओर प्रयाण किया । राजा भरत ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–आभिषेक्य हस्तिरत्न को तैयार करो । मेरे आदेशानुरूप यह सब संपादित कर मुझे सूचित करो ।

सूत्र - १२१

राजा भरत ने इस प्रकार राज्य अर्जित किया– । शत्रुओं को जीता । उसके यहाँ समग्र रत्न उद्भूत हुए । नौ निधियाँ प्राप्त हुईं । खजाना समृद्ध था–। बत्तीस हजार राजाओं से अनुगत था । साठ हजार वर्षों में समस्त भरतक्षेत्र को साध लिया । तदनन्तर राजा भरत ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–'देवानुप्रियों ! शीघ्र ही

आभिषेक्य हस्तिरत्न को तैयार करो, चातुरंगिणि सेना सजाओ । राजा स्नान आदि कृत्यों से निवृत्त होकर अंजनगिरि के शिखर के समान उन्नत गजराज पर आरूढ़ हुआ । स्वस्तिक, श्रीवत्स आदि ये आठ मंगल राजा के आगे चले–उनके बाद जल से परिपूर्ण कलश, भृंगार, दिव्य छत्र, पताका, चँवर तथा दर्शन रचित–राजा को दिखाई देने वाली, आलोक-दर्शनीय-हवा से फहराती, उच्छित, विजयध्वजा लिये राजपुरुष चले ।

तदनन्तर वैडूर्य–की प्रभा से देदीप्यमान उज्ज्वल दंडयुक्त, लटकती हुई कोरंट पुष्पों की मालाओं से सुशोभित, चन्द्रमंडल के सदृश आभामय, समुच्छित–आतपत्र, सिंहासन, श्रेष्ठ मणि-रत्नों से विभूषित–पादुकाओं की जोड़ी रखी थी, वह पादपीठ –चौकी, जो किङ्करों, भृत्यों तथा पदातियों–क्रमशः आगे रवाना किये गये । तत्पश्चात् चक्ररत्न, छत्ररत्न, चर्मरत्न, दण्डरत्न, असिरत्न, मणिरत्न, काकणीरत्न–ये सात एकेन्द्रिय रत्न यथाक्रम चले । उनके पीछे क्रमशः नौ निधियाँ चलीं । उनके बाद १६००० देव चले । उनके पीछे ३२००० राजा चले । उन के पीछे सेनापतिरत्न, गाथापतिरत्न, वर्धकिरत्न तथा पुरोहितरत्न ने प्रस्थान किया । तत्पश्चात् स्त्रीरत्न–सुभद्रा, ३२००० ऋतुकल्याणिकाएं तथा ३२००० जनपदकल्याणिकाएं–यथाक्रम चलीं । उनके पीछे बत्तीस-बत्तीस अभिनेतव्य प्रकारों से परिबद्ध–३२००० नाटक चले ।

तदनन्तर ३६० सूपकार, अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि जन–चले । उनके पीछे क्रमशः ८४ लाख घोड़े, ८४ लाख हाथी, ९६ करोड़ मनुष्य–चले । तत्पश्चात् अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, सार्थवाह आदि चले । तत्पश्चात् असिग्राह, लष्टिग्राह, कुन्तग्राह, चापग्राह, चमरग्राह, पाशग्राह, फलकग्राह, परशुग्राह, पुस्तकग्राह, वीणाग्राह, कूप्यग्राह, हड़प्फग्राह तथा दीपिकाग्राह–यथाक्रम चले । उस के बाद बहुत से दण्डी, मुण्डी, शिखण्डी, जटी, पिच्छी, हास-कारक, विदूषक, खेड्डुकारक, द्रवकारक, चाटुकारक, कान्दर्पिक, कौत्कुचिक तथा मौखरिक–यथाक्रम चलते गये । यह प्रसंग विस्तार से औपपातिकसूत्र के अनुसार संग्राह्य है । राजा भरत के आगे-आगे बड़े-बड़े कद्दावर घोड़े, घुड़सवार दोनों ओर हाथी, हाथियों पर सवार पुरुष चलते थे । उस के पीछे रथ-समुदाय यथावत् रूप से चलता था

तब नरेन्द्र भरतक्षेत्र का अधिपति राजा भरत, जिसका वक्षःस्थल हारों से व्याप्त, सुशोभित एवं प्रीतिकर था, अमरपति–तुल्य जिसकी समृद्धि सुप्रशस्त थी, जिससे उसकी कीर्ति विश्रुत थी, समुद्र के गर्जन की ज्यों सिंहनाद करता हुआ, सब प्रकार की ऋद्धि तथा द्युति से समन्वित, भेरी, झालर, मृदंग आदि अन्य वाद्यों की ध्वनि के साथ सहस्रों ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्वट, मडम्ब से युक्त मेदिनी को जीतता हुआ उत्तम, श्रेष्ठ रत्न भेंट के रूप में प्राप्त करता हुआ, दिव्य चक्ररत्न का अनुसरण करता हुआ, एक-एक योजन के अन्तर पर पड़ाव डालता हुआ, रुकता हुआ, जहाँ विनीता राजधानी थी, वहाँ आया । राजधानी से थोड़ी ही दूरी पर बारह योजन लम्बा, नौ योजन चौड़ा सैन्य शिबिर स्थापित किया ।

अपने उत्तम शिल्पकार को बुलाया । विनीता राजधानी को उद्दिष्ट कर–राजा ने तेला किया, डाभ के बिछौने पर अवस्थित राजा भरत तेले में प्रतिजागरित–रहा । तेला पूर्ण हो जाने पर राजा भरत पौषधशाला से बाहर निकला । कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, आभिषेक्य हस्तिरत्न को तैयार करने, स्नान करने आदि का वर्णन पूर्ववत् है । आगे का वर्णन विनीता राजधानी से विजय हेतु अभियान के समान है । केवल इतना अन्तर है कि विनीता राजधानी में प्रवेश करने के अवसर पर नौ महानिधियों ने तथा चार सेनाओं ने राजधानी में प्रवेश नहीं किया ।

राजा भरत ने तुमुल वाद्य-ध्वनि के साथ विनीता राजधानी के बीचों-बीच चलते हुए जहाँ अपना पैतृक घर था, जगद्वर्ति निवासगृहों में सर्वोत्कृष्ट प्रासाद का बाहरी द्वार था, उधर चला । जब राजा भरत निकल रहा था, उस समय कतिपय जन विनीता राजधानी के बाहर–भीतर पानी का छिड़काव कर रहे थे, गोबर आदि का लेप कर रहे थे, मंचातिमंच–की रचना कर रहे थे, तरह-तरह के रंगों के वस्त्रों से बनी, ऊंची, सिंह, चक्र आदि के चिह्नों से युक्त ध्वजाओं एवं पताकाओं ने नगरी के स्थानों को सजा रहे थे । अनेक दीवारों लीप रहे थे, अनेक धूपमहक से नगरी उत्कृष्ट सुरभिमय बना रहे थे, कतिपय देवता उस समय चाँदी की, स्वर्ण, रत्न, हीरों व आभूषणों की वर्षा कर रहे थे

जब राजा भरत विनीता राजधानी के बीच से किल रहा था तो नगरी के सिंघाटक, तिकोने स्थानों, महापथों

पर बहुत से अभ्यर्थी, कामार्थी, भोगार्थी, लाभार्थी, ऋद्धि के अभिलाषी, किल्बिषिक, कापालिक, करबाधित, शांखिक, चाक्रिक, लांगलिक, मुखमांगलिक, भाट, चारण, वर्धमानक, लंख, मंख, उदार, इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम, शिव, धन्य, मंगल, सश्रीक, हृदयगमनीय, हृदय-प्रह्लादनीय, वाणी से एवं मांगलिक शब्दों से राजा का अनवरत-अभिनन्दन करते हुए, अभिस्तवन करते हुए-जन-जन को आनन्द देनेवाले राजन् ! आपकी जय हो, विजय हो । जन-जन के लिए कल्याणस्वरूप राजन् ! आप सदा जयशील हों । आपका कल्याण हो । जिन्हें नहीं जीता है, उन पर आप विजय प्राप्त करें । जिनको जीत लिया है, उनका पालन करें, उनके बीच निवास करें ।

देवों में इन्द्र की तरह, तारों में चन्द्र की तरह, असुरों में चमरेन्द्र की तरह तथा नागों में धरणेन्द्र की तरह लाखों पूर्व, करोड़ों पूर्व, कोड़ाकोड़ी पूर्व पर्यन्त सम्पूर्ण भरतक्षेत्र के ग्राम, आकर-यावत् सन्निवेश-इन सबका सम्यक् पालन कर यश अर्जित करते हुए, इन सबका आधिपत्य, पौरोवृत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरत्व, आज्ञेश्वरत्व, सेना-पतित्व-इन सबका सर्वाधिकृत रूप में सर्वथा निर्वाह करते हुए निर्बाध, निरन्तर अविच्छिन्न रूप में नृत्य, गीत, वाद्य, वीणा, करताल, तूर्य-एवं घनमृदंग-आदि के निपुणतापूर्ण प्रयोग द्वारा निकलती सुन्दर ध्वनियों से आनन्दित होते हुए, विपुल-प्रचुर-अत्यधिक भोग भोगते हुए सुखी रहें, यों कहकर उन्होंने जयघोष किया ।

राजा भरत का सहस्रों नर-नारी अपने नेत्रों से बार-बार दर्शन कर रहे थे । वचनों द्वारा गुणसंकीर्तन कर रहे थे । हृदय से अभिनन्दन कर रहे थे । अपने शुभ मनोरथ-इत्यादि उत्सुकतापूर्ण मनःकामनाएं लिये हुए थे । सहस्रों नर-नारी-ये स्वामी हमें सदा प्राप्त रहें, बार-बार ऐसी अभिलाषा करते थे । नर-नारियों द्वारा अपने हजारों हाथों से उपस्थापित अंजलिमाला-को अपना दाहिना हाथ ऊंचा उठाकर बार-बार स्वीकार करता हुआ, घरों की हजारों पंक्तियों को लांघता हुआ, वाद्यों की मधुर, मनोहर, सुन्दर ध्वनि में तन्मय होता हुआ, उसका आनन्द लेता हुआ, जहाँ अपना सर्वोत्तम प्रासाद का द्वार था, वहाँ आया । आभिषेक्य हस्तिरत्न को ठहराया, नीचे उतरकर १६००० देवों का, ३२००० राजाओं का, सेनापतिरत्न, गाथापतिरत्न, वर्धकिरत्न तथा पुरोहितरत्न का, तीन सौ साठ पाचकों का, अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि-जनों का, माण्डलिक राजाओं, ऐश्वर्यशाली, प्रभावशाली पुरुषों तथा सार्थवाहों आदि का सत्कार-सम्मान किया । उन्हें सत्कृत-सम्मानित कर सुभद्रा नामक स्त्रीरत्न, ३२००० ऋतु-कल्याणिकाओं तथा ३२००० जनपद-कल्याणिकाओं, बत्तीस-बत्तीस अभिनेतव्य विधिक्रमों से परिबद्ध बत्तीस हजार नाटकों से-संपरिवृत्त राजा भरत कुबेर की ज्यों कैलास पर्वत के शिखर के तुल्य अपने उत्तम प्रासाद में गया ।

राजा ने अपने मित्रों, निजक, स्वजन तथा सम्बन्धियों से कुशल-समाचार पूछे । स्नान आदि संपन्न कर स्नानघर से बाहर निकला, भोजनमण्डप में आकर सुखासन पर बैठा, तेले का पारणा किया । अपने महल में गया। वहाँ मृदंग बज रहे थे । बत्तीस-बत्तीस अभिनेतव्य विधिक्रम से नाटक चल रहे थे, नृत्य हो रहे थे । यों नाटककार, नृत्यकार, संगीतकार राजा का मनोरंजन कर रहे थे । राजा का कीर्ति-स्तवन कर रहे थे । राजा उनका आनन्द लेता हुआ सांसारिक सुख का भोग करने लगा ।

सूत्र - १२२

राजा भरत अपने राज्य का दायित्व सम्हाले था । एक दिन उसके मन में ऐसा भाव, उत्पन्न हुआ-मैंने अपना बल, वीर्य, पौरुष एवं पराक्रम द्वारा समस्त भरतक्षेत्र को जीत लिया है । इसलिए अब उचित है, मैं विराट् राज्याभिषेक-समारोह आयोजित करवाऊं, जिसमें मेरा राजतिलक हो । दूसरे दिन राजा भरत, स्नान कर बाहर निकला, पूर्व की ओर मुँह किये सिंहासन पर बैठा । उसने १६००० अभियोगिक देवों, ३२००० प्रमुख राजाओं, सेनापति यावत् पुरोहितरत्न, ३६० सूपकारों, अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि जनों तथा अन्य बहुत से माण्डलिक राजाओं, यावत् सार्थवाहों को-बुलाया । उसने कहा-'देवानुप्रियों ! मैंने समग्र भरतक्षेत्र को जीत लिया है । तुम लोग मेरे राज्याभिषेक के विराट् समारोह की तैयारी करो । राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वे सोलह हजार आभियोगिक देव आदि बहुत हर्षित एवं परितुष्ट हुए । उन्होंने हाथ जोड़े, राजा भरत का आदेश विनयपूर्वक स्वीकार किया ।

तत्पश्चात् राजा भरत पौषधशाला में आया, तेला किया । तेला पूर्ण हो जाने पर आभियोगिक देवों का

आह्वान कर कहा–विनीता राजधानी के–ईशानकोण में एक विशाल अभिषेकमण्डप की विकुर्वणा करो–राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वे आभियोगिक देवोंने राजा भरत का आदेश विनयपूर्वक स्वीकार किया । विनीता राजधानी के ईशानकोण में गये । वैक्रिय समुद्घात द्वारा अपने आत्मप्रदेशों को बाहर निकाला । उन्हें संख्यात योजन पर्यन्त दण्डरूप में परिणित किया । उनसे गृह्यमाण रत्नों के बादर, असार पुद्गलों को छोड़ दिया । सारभूत सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण किया । पुनः वैक्रिय समुद्घात द्वारा अपने आत्मप्रदेशों को बाहर निकाल कर मृदंग के ऊपरी भाग की ज्यों समतल, सुन्दर भूमिभाग की विकुर्वणा की–उसके ठीक बीच में एक विशाल अभिषेक-मण्डप की रचना की । वह मण्डप सैकड़ों खंभों पर टिका था । यावत्–जिससे सुगन्धित धुएं की प्रचुरता के कारण वहाँ गोल-गोल धूममय छल्ले बनते दिखाई देते थे । अभिषेकमण्डप के ठीक बीच में एक विशाल अभिषेकपीठ की रचना की । यह अभिषेकपीठ स्वच्छ–ताश्लक्ष्ण पुद्गलों से बना होने से मुलायम था । उस की तीन दिशाओं में उन्होंने तीन-तीन सोपानमार्गों की रचना की । उस का भूमिभाग बहुत समतल एवं रमणीय था । उस अत्यधिक समतल, सुन्दर भूमिभाग के ठीक बीच में उन्होंने एक विशाल सिंहासन का निर्माण किया । सिंहासन का वर्णन विजयदेव के सिंहासन जैसा है । अभिषेकमण्डप की रचना कर वे जहाँ राजा भरत था, वहाँ आये । उसे इससे अवगत कराया ।

राजा भरत उन आभियोगिक देवों से यह सुनकर हर्षित एवं परितुष्ट हुआ, पौषधशाला से बाहर निकला । उसने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–शीघ्र ही हस्तिरत्न को तैयार करो । हस्तिरत्न को तैयार कर चातुरंगिणी सेना को सजाओ । कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा किया एवं राजा को उसकी सूचना दी । फिर राजा भरत स्नानादि से निवृत्त होकर गजराज पर आरूढ़ हुआ । आठ मंगल-प्रतीक, राजा के आगे-आगे रवाना किये गये । विनीता से अभिनिष्क्रमण का वर्णन विनीता में प्रवेश के समान है । राजा भरत विनीता राजधानी के बीच से निकला । विनीता राजधानी के ईशानकोण में अभिषेकमण्डप आकर आभिषेक्य हस्तिरत्न को ठहराया । नीचे उतर कर स्त्रीरत्न–सुभद्रा, ३२००० ऋतुकल्याणिकाओं, ३२००० जनपदकल्याणिकाओं, बत्तीस-बत्तीस पात्रों, आदि से घिरा हुआ राजा भरत अभिषेकमण्डप में प्रविष्ट हुआ । अभिषेकपीठ के पास आकर प्रदक्षिणा की । पूर्व की ओर स्थित तीन सीढ़ियों से होता हुआ जहाँ सिंहासन था, वहाँ आकर पूर्व की ओर मुँह करके सिंहासन पर बैठा। राजा भरत के अनुगत बत्तीस हजार प्रमुख राजाने अभिषेकमण्डप में प्रवेश किया । प्रवेश कर जहाँ राजा भरत था, वहाँ आकर उन्होंने हाथ जोड़े, राजा भरत को जय-विजय शब्दों द्वारा वर्धापित किया । थोड़ी ही दूरी पर शुश्रूषा करते हुए–प्रणाम करते हुए, विनयपूर्वक सामने हाथ जोड़े हुए, राजा की पर्युपासना करते हुए यथास्थान बैठ गए । तदनन्तर राजा भरत का सेनापतिरत्न यावत् सार्थवाह आदि वहाँ आये । उनके आने का वर्णन पूर्ववत् है केवल इतना अन्तर है कि वे दक्षिण की ओर से त्रिसोपान-मार्ग से अभिषेकपीठ पर गये ।

तत्पश्चात् राजा भरत ने आभियोगिक देवों को आह्वान कर कहा–मेरे लिए महार्थ, महार्ध, महार्ह–ऐसे महा-राज्याभिषेक का प्रबन्ध करो–राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वे आभियोगिक देव–ईशान-कोण में गये । वहाँ जाकर वैक्रिय समुद्घात द्वारा उन्होंने आत्मप्रदेशों को बाहर निकाला । शेष वर्णन विजयदेव के समान है । वे देव पंडकवन में मिले । मिलकर दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र में विनीता राजधानी आये । प्रदक्षिणा की, अभिषेकमण्डप में आकर महार्थ, महार्ध तथा महार्ह महाराज्याभिषेक के लिए अपेक्षित समस्त सामग्री राजा के समक्ष उपस्थित की । ३२००० राजाओं ने श्रेष्ठ तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र एवं मुहूर्त्त में–उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र तथा विजय मुहूर्त्त में स्वाभाविक तथा उत्तरविक्रिया द्वारा निष्पादित, श्रेष्ठ कमलों पर प्रतिष्ठापित, सुरभित, उत्तम जल से परिपूर्ण १००८ कलशों से राजा भरत का बड़े आनन्दोत्सव के साथ अभिषेक किया । अभिषेक वर्णन विजयदेव के सदृश है उन राजाओं में से प्रत्येक ने इष्ट वाणी द्वारा राजा का अभिनन्दन, अभिस्तवन किया । वे बोले–राजन् ! आप सदा जयशील हों । आपका कल्याण हो । यावत् आप सांसारिक सुख भोगें, यों कह कर उन्होंने जयघोष किया । तत्पश्चात् सेनापतिरत्न, ३६० सूपकारों, अठारह श्रेणि-प्रश्रेणि जनों तथा और बहुत से माण्डलिक राजाओं, सार्थवाहों ने राजा भरत का अभिषेक किया । उन्होंने उदार, इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम, शिव, धन्य, मंगल,

सश्रीक, लालित्ययुक्त, हृदयगमनीय, हृदयप्रह्लादनीय, अनवरत अभिनन्दन किया, अभिस्तवन किया ।

१६००० देवों ने अगर आदि सुगन्धित पदार्थों एवं आमलक आदि कसैले पदार्थों से संस्कारित, अनुवासित अति सुकुमार रोओं वाले तौलिये से राजा का शरीर पोंछा । यावत् विभिन्न रत्नों से जुड़ा हुआ मुकुट पहनाया । तत्पश्चात् उन देवों ने दर्दर तथा मलय चन्दन की सुगन्ध से युक्त, केसर, कपूर, कस्तूरी आदि के सारभूत, सघन-सुगन्ध-व्याप्त रस–राजा पर छिड़के । उसे दिव्य पुष्पों की माला पहनाई । उन्होंने उसको ग्रन्थिम, वेष्टिम, पूरिम तथा संघातिम मालाओं से विभूषित किया । उससे सुशोभित राजा कल्पवृक्ष सदृश प्रतीत होता था । इस प्रकार विशाल राज्याभिषेक समारोह में अभिषिक्त होकर राजा भरत ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया । उनसे कहा–देवानुप्रियों ! हाथी पर सवार होकर तुम लोग विनीता राजधानी के तिकोने स्थानों, तिराहों, चौराहों, चत्वरों तथा विशाल राजमार्गो पर यह घोषणा करो कि इस उपलक्ष्य में मेरे राज्य के निवासी बारह वर्ष पर्यन्त प्रमोदोत्सव मनाएं। इस बीच राज्य में कोई भी क्रय-विक्रय आदि सम्बन्धी शुल्क नहीं लिया जाएगा । ग्राह्य में–किसी से यदि कुछ लेना है, उसमें खिंचाव न किया जाए, आदान-प्रदान का, नाप-जोख का क्रम बन्द रहे, राज्य के कर्मचारी, अधिकारी किसी के घर में प्रवेश न करें, दण्ड, कुदण्ड न लिये जाएं ।

राजा भरत द्वारा यों कहे जाने पर वे कौटुम्बिक पुरुष बहुत हर्षित तथा परितुष्ट हुए, उन्होंने विनयपूर्वक राजा का आदेश स्वीकार किया । वे शीघ्र ही हाथी पर सवार हुए, उन्होंने राजा के आदेशानुरूप घोषणा की । विराट् राज्याभिषेक-समारोह में अभिषिक्त राजा भरत सिंहासन से उठा । स्त्रीरत्न सुभद्रा आदि से संपरिवृत्त राजा अभिषेक-पीठ से उसके पूर्वी त्रिसोपानोपगत मार्ग से नीचे उतरा । अभिषेक-मण्डप से बाहर निकला । जहाँ आभिषेक्य हस्तिरत्न था, वहाँ आकर आरूढ़ हुआ । राजा भरत के अनुगत बत्तीस हजार प्रमुख राजा अभिषेक-पीठ से उसके उत्तरी त्रिसोपानोपगत मार्ग से नीचे उतरे । राजा भरत का सेनापतिरत्न, सार्थवाह आदि अभिषेक-पीठ से उसके दक्षिणी त्रिसोपानोपगत मार्ग से नीचे उतरे । आभिषेक्य हस्तिरत्न पर आरूढ राजा के आगे मंगल-प्रतीक रवाना किये गए । शेष पूर्ववत् । तत्पश्चात् राजा भरत स्नानादि परिसंपन्न कर भोजन-मण्डप में आया, सुखासन पर बैठा, तेले का पारणा किया । भोजन-मण्डप से निकल कर वह अपने श्रेष्ठ उत्तम प्रासाद में गया । वहाँ मृदंग बज रहे थे । यावत् राजा उनका आनन्द लेता हुआ सांसारिक सुखों का भोग करने लगा । प्रमोदोत्सव में बारह वर्ष पूर्ण हो गये । राजा भरत स्नान कर वहाँ से निकला, बाह्य उपस्थानशाला में आकर पूर्व की ओर मुँह कर सिंहासन पर बैठा । सोलह हजार देवों का यावत् सार्थवाह आदि का सत्कार किया, सम्मान किया । उन्हें विदा किया । विदा कर वह अपने श्रेष्ठ–महल में गया । वहाँ विपुल भोग भोगने लगा ।

सूत्र - १२३

चक्ररत्न, दण्डरत्न, असिरत्न तथा छत्ररत्न–ये चार एकेन्द्रिय रत्न आयुधगृहशाला में–उत्पन्न हुए । चर्म-रत्न, मणिरत्न, काकणीरत्न तथा नौ महानिधियाँ, श्रीगृह में, सेनापतिरत्न, गाथापतिरत्न, वर्धकिरत्न तथा पुरोहित-रत्न, ये चार मनुष्यरत्न, विनीता राजधानी में, अश्वरत्न तथा हस्तिरत्न, ये दो पञ्चेन्द्रियरत्न वैताढ्य पर्वत की तलहटी में और सुभद्रा स्त्रीरत्न उत्तर विद्याधरश्रेणी में उत्पन्न हुआ ।

सूत्र - १२४

राजा भरत चौदह रत्नों, नौ महानिधियों, १६००० देवताओं, ३२००० राजाओं, ३२००० ऋतुकल्याणि-काओं, ३२००० जनपदकल्याणिकाओं, बत्तीस-बत्तीस पात्रों, अभिनेतव्य क्रमोपक्रमों से अनुबद्ध, ३२००० नाटकों, ३६० सूपकारों, अठारह श्रेणी-प्रश्रेणीजनों, चौरासी लाख घोड़ों, चौरासी लाख हाथियों, चौरासी लाख रथों, छियानवै करोड़ मनुष्यों, ७२००० पुरवरों, ३२००० जनपदों, छियानवै करोड़ गाँवों, ९९००० द्रोणमुखों, ४८००० पत्तनों, २४००० कर्वटों, २४००० मडम्बों, २०००० आकरों, १६००० खेटों, १४००० संबाधों, छप्पन अन्तरोदकों तथा उनचास कुराज्यों, विनीता राजधानी का, समस्त भरतक्षेत्र का, अन्य अनेक माण्डलिक राजा,

ऐश्वर्यशाली, प्रभावशाली पुरुष, तलवर, सार्थवाह आदि का आधिपत्य पौरोवृत्य, भर्तृत्व, स्वामित्व, महत्तरत्व-आज्ञेश्वरत्व, सैनापत्य-इन सबका सर्वाधिकृत रूप में पालन करता हुआ, सम्यक् निर्वाह करता हुआ राज्य करता था । राजा भरत ने अपने कण्टकों-की समग्र सम्पत्ति का हरण कर लिया, उन्हें विनष्ट कर दिया तथा अपने अगोत्रज समस्त शत्रुओं को मसल डाला, कुचल डाला । उन्हें देश से निर्वासित कर दिया । राजा भरत को सर्वविध औषधियाँ, रत्न तथा समितियाँ संप्राप्त थीं । अमित्रों-का उसने मानभंग कर दिया । उसके समस्त मनोरथ सम्यक् सम्पूर्ण थे-जिसके अंग श्रेष्ठ चन्दन से चर्चित थे, वक्षःस्थल हारों से सुशोभित था, प्रीतिकर था, श्रेष्ठ मुकुट से विभूषित था, उत्तम, बहुमूल्य आभूषण धारण किये था, सब ऋतुओं में खिलने वाले फूलों की सुहावनी माला से जिसका मस्तक शोभित था, उत्कृष्ट नाटक प्रतिबद्ध पात्रों-तथा सुन्दर स्त्रियों के समूह से संपरिवृत्त वह राजा भरत अपने पूर्व जन्म में आचीर्ण तप के, संचित निकाचित पुण्य कर्मों के परिणामस्वरूप मुन्य जीवन के सुखों का परिभोग करने लगा ।

सूत्र - १२५

किसी दिन राजा भरत ने स्नान किया । देखने में प्रिय एवं सुन्दर लगनेवाला राजा स्नानघर से बाहर निकला । जहाँ आदर्शगृह में, जहाँ सिंहासन था, वहाँ आया । पूर्व की और मुँह किये सिंहासन पर बैठा । शीशों पर पड़ते अपने प्रतिबिम्ब को बार बार देखता था । शुभ परिणाम, प्रशस्त-अध्यवसाय, विशुद्ध होती हुई लेश्याओं, विशुद्धिक्रम से ईहा, अपोह, मार्गण तथा गवेषण-करते राजा भरत को कर्मक्षय से-कर्मरज के निवारक अपूर्व करणमें-अवस्थिति द्वारा अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न हुए

तब केवली सर्वज्ञ भरत ने स्वयं ही अपने आभूषण, अलंकार उतार दिये । स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया । वे शीशमहल से प्रतिनिष्क्रान्त हुए । अन्तःपुर के बीच से होते हुए राजभवन से बाहर निकले । अपने द्वारा प्रतिबोधित दश हजार राजओं से संपरिवृत्त केवली भरत विनीता राजधानी के बीच से होते हुए बाहर चले गये । कोशलदेश में सुखपूर्वक विहार करते हुए वे अष्टापद पर्वत वहाँ आकर पर्वत पर चढ़कर सघन मेघ के समान श्याम तथा देव-सन्निपात-के कारण जहाँ देवों का आवागमन रहता था, ऐसे पृथ्वीशिलापट्टक का प्रतिलेखन किया । वहाँ संलेखना-स्वीकार किया, खान-पान का परित्याग किया, पादोपगत-संथारा अंगीकार किया ।

जीवन और मरण की आकांक्षा-न करते हुए वे आत्माराधना में अभिरत रहे । केवली भरत ७७ लाख पूर्व तक कुमारावस्था में रहे, १००० वर्ष तक मांडलिक राजा के रूप में रहे, १००० वर्ष कम छह लाख पूर्व तक महाराज के रूप में रहे । वे तियासी लाख पूर्व तक गृहस्थवास में रहे । अन्तमुहूर्त्त कम एक लाख पूर्व तक वे केवलीपर्याय में रहे । एक लाख पूर्व पर्यन्त बहु-प्रतिपूर्ण श्रामण्य-पर्याय-का पालन किया । चौरासी लाख पूर्व का समग्र आयुष्य भोगा । एक महीने के अनशन द्वारा वेदनीय, आयुष्य, नाम तथा गोत्र-इन चार भवोपग्राही कर्मों के क्षीण हो जाने पर श्रवण नक्षत्र में जब चन्द्र का योग था, देह-त्याग किया । जन्म, जरा तथा मृत्यु के बन्धन को छिन्न कर डाला- । वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत्त तथा सब प्रकार के दुःखों के प्रहाता हो गये ।

सूत्र - १२६

यहाँ भरतक्षेत्र में महान् ऋद्धिशाली, परम द्युतिशाली, पल्योपमस्थितिक-एक पल्योपम आयुष्य युक्त भरत नामक देव निवास करता है । गौतम ! इस कारण यह क्षेत्र भरतवर्ष या भरतक्षेत्र कहा जाता है । गौतम ! भरतवर्ष नाम शाश्वत है-कभी नहीं था, कभी नहीं है, कभी नहीं होगा ऐसा नहीं है । यह था, यह है, यह होगा । ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित एवं नित्य है ।

वक्षस्कार-३-का मुनि दीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

वक्षस्कार-४- 'क्षुद्र हिमवंत'

सूत्र - १२७

भगवन् ! जम्बूद्वीप में चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत कहाँ है ? गौतम ! जम्बूद्वीप में चुल्ल हिमवान् नामक वर्षधर पर्वत हैमवतक्षेत्र के दक्षिण में, भरतक्षेत्र के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में बतलाया गया है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । वह दो ओर से लवणसमुद्र को छुए हुए है । अपनी पूर्वी कोटि से पूर्वी लवणसमुद्र को तथा पश्चिमी कोटि से पश्चिमी लवणसमुद्र को । वह एक सौ योजन ऊंचा है । पच्चीस योजन भूगत है–वह १०५२–१२/१९ योजन चौड़ा है । उसकी बाहा–पूर्व-पश्चिम ५३५०–१५११/१९ योजन लम्बा है । उसकी जीवा–पूर्व-पश्चिम लम्बी है । जीवा २४९३२ योजन एवं आधे योजन से कुछ कम लम्बी है । दक्षिण में उसका धनु पृष्ठ भाग परिधि की अपेक्षा से २५२३०–४/१९ योजन है । वह रुचक-संस्थान –संस्थित है–सर्वथा स्वर्णमय है । वह स्वच्छ, सुकोमल तथा सुन्दर है । वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं एवं दो वनखंड़ों से घिरा हुआ है । चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत के ऊपर बहुत समतल और रमणीय भूमिभाग है । वह आलिंगपुष्कर–के सदृश समतल है । वहाँ बहुत से वाणव्यन्तर देव तथा देवियाँ विहार करते हैं ।

सूत्र - १२८

उस अति समतल भूमिभाग के ठीक बीच में पद्मद्रह है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । उसकी लम्बाई १००० योजन तथा चौड़ाई ५०० योजन है । उसकी गहराई दश योजन है । वह स्वच्छ, सुकोमल, रजतमय, तटयुक्त, सुन्दर एवं प्रतिरूप–है । वह द्रह एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वनखण्ड द्वारा परिवेष्टित है। उस पद्मद्रह की चारों दिशाओं में तीन-तीन सीढ़ियाँ बनी हुई हैं । उन सीढ़ि से प्रत्येक के आगे तोरणद्वार बने हैं । वे नाना प्रकार की मणियों से सुसज्जित है । उस पद्मद्रह के बीचों बीच एक विशाल पद्म है । वह एक योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा है, आधा योजन मोटा है । दश योजन जल के भीतर गहरा है । दो कोश जल ऊंचा उठा हुआ है । इस प्रकार उस का कुछ विस्तार दश योजन से कुछ अधिक है । वह एक जगती–द्वारा सब ओर से घिरा है । उस प्रकार का प्रमाण जम्बूद्वीप के प्राकार तुल्य है । उस का गवाक्षसमूह–भी प्रमाणमें जम्बूद्वीप के गवाक्ष सदृश है ।

वह पद्म के मूल वज्ररत्नमय है । कन्द–रिष्टरत्नमय है । नाल वैडूर्यरत्नमय है । बाह्य पत्र–वैडूर्यरत्न हैं । आभ्यन्तर पत्र–जम्बूनद स्वर्णमय हैं केसर–किञ्चल्क तपनीय रक्त स्वर्णमय हैं । पुष्करास्थिभाग विविध मणिमय हैं। कर्णिका स्वर्णमय है । यह कर्णिका आधा योजन लम्बी–चौड़ी है, सर्वथा स्वर्णमय है । स्वच्छ–उज्ज्वल है । उस कर्णिका के ऊपर अत्यन्त समतल एवं सुन्दर भूमिभाग है । वह ढोलक पर मढ़े हुए चर्मपुट की ज्यों समतल है । उस भूमिभाग के ठीक बीच में विशाल भवन है । वह एक कोश लम्बा, आधा कोश चौड़ा तथा कुछ कम एक कोश ऊंचा है, सैकड़ों खंभों से युक्त है, सुन्दर एवं दर्शनीय है । भवन के तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं । वे ५०० धनुष ऊंचे हैं, २५० धनुष चौड़े हैं तथा उनके प्रवेशमार्ग भी उतने ही चौड़े हैं । उन पर उत्तम स्वर्णमय छोटे-छोटे शिखर हैं । वे पुष्पमालाओं से सजे हैं । उस भवन का भीतरी भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय है । वह ढोलक पर मढ़े चमड़े की ज्यों समतल है । उस के ठीक बीचमें विशाल मणिपीठिका है । वह मणिपीठिका पाँच सौ धनुष लम्बी–चौड़ी तथा अढ़ाई सौ धनुष मोटी है, सर्वथा स्वर्णमय है, स्वच्छ है । उस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल शय्या है ।

वह पद्म दूसरे एक सौ आठ पद्मों से, जो ऊंचाई में, प्रमाण में–आधे हैं, सब ओर से घिरा हुआ है । वे पद्म आधा योजन लम्बे–चौड़े, एक कोश मोटे, दश योजन जलगत–तथा एक कोश जल से ऊपर ऊंचे उठे हुए हैं । यों जल के भीतर से लेकर ऊंचाई तक वे दश योजन कुछ अधिक है । उन पद्मों के मूल वज्ररत्नमय यावत् तथा कर्णिका कनकमय है । वह कर्णिका एक कोश लम्बी, आधा कोश मोटी, सर्वणा स्वर्णमय तथा स्वच्छ है । उस कर्णिका के ऊपर एक बहुत समतल, रमणीय, भूमिभाग है । जो नाना प्रकार की मणियों से सुशोभित हैं । उन मूल पद्म के वायव्यकोण में, उत्तर में तथा ईशानकोण में श्री देवी के सामानिक देवों के चार हजार पद्म हैं । उस के पूर्व

में श्री देवी की चार महत्तरिकाओं के चार पद्म हैं । उनके आग्नेयकोण में भी देवी का आभ्यन्तर परिषद् के आठ हजार देवों के आठ हजार पद्म हैं । दक्षिण में श्री देवी की मध्यम परिषद् के १०००० देवों के १०००० पद्म हैं । नैर्ऋत्यकोण में श्री देवी की बाह्य परिषद् के १२००० देवों के १२००० पद्म हैं । पश्चिम में सात अनीका-धिपति के सात पद्म हैं । उस पद्म की चारों दिशाओं में सब ओर श्री देवी के सोलह हजार आत्मरक्षक देवों के १६००० पद्म हैं

वह मूल पद्म आभ्यन्तर, मध्यम तथा बाह्य तीन पद्म-परिक्षेपों–प्राचीरों द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है । आभ्यन्तर पद्म-परिक्षेप में बत्तीस लाख पद्म हैं, मध्यम पद्म-परिक्षेप में चालीस लाख पद्म हैं, तथा बाह्य पद्मपरिक्षेप में अड़तालीस लाख पद्म हैं । इस प्रकार तीनों पद्म-परिक्षेपों में एक करोड़ बीस लाख पद्म हैं । भगवन् ! यह द्रह पद्मद्रह किस कारण कहलाता है ? गौतम ! पद्मद्रह में स्थान-स्थान पर बहुत से उत्पल यावत् शतसहस्रपत्र प्रभृति अनेकविध पद्म हैं । वे पद्म-कमल पद्मद्रह के सदृश आकारयुक्त, वर्णयुक्त एवं आभायुक्त हैं । इस कारण वह पद्मद्रह कहा जाता है । वहाँ परम ऋद्धिशालिनी पल्योपम-स्थितियुक्त श्री नामक देवी निवास करती है । अथवा गौतम ! पद्मद्रह नाम शाश्वत कहा गया है । वह कभी नष्ट नहीं होता ।

सूत्र - १२९

उस पद्मद्रह के पूर्वी तोरण-द्वार से गंगा महानदी निकलती है । वह पर्वत पर पाँच ५०० बहती है, गंगावर्त कूट के पास से वापस मुड़ती है, ५२३–३/१९ योजन दक्षिण की ओर बहती है । घड़े के मुँह से निकलते हुए पानी की ज्यों जोर से शब्द करती हुई वेगपूर्वक, मोतियों के बने हार के सदृश आकार में वह प्रपात-कुण्ड में गिरती है । उस समय उसका प्रवाह चुल्ल हिमवान् पर्वत के शिखर से प्रपात-कुण्ड तक कुछ अधिक सौ योजन होता है । जहाँ गंगा महानदी गिरती है, वहाँ एक जिह्विका है । वह आधा योजन लम्बी तथा छह योजन एवं एक कोस चौड़ी है । वह आधा कोस मोटी है । उसका आकार मगरमच्छ के खुले मुँह जैसा है । वह सम्पूर्णतः हीरकमय है, स्वच्छ एवं सुकोमल है । गंगा महानदी जिसमें गिरती है, उस कुण्ड का नाम गंगाप्रपातकुण्ड है । वह बहुत बड़ा है । उसकी लम्बाई-चौड़ाई साठ योजन है । परिधि १९०० योजन से कुछ अधिक है ।

वह दस योजन गहरा है, स्वच्छ एवं सुकोमल है, रजतमय कूलयुक्त है, समतल तटयुक्त है, हीरकमय पाषाणयुक्त है–पैदें में हीरे हैं । बालू स्वर्ण तथा शुभ्र रजतमय है । तट के निकटवर्ती उन्नत प्रदेश वैडूर्यमणि–बिल्लौर की पट्टियों से बने हैं । उसमें प्रवेश करने एवं बाहर निकलने के मार्ग सुखावह हैं । उसके घाट अनेक प्रकार की मणियों से बँधे हैं । वह गोलाकार है । उसमें विद्यमान जल उत्तरोत्तर गहरा और शीतल होता गया है । वह कमलों के पत्तों, कन्दों तथा नालों से परिव्याप्त है । अनेक उत्पल यावत् शत-सहस्र-पत्र–कमलों के प्रफुल्लित किञ्जल्क से सुशोभित है । वहाँ भौंरे कमलों का परिभोग करते हैं । उसका जल स्वच्छ, निर्मल और पथ्य है । वह कुण्ड जल से आपूर्ण है । इधर-उधर घूमती हुई मछलियों, कछुओं तथा पक्षियों के समुन्नत–गुंजित रहता है, सुन्दर प्रतीत होता है । वह एक पद्मवरवेदिका एवं वनखण्ड द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है ।

उस गंगाप्रपातकुण्ड की तीन दिशाओं में–तीन-तीन सीढ़ियाँ बनी हुई हैं । उन सीढ़ियों के नेम–वज्ररत्नमय हैं । प्रतिष्ठान–रिष्टरत्नमय हैं । खंभे वैडूर्यरत्नमय हैं । फलक–सोने-चाँदी से बने हैं । सूचियाँ–लोहिताक्ष रत्न-निर्मित है । सन्धियाँ–वज्ररत्नमय हैं । आलम्बन–विविध प्रकार की मणियों से बने हैं । तीनों दिशाओं में विद्यमान उन तीन-तीन सीढ़ियों के आगे तोरण-द्वार बने हैं । वे अनेकविध रत्नों से सज्जित हैं, मणिमय खंभो पर टिके हैं, सीढ़ियों के सन्निकटवर्ती हैं । उनमें बीच-बीच में विविध तारों के आकार में बहुत प्रकार के मोती जड़े हैं । वे ईहामृग, वृषभ, अश्व, मनुष्य, मकर, खग, सर्प, किन्नर, रुरुसंज्ञक मृग, शरभ, चमर, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्रांकनों से सुशोभित है । उनके खंभों पर उत्कीर्ण वज्ररत्नमयी वेदिकाएं हैं । उन पर चित्रित विद्याधर-युगल, एक आकारयुक्त कठपुतलियों की ज्यों संचरणशील से प्रतीत होते हैं । हजारों रत्नों की प्रभा से वे सुशोभित हैं । सहस्रों चित्रों से वे देदीप्यमान हैं, देखने मात्र से नेत्रों में समा जाते हैं । वे सुखमय स्पर्शयुक्त एवं शोभामय रूपयुक्त हैं । उन पर जो घंटियाँ लगी हैं, वे पवन से आन्दोलित होने पर बड़ा मधुर शब्द करती हैं, मनोरम प्रतीत होती हैं । उन तोरण-द्वारों

पर स्वस्तिक, श्रीवत्स आदि आठ-आठ मंगल-द्रव्य स्थापित हैं । काले चँवरों की ध्वजाएं यावत् तथा शत-सहस्रपत्रों –कमलों के ढेर के ढेर लगे हैं, जो सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ एवं सुन्दर हैं ।

उस गंगाप्रपातकुण्ड के ठीक बीच में गंगाद्वीप द्वीप है । आठ योजन लम्बा-चौड़ा है, उसकी परिधि कुछ अधिक पच्चीस योजन है । जल से ऊपर दो कोस ऊंचा उठा हुआ है । वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ एवं सुकोमल है । वह एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है । गंगाद्वीप पर बहुत समतल, सुन्दर भूमिभाग है । उसके ठीक बीच में गंगादेवी का विशाल भवन है । वह एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा तथा कम एक कोस ऊंचा है । वह सैकड़ों खंभों पर अवस्थित है । उसके ठीक बीच में एक मणिपीठिका है । उस पर शय्या है परम ऋद्धिशालिनी गंगादेवी का आवास-स्थान होने से वह द्वीप गंगाद्वीप कहा जाता है, अथवा यह शाश्वत नाम है–उस गंगाप्रपातकुण्ड के दक्षिणी तोरण से गंगा महानदी आगे निकलती है । वह उत्तरार्ध भरतक्षेत्र की ओर आगे बढ़ती है तब ७००० नदियाँ उसमें आ मिलती हैं । वह उनसे आपूर्ण होकर खण्डप्रपात गुफा होती हुई, वैताढ्य पर्वत को चीरती–दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र की ओर जाती है । दक्षिणार्ध भरत के ठीक बीचमें बहती हुई पूर्व की ओर मुड़ती है । फिर १४००० नदियाँ के परिवार से युक्त जम्बूद्वीप जगती को विदीर्ण कर–पूर्वीलवणसमुद्र में मिलती है

गंगा महानदी का प्रवाह–एक कोस अधिक छः योजन का विस्तार–लिये हुए है । वह आधा कोस गहरा है । तत्पश्चात् वह महानदी क्रमशः मात्रा में–विस्तार में बढ़ती जाती है । जब समुद्र में मिलती है, उस समय उसकी चौड़ाई साढ़े बासठ योजन होती है, गहराई एक योजन एक कोस–होती है । वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं तथा वनखण्डों द्वारा संपरिवृत्त है । गंगा महानदी के अनुरूप ही सिन्धु महानदी का आयाम-विस्तार है । इतना अन्तर है–सिन्धु महानदी उस पद्मद्रह के पश्चिम दिग्वर्ती तोरण से निकलती है, पश्चिम दिशा की ओर बहती है, सिन्ध्वावर्त कूट से मुड़कर दक्षिणाभिमुख होती हुई बहती है । फिर नीचे तिमिस्रा गुफा से होती हुई वह वैताढ्य पर्वत को चीरकर पश्चिम की ओर मुड़ती है । उसमें वहाँ १४००० नदियाँ मिलती हैं । फिर वह जगती को विदीर्ण करती हुई पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती है । उस पद्मद्रह के उत्तरी तोरण से रोहितांशा महानदी निकलती है । वह पर्वत पर उत्तर में २७६–६/१९ योजन बहती है । घड़े के मुँह से निकलते हुए पानी की ज्यों और से शब्द करती हुई वेगपूर्वक मोतियों के हार के सदृश आकार में पर्वत-शिखर से प्रपात तक कुछ अधिक एक सौ योजन परिमित प्रवाह के रूप में प्रपात में गिरती है । रोहितांशा महानदी जहाँ गिरती है, वहाँ एक जिह्वाका है । उसका आयाम एक योजन है, विस्तार साढ़े बारह योजन है । उसका मोटापन एक कोस है । उसका आकार मगरमच्छ के खुले मुख के आकार जैसा है । वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है ।

रोहितांशा महानदी जहाँ गिरती है, वह रोहितांशाप्रपातकुण्ड है । उसकी लम्बाई-चौड़ाई १२० योजन है । उसकी परिधि कुछ कम १८३ योजन है । उसकी गहराई दस योजन है । उस रोहितांशाप्रपात कुण्ड के ठीक बीच में रोहितांशद्वीप है । उसकी लम्बाई-चौड़ाई सोलह योजन है । उसकी परिधि कुछ अधिक पचास योजन है । वह जल से ऊपर दो कोश ऊंचा उठा हुआ है । वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ एवं सुकोमल है । उस रोहितांशाप्रपातकुण्ड के उत्तरी तोरण से रोहितांशा महानदी आगे निकलती है, हैमवत क्षेत्र की ओर बढ़ती है । १४००० नदियाँ उसमें मिलती है । उनसे आपूर्ण होती हुई वह शब्दापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत के आधा योजन दूर रहने पर पश्चिम की ओर मुड़ती है । वह हैमवत क्षेत्र को दो भागों में विभक्त करती हुई आगे बढ़ती है । तत्पश्चात् २८००० नदियों के परिवार सहित–नीचे की ओर जगती को विदीर्ण करती हुई–पश्चिम-दिग्वर्ती लवणसमुद्र में मिल जाती है । रोहितांशा महानदी जहाँ से निकलती है, वहाँ उसका विस्तार साढ़े बारह योजन है । उसकी गहराई एक कोश है । तत्पश्चात् वह क्रमशः बढ़ती जाती है । मुख-मूल में–उसका विस्तार १२५ योजन होता है, गहराई अढ़ाई योजन होती है । वह अपने दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वनखण्डों से संपरिवृत्त है ।

सूत्र - १३०

भगवन् ! चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत के कितने कूट हैं ? गौतम ! ग्यारह, सिद्धायतन, चुल्लहिमवान्,

भरत, इलादेवी, गंगादेवी, श्री, रोहितांशा, सिन्धुदेवी, सुरादेवी, हैमवत तथा वैश्रवणकूट । भगवन् ! चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत पर सिद्धायतनकूट कहाँ है ? गौतम ! पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, चुल्ल हिमवानकूट के पूर्व में है । वह पाँच सौ योजन ऊंचा है । मूल में पाँच सौ योजन, मध्य में ३७५ योजन तथा ऊपर २५० योजन विस्तीर्ण है । मूल में उसकी परिधि कुछ अधिक १५८१ योजन, मध्य में कुछ कम ११८६ योजन तथा ऊपर कुछ कम ७९१ योजन है । मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त एवं ऊपर तनुक है । उसका आकार गाय की ऊर्ध्वीकृत पूँछ के आकार जैसा है । वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है । वह एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है । सिद्धायतनकूट के ऊपर एक बहुत समतल तथा रमणीय भूमिभाग है । उस भूमिभाग के ठीक बीच में एक विशाल सिद्धायतन है । वह पचास योजन लम्बा, पच्चीस योजन चौड़ा और छत्तीस योजन ऊंचा है । उससे सम्बद्ध जिनप्रतिमा पर्यन्त का वर्णन पूर्ववत् है ।

भगवन् ! चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत पर चुल्लहिमवान् नामक कूट कहाँ है ? गौतम ! भरतकूट के पूर्व में, सिद्धायतनकूट के पश्चिम में चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत पर चुल्लहिमवान् नामक कूट है । सिद्धायतनकूट की ऊंचाई, विस्तार तथा घेरा जितना है, उतना ही उसका है । उस कूट पर एक बहुत ही समतल एवं रमणीय भूमिभाग है । उसके ठीक बीच में एक बहुत बड़ा उत्तम प्रासाद है । वह ६२११ योजन ऊंचा है । ३१ योजन १ कोस चौड़ा है। वह बहुत ऊंचा उठा हुआ है । अत्यन्त धवल प्रभापुंज लिये रहने से वह हँसता हुआ-सा प्रतीत होता है । उस पर अनेक प्रकार की मणियाँ तथा रत्न जड़े हुए हैं । अपने पर लगी, पवन से हिलती, फहराती विजयसूचक ध्वजाओं, पताकाओं, छत्रों तथा अतिछत्रों से वह बड़ा सुहावना लगता है । उसके शिखर बहुत ऊंचे हैं, जालियों में जड़े रत्न-समूह हैं, स्तूपिकाएं, मणियों एवं रत्नों से निर्मित हैं । उस पर विकसित शतपत्र, पुण्डरीक, तिलक, रत्न तथा अर्धचन्द्र के चित्र अंकित हैं । अनेक मणिनिर्मित मालाओं से वह अलंकृत है । भीतर-बाहर वज्ररत्नमय, तपनीय-स्वर्णमय, चिकनी, रुचिर बालुका से आच्छादित है । उसका स्पर्श सुखप्रद है, रूप सश्रीक है । वह आनन्दप्रद, यावत् प्रतिरूप है । उस उत्तम प्रासाद के भीतर बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग है ।

भगवन् ! वह चुल्ल हिमवान् कूट क्यों कहलाता है ? गौतम ! परम ऋद्धिशाली चुल्ल हिमवान् नामक देव वहाँ निवास करता है, इसलिए । भगवन् ! चुल्ल हिमवान् गिरिकुमार देव की चुल्लहिमवन्ता नामक राजधानी कहाँ है ? गौतम ! चुल्लहिमवानकूट के दक्षिण में तिर्यक लोक में असंख्य द्वीपों, समुद्रों को पार कर अन्य जम्बूद्वीप में दक्षिण में १२००० योजन पार करने पर है । उनका आयाम-विस्तार १२००० योजन है । वर्णन विजय-राजधानी सदृश जानना । बाकी के कूटों का आयाम-विस्तार, परिधि, प्रासाद, देव, सिंहासन, तत्सम्बद्ध सामग्री, देवों एवं देवियों की राजधानियों आदि का वर्णन पूर्वानुरूप है । इन कूटों में से चुल्लहिमवान्, भरत, हैमवत तथा वैश्रवण कूटों में देव निवास करते हैं और उनके अतिरिक्त अन्य कूटों में देवियाँ निवास करती हैं । भगवन् ! वह पर्वत चुल्लहिमवर्षाधर क्यों कहलाता है ? गौतम ! महाहिमवान् वर्षधर पर्वत की अपेक्षा चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत आयाम-आदि में कम है । इसके अतिरिक्त वहाँ परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्ययुक्त चुल्लहिमवान् नामक देव निवास करता है, अथवा चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत-नाम शाश्वत है, जो न कभी नष्ट हुआ, न कभी नष्ट होगा ।

सूत्र - १३१

भगवन् ! जम्बूद्वीपमें हैमवत क्षेत्र कहाँ है ? महाहिमवान् वर्षधरपर्वत के दक्षिण में, चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बा उत्तर-दक्षिण चौड़ा, पलंग आकारमें अवस्थित है । दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श करता है, २१०-५/१९ योजन चौड़ा है । बाहा पूर्व-पश्चिम ६७५५-३/१९ योजन लम्बी है । उत्तरदिशा में उसकी जीवा पूर्व तथा पश्चिम दोनों ओर लवणसमुद्र का स्पर्श करती है । उसकी लम्बाई कुछ कम ३७६७४ -१६/१९ योजन है । दक्षिण में उसका धनुपृष्ठ परिधि की अपेक्षा से ६८७४-१०/१९ योजन है । भगवन् ! हैमवत क्षेत्र का आकार, भाव, प्रत्यवतार-कैसी है ? गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल एवं रमणीय है । उसका स्वरूप आदि सुषम-दुःषमा काल के सदृश है ।

सूत्र - १३२

भगवन् ! हैमवतक्षेत्र में शब्दापाती नामक वृत्तवैताढ्यपर्वत कहाँ है ? गौतम ! रोहिता महानदी के पश्चिम में, रोहितांशा महानदी के पूर्व में, हैमवत क्षेत्र के बीचोंबीच है । वह १००० योजन ऊंचा है, २५० योजन भूमिगत है, सर्वत्र समतल है । उस की आकृति पलंग जैसी है । लम्बाई-चौड़ाई १००० योजन है । परिधि कुछ अधिक ३१६२ योजन है । वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है । पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड द्वारा सब ओर से संपरिवृत्त है । शब्दापाती वृत्तवैताढ्य पर बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग है । भूमिभाग के बीचोंबीच एक विशाल, उत्तम प्रासाद है । वह ६२।। योजन ऊंचा हे, ३१। योजन लम्बा-चौड़ा है । भगवन् ! वह शब्दापाती वृत्तवैताढ्यपर्वत क्यों कहा जाता है ? गौतम ! उस पर छोटी-छोटी चौरस बावड़ियों यावत् अनेकविध जलाशयों में बहुत से उत्पल हैं, पद्म हैं, जिनकी प्रभा शब्दापाती सदृश है । इस के अतिरिक्त, पल्योपम आयुष्ययुक्त शब्दापाती देव वहाँ निवास करता है । उस के ४००० सामानिक देव हैं । उसकी राजधानी अन्य जम्बूद्वीपमें मन्दर पर्वत के दक्षिण में है। यावत् यह नाम शाश्वत है

सूत्र - १३३

भगवन् ! वह हैमवतक्षेत्र क्यों कहा जाता है ? गौतम ! वह महाहिमवान् पर्वत से दक्षिण में एवं चुल्ल हिमवान् पर्वत से उत्तर में, उनके अन्तराल में है । वहाँ जो यौगलिक मनुष्य निवास करते हैं, वे बैठने आदि के निमित्त नित्य स्वर्णमय शिलापट्टक आदि का उपयोग करते हैं । उन्हें नित्य स्वर्ण देकर वह यह प्रकाशित करता है कि वह स्वर्णमय विशिष्ट वैभवयुक्त है । वहाँ परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्ययुक्त हैमवत नामक देव निवास करता है । गौतम ! इस कारण वह हैमवतक्षेत्र कहा जाता है ।

सूत्र - १३४

भगवन् ! जम्बूद्वीप में महाहिमवान् वर्षधर पर्वत कहाँ है ? गौतम ! हरिवर्षक्षेत्र के दक्षिण में, हैमवतक्षेत्र के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत है । वह पर्वत पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । वह पलंग -सा आकारवाला है । वह दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श करता है । वह २०० योजन ऊंचा है, ५० योजन भूमिगत है । वह ४२१०-१०/१९ योजन चौड़ा है । उस की बाहा पूर्व-पश्चिम ९२७६-९११/१९ योजन लम्बी है । उत्तर में उसकी जीवा पूर्व-पश्चिम लम्बी है । वह लवणसमुद्र का दो ओर से स्पर्श करती है । वह कुछ अधिक ५६९३१-६/१९ योजन लम्बी है । दक्षिण में उसका धनुपृष्ठ है, जिस की परिधि ५७२९३-१०/१९ योजन है । वह रुचकसदृश आकार है, सर्वथा रत्नमय है, स्वच्छ है । अपने दोनों ओर वह दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वनखण्डों से घिरा हुआ है । महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के ऊपर अत्यन्त समतल तथा रमणीय भूमिभाग है । विविध प्रकार के पंचरंगे रत्नों तथा तृणों से सुशोभित है । वहाँ देव-देवियाँ निवास करते हैं ।

सूत्र - १३५

महाहिमवान् पर्वत के बीचोंबीच महापद्मद्रह है । वह २००० योजन लम्बा तथा १००० योजन चौड़ा है । वह दश योजन जमीन में गहरा है । वह स्वच्छ है, रजतमय तटयुक्त है । शेष वर्णन पद्मद्रह के सदृश है । उसके मध्य में जो पद्म है, वह दो योजन का है । शेष वर्णन पद्मद्रह के पद्म के सदृश है । वहाँ एक पल्योपमस्थितिक ह्री देवी निवास करती है । अथवा गौतम ! महाद्मद्रह नाम शाश्वत बतलाया गया है । उस महापद्मद्रह के दक्षिणी तोरण से रोहिता महानदी निकलती है । वह हिमवान् पर्वत पर दक्षिणाभिमुख होती हुई १६०५-५/१९ योजन बहती है । घड़े के मुँह से निकलते हुए जल की ज्यों जोर से शब्द करती हुई वेगपूर्वक मोतियों से निर्मित हार के-से आकार में वह प्रपात में गिरती है । तब उसका प्रवाह साधिक २०० योजन होता है । रोहिता महानदी जहाँ गिरती है, वहाँ एक विशाल जिह्विका है । उसकी लम्बाई एक योजन और विस्तार १२११ योजन है । मोटाई एक कोश है । आकार मगरमच्छ के खुले मुँह जैसा है । वह सर्वथा स्वर्णमय है, स्वच्छ है ।

रोहिता महानदी जहाँ गिरती है, उस प्रपात का नाम रोहिताप्रपातकुण्ड है । वह १२० योजन लम्बा-चौड़ा

है। परिधि कुछ कम ३८० योजन है । दश योजन गहरा है, स्वच्छ एवं सुकोमल है । उसका पेंदा हीरों से बना है । वह गोलाकार है । उसका तट समतल है । रोहिताप्रपातकुण्ड के बीचोंबीच रोहित द्वीप है । यह १६ योजन लम्बा-चौड़ा है । परिधि कुछ अधिक ५० योजन है । जल से दो कोश ऊपर ऊंचा उठा हुआ है । वह संपूर्णतः हीरकमय है, उज्ज्वल है । चारों ओर एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वनखण्ड द्वारा घिरा हुआ है । रोहितद्वीप पर बहुत समतल तथा रमणीय भूमिभाग है । उस के ठीक बीच में एक विशाल भवन है । वह एक कोश लम्बा है । उस रोहितप्रपातकुण्ड के दक्षिणी तोरण से रोहिता महानदी निकलती है । वह हैमवत क्षेत्र की ओर आगे बढ़ती है । शब्दापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत जब आधा योजन दूर रह जाता है, तब वह पूर्व की ओर मुड़ती है और हैमवत क्षेत्र को दो भागों में बाँटती है । उसमें २८००० नदियाँ मिलती हैं । वह उनसे आपूर्ण होकर नीचे जम्बूद्वीप की जगती को चीरती हुई–पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है । शेष वर्णन रोहितांशा महानदी जैसा है ।

उस महापद्मद्रह के उत्तरी तोरण से हरिकान्ता महानदी निकलती है । वह उत्तराभिमुख होती हुई १६०५–५/१९ योजन पर्वत पर बहती है । फिर घड़े के मुँह से निकलते हुए जल की ज्यों जोर से शब्द करती हुई, वेगपूर्वक मोतियों से बने हार के आकार में प्रपात में गिरती है । उस समय ऊपर पर्वत-शिखर से नीचे प्रपात तक उसका प्रवाह कुछ अधिक २०० योजन का होता है । हरिकान्ता महानदी जहाँ गिरती हे, वहाँ एक विशाल जिह्विका है । वह दो योजन लम्बी तथा पच्चीस योजन चौड़ी है । आधा योजन मोटी है । उसका आकार मगरमच्छ के खुले हुए मुख के आकार जैसा है । वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है । हरिकान्ता महानदी जिसमें गिरती हे, उसका नाम हरि-कान्ताप्रपातकुण्ड है । २४० योजन लम्बा-चौड़ा है । परिधि ७५९ योजन की है । वह निर्मल है । शेष पूर्ववत् ।

हरिकान्ताप्रपातकुण्ड के बीचों-बीच हरिकान्ताद्वीप है । वह ३२ योजन लम्बा-चौड़ा है । उसकी परिधि १०१ योजन है, वह जल से ऊपर दो कोश ऊंचा उठा हुआ है । वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है । चारों ओर एक पद्म-वरवेदिका तथा एक वनखण्ड द्वारा घिरा हुआ है । शेष वर्णन पूर्ववत् जानना । हरिकान्ताप्रपातकुण्ड के उत्तरी तोरण से हरिकान्ता महानदी निकलती है । हरिवर्षक्षेत्र में बहती है, विकटापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत के एक योजन दूर रहने पर वह पश्चिम की ओर मुड़ती है । हरिवर्षक्षेत्र को दो भागों में बाँटती है । उसमें ५६००० नदियाँ मिलती है। वह उनसे आपूर्ण होकर नीचे की ओर जम्बूद्वीप की जगती को चीरती हुई पश्चिमी लवणसमुद्र में मिल जाती है। हरिकान्ता महानदी जिस स्थान से उद्गत होती है, वहाँ उसकी चौड़ाई पच्चीस योजन तथा गहराई आधा योजन है। तदनन्तर क्रमशः उसकी मात्रा–बढ़ती है । जब वह समुद्र में मिलती है, तब उसकी चौड़ाई २५० योजन तथा गहराई पाँच योजन होती है । वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं से तथा दो वनखण्डों से घिरी हुई है ।

सूत्र - १३६

भगवन् ! महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के कितने कूट हैं ? गौतम ! आठ, जैसे–सिद्धायतनकूट, महाहिमवान् कूट, हैमवतकूट, रोहितकूट, ह्रीकूट, हरिकान्तकूट, हरिवर्षकूट तथा वैडूर्यकूट । शेष वर्णन चुल्लहिमवान् वत् जानना । यह पर्वत महाहिमवान् वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है ? गौतम ! महाहिमवान् वर्षधर पर्वत, चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत की अपेक्षा लम्बाई आदि में दीर्घतर है । परम ऋद्धिशाली, पल्योपम आयुष्य युक्त महाहिमवान् देव वहाँ निवास करते हैं, इसलिए वह महाहिमवान् वर्षधर पर्वत कहा जाता है ।

सूत्र - १३७

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् हरिवर्ष नामक क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के है । वह दोनों किनारे से लवणसमुद्र का स्पर्श करता है । उसका विस्तार ८४२१–१/१९ योजन है । उसकी बाहा पूर्व-पश्चिम १३३६१/६।।/१९ लम्बी है । उत्तर में उसकी जीवा है, जो पूर्व-पश्चिम लम्बी है । वह दो ओर से लवण समुद्र का स्पर्श करती है । वह ७३९०१–१७।।/१९ योजन लम्बी है ।

भगवन् ! हरिवर्षक्षेत्र का आकार, भाव, प्रत्यवतार केसा है ? गौतम ! उसमें अत्यन्त समतल तथा रमणीय भूमिभाग है । वह मणियों तथा तृणों से सुशोभित है । हरिवर्षक्षेत्र में जहाँ तहाँ छोटी-छोटी वापिकाएं आदि हैं । अवसर्पिणी काल के सुषमा नामक द्वितीय आरक का वहाँ प्रभाव है– । शेष पूर्ववत् । भगवन् ! हरिवर्षक्षेत्र में विकटापाती नामक वृत्तवैताढ्य पर्वत कहाँ है ? गौतम ! हरि या हरिसलिला नामक महानदी के पश्चिम में, हरिकान्ता महानदी के पूर्व में, हरिवर्ष क्षेत्र के बीचोंबीच विकटापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत है । उसकी चौड़ाई आदि शब्दापाती समान का है । इतना अन्तर है–वहाँ अरुण देव है । वहाँ विद्यमान कमल आदि के वर्ण, आभा, आकार आदि विकटापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत के-से हैं । दक्षिण में उसकी राजधानी है । भगवन् ! हरिवर्षक्षेत्र नाम किस कारण पड़ा ? गौतम ! वहाँ मनुष्य रक्तवर्णयुक्त हैं, कतिपय शंख-खण्ड के सदृश श्वेत हैं । वहाँ परम ऋद्धिशाली, पल्योपमस्थितिक–हरिवर्ष देव निवास करता है । इस कारण वह हरिवर्ष कहलाता है ।

सूत्र - १३८

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् निषध नामक वर्षधर पर्वत कहाँ है ? गौतम ! महाविदेहक्षेत्र के दक्षिण में, हरिवर्षक्षेत्र के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत है । वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है । वह दो ओर लवणसमुद्र का स्पर्श करता है । वह ४०० योजन ऊंचा है, ४०० कोस जमीन में गहरा है । वह १६८४२–२/१९ योजन चौड़ा है । उसकी बाहा–२०१६५–२।।/१९ योजन लम्बी है । उत्तर में उसकी जीवा ९४१५६–२/१९ योजन लम्बाई लिये है । दक्षिण की ओर स्थित उसके धनुपृष्ठ की परिधि १२४३४६–९/१९ योजन है । उसका रुचक–जैसा आकार है । वह सम्पूर्णतः तपनीय स्वर्णमय है, स्वच्छ है । दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वनखण्डों द्वारा सब ओर से घिरा है ।

निषध वर्षधर पर्वत के ऊपर एक बहुत समतल तथा सुन्दर भूमिभाग है, जहाँ देव-देवियाँ निवास करते हैं । उस भूमिभाग में ठीक बीच में एक तिगिंछद्रह द्रह है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बा है, उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । वह ४००० योजन लम्बा २००० योजन चौड़ा तथा १० योजन जमीन में गहरा है । वह स्वच्छ, स्निग्ध तथा रजतमय तटयुक्त है। उस तिगिंछद्रह के चारों ओर तीन-तीन सीढ़ियाँ बनी हैं । शेष वर्णन पद्मद्रह के समान है । परम ऋद्धिशालिनी, एक पल्योपम के आयुष्य वाली धृति देवी वहाँ निवास करती है । उसमें विद्यमान कमल आदि के वर्ण, प्रभा आदि तिगिंच्छ–परिमल–के सदृश हैं । अतएव वह तिगिंछद्रह कहलाता है ।

सूत्र - १३९

उस तिगिंछद्रह के दक्षिणी तोरण से हरिसलिला महानदी निकलती है । वह दक्षिण में उस पर्वत पर ७४२१–१/१९ योजन बहती है । घड़े के मुँह से निकलते पानी की ज्यों जोर से शब्द करती हुई वेगपूर्वक प्रपात में गिरती है । उस समय उसका प्रवाह कुछ अधिक ४०० योजन होता है । शेष वर्णन हरिकान्ता महानदी समान है । नीचे जम्बूद्वीप की जगती को विदीर्ण कर वह आगे बढ़ती है । ५६००० नदियों से आपूर्ण वह महानदी पूर्वी लवण समुद्र में मिल जाती है । शेष कथन हरिकान्ता महानदी समान है । तिगिंछद्रह के उत्तरी तोरण से शीतोदा महानदी निकलती है । वह उत्तर में उस पर्वत पर ७४२१-१/१९ योजन बहती है । घड़े के मुँह से निकलते जल की ज्यों जोर से शब्द करती हुई वेगपूर्वक वह प्रपात में गिरती है । तब उसका प्रवाह कुछ अधिक ४०० योजन होता है। शीतोदा महानदी जहाँ से गिरती है, वहाँ एक विशाल जिह्विका है । वह ४ योजन लम्बी, ५० योजन चौड़ी तथा एक योजन मोटी है । उस का आकार मगरमच्छ के खुले हुए मुख के आकार जैसा है । वह संपूर्णतः वज्ररत्नमय है, स्वच्छ है ।

शीतोदा महानदी जिस कुण्ड में गिरती है, उसका नाम शीतोदाप्रपातकुण्ड है । उसकी लम्बाई-चौड़ाई ४८० योजन है । परिधि कुछ कम १५१८ योजन है । शेष पूर्ववत् । शीतोदाप्रपातकुण्ड के बीचोंबीच शीतोदाद्वीप है । उसकी लम्बाई-चौड़ाई ६४ योजन है, परिधि २०२ योजन है । वह जल के ऊपर दो कोस ऊंचा उठा है । वह सर्व-वज्ररत्नमय है, स्वच्छ है । शेष वर्णन पूर्ववत् । उस शीतोदाप्रपातकुण्ड के उत्तरी तोरण से शीतोदा महानदी आगे

निकलती है । देवकुरुक्षेत्र में आगे बढ़ती है । चित्र-विचित्र कूटों, पर्वतों, निषध, देवकुरु, सूर, सुलस एवं विद्युत्प्रभ नामक द्रहों को विभक्त करती हुई जाती हैं । उस बीच उसमे ८४००० नदियाँ मिलती हैं । वह भद्रशाल वन की ओर आगे जाती है । जब मन्दर पर्वत दो योजन दूर रह जाता है, तब वह पश्चिम की ओर मुड़ती है । नीचे विद्युत्प्रभ नामक वक्षस्कार पर्वत को भेद कर मन्दर पर्वत के पश्चिम में-पश्चिम विदेहक्षेत्र को दो भागों में विभक्त करती है । उस बीच उसमें १६ चक्रवर्ती विजयों में से एक-एक से अठ्ठाईस-अठ्ठाईस हजार नदियाँ आ मिलती हैं । इस प्रकार ४४८००० ये तथा ८४००० पहले की कुल ५३२००० नदियों से आपूर्ण वह शीतोदा महानदी नीचे जम्बूद्वीप के पश्चिम दिग्वर्ती जयन्त द्वार की जगती को विदीर्ण कर पश्चिमी लवणसमुद्र में मिल जाती है ।

शीतोदा महानदी अपने उद्गम-स्थान में पचास योजन चौड़ी है । एक योजन गहरी है । प्रमाण में क्रमशः बढ़ती-बढ़ती जब समुद्र में मिलती है, तब वह ५०० योजन चौड़ी हो जाती है । वह अपने दोनों ओर दो पद्मवर-वेदिकाओं तथा दो वनखण्डों द्वारा परिवृत्त है । भगवन् ! निषध वर्षधर पर्वत के कितने कूट हैं ? गौतम ! नौ, - सिद्धायतनकूट, निषधकूट, हरिवर्षकूट, पूर्वविदेहकूट, हरिकूट, धृतिकूट, शीतोदाकूट, अपरविदेहकूट तथा रुचककूट । शेष वर्णन चुल्लहिमवंत पर्वत समान है । भगवन् ! वह निषध वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है ? गौतम! निषध वर्षधर पर्वत के बहुत से कूट निषध के-आकार के सदृश हैं । उस पर एक पल्योपम आयुष्ययुक्त निषध देव निवास करता है । इसलिए वह निषध वर्षधर पर्वत कहा जाता है ।

सूत्र - १४०

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् महाविदेह क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् है । वह पूर्व-पश्चिम में लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ा है, पलंग के आकार के समान संस्थित है । वह दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श करता है । उसकी चौड़ाई ३३६८४-४/१९ योजन है । उसकी बाहा पूर्व-पश्चिम ३३७३७-७/१९ योजन लम्बी है । उसकी जीवा पूर्व-पश्चिम लम्बी है । वह दो ओर से लवणसमुद्र का स्पर्श करती है । एक लाख योजन लम्बी है । उसका धनुपृष्ठ उत्तर-दक्षिण दोनों ओर परिधि की दृष्टि से कुछ अधिक १५८११३-१६/१९ योजन है । महाविदेह क्षेत्र के चार भाग हैं-पूर्व विदेह, पश्चिम विदेह, देवकुरु तथा उत्तरकुरु ।

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र का आकार, भाव, प्रत्यवतार किस प्रकार का है ? गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल एवं रमणीय है । वह नानाविध पंचरंगे रत्नों से, तृणों से सुशोभित है । महाविदेह क्षेत्र में मनुष्यों का आकार, भाव, प्रत्यवतार किस प्रकार का है ? गौतम ! वहाँ के मनुष्य छह प्रकार के संहनन, छह प्रकार के संस्थान वाले होते हैं । पाँच सौ धनुष ऊंचे होते हैं । आयुष्य जघन्य अन्तमुहूर्त्त तथा उत्कृष्ट एक पूर्व कोटि होता है । अपना आयुष्य पूर्ण कर उनमें से कतिपय नरकगामी होते हैं, यावत् कतिपय सिद्ध होते हैं, समग्र दुःखों का अन्त करते हैं । वह महाविदेह क्षेत्र क्यों कहा जाता है ? गौतम ! भरतक्षेत्र, ऐरवतक्षेत्र आदि की अपेक्षा महाविदेहक्षेत्र-अति विस्तीर्ण, विपुलतर, महत्तर तथा बृहत् प्रमाणयुक्त है । विशाल देहयुक्त मनुष्य उसमें निवास करते हैं । परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्यवाला महाविदेह नामक देव उसमें निवास करता है । इस कारण वह महाविदेह क्षेत्र कहा जाता है । इसके अतिरिक्त महाविदेह नाम शाश्वत है ।

सूत्र - १४१

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में गन्धमादन नामक वक्षस्कारपर्वत कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, मन्दरपर्वत-वायव्य कोण में, गन्धिलावती विजय के पूर्व में तथा उत्तरकुरु के पश्चिम में महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बा और पूर्व-पश्चिम चौड़ा है । उसकी लम्बाई ३०२०९-६/१९ योजन है । वह नीलवान् वर्षधर पर्वत के पास ४०० योजन ऊंचा है, ४०० कोश जमीन में गहरा है, ५०० योजन चौड़ा है । उसके अनन्तर क्रमशः उसकी ऊंचाई तथा गहराई बढ़ती जाती है, चौड़ाई घटती जाती है । यों वह मन्दर पर्वत के पास

५०० योजन ऊंचा, ५०० कोश गहरा हो जाता है । उसकी चौड़ाई अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी रह जाती है । उसका आकार हाथी दाँत जैसा है । वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है । वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं द्वारा तथा दो वनखण्डों द्वारा घिरा हुआ है । गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत के ऊपर बहुत समतल, सुन्दर भूमिभाग है । उसकी चोटियों पर जहाँ तहाँ अनेक देव-देवियाँ निवास करते हैं ।

भगवन् ! गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत के कितने कूट हैं ? गौतम ! सात, –सिद्धायतनकूट, गन्धमादनकूट, गन्धिलावतीकूट, उत्तरकुरुकूट, स्फटिककूट, लोहिताक्षकूट तथा आनन्दकूट । गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत पर सिद्धायतन कूट कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत के उत्तर-पश्चिम में, गन्धमादन कूट के दक्षिण-पूर्व में है । शेष चुल्ल-हिमवान् के सिद्धायतन कूट समान जानना । तीन कूट विदिशाओं में–गन्धमादनकूट है । चौथा उत्तरकुरुकूट तीसरे गन्धिलावतीकूट के वायव्य कोण में तथा पाँचवें स्फटिककूट के दक्षिण में है । इनके सिवाय बाकी के तीन–उत्तर-दक्षिण श्रेणियों में अवस्थित हैं । स्फटिककूट तथा लोहिताक्षकूट पर भोगंकरा एवं भोगवती नामक दो दिक्कुमा-रिकाएं निवास करती हैं । बाकी के कूटों पर तत्सदृश–नाम वाले देव निवास करते हैं । उन कूटों पर तदधिष्ठातृ–देवों के उत्तम प्रासाद हैं, विदिशाओं में राजधानियाँ हैं । भगवन् ! गन्धमादन वक्षस्कारपर्वत नाम किस प्रकार पड़ा ? गौतम ! पीसे हुए, कूटे हुए, बिखेरे हुए कोष्ठ से निकलने वाली सुगन्ध के सदृश उत्तम, मनोज्ञ, सुगन्ध गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत से निकलती रहती है । वह सुगन्ध उससे इष्टतर यावत् मनोरम है । वहाँ गन्धमादन नामक परम ऋद्धिशाली देव निवास करता है । इसलिए गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत कहा जाता है । अथवा यह नाम शाश्वत है ।

सूत्र - १४२

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में उत्तरकुरु नामक क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत के उत्तर में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में तथा माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बा है, उत्तर-दक्षिण चौड़ा है, अर्ध चन्द्र के आकार में विद्यमान है । वह ११८४२–२/१९ योजन चौड़ा है । उत्तर में उसकी जीवा पूर्व-पश्चिम लम्बी है । वह दो तरफ से वक्षस्कार पर्वत का स्पर्श करती है । वह ५३००० योजन लम्बी है । दक्षिण में उसके धनुपृष्ठ की परिधि ६०४१८–१२/१९ योजन है । उत्तर कुरुक्षेत्र का आकार, भाव, प्रत्यवतार कैसा है ? गौतम ! वहाँ बहुत समतल, सुन्दर भूमिभाग है । शेष सुषमासुषमा के वर्णन के अनुरूप है–वहाँ के मनुष्य पद्मगन्ध, मृगगन्ध, अमम, कार्यक्षम, तेतली तथा शनैश्चारी–होते हैं ।

सूत्र - १४३

भगवन् ! उत्तरकुरु में यमक पर्वत कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण दिशा के अन्तिम कोने से ८३४–४/७ योजन के अन्तराल पर शीतोदा नदी के दोनों–पूर्वी, पश्चिमी तट पर यमक संज्ञक दो पर्वत हैं । वे १००० योजन ऊंचे, २५० योजन जमीन में गहरे, मूल में १००० योजन, मध्य में ७५० योजन तथा ऊपर ५०० योजन लम्बे-चौड़े हैं । उनकी परिधि मूल में कुछ अधिक ३१६२ योजन, मध्य में कुछ अधिक २३७२ योजन एवं ऊपर कुछ अधिक १५८१ योजन है । वे मूल में विस्तीर्ण–मध्य में संक्षिप्त और ऊपर–पतले हैं । वे यमकसंस्थान-संस्थित हैं–वे सर्वथा स्वर्णमय, स्वच्छ एवं सुकोमल हैं । उनमें से प्रत्येक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा वन-खण्ड द्वारा घिरा हुआ है । वे पद्मवरवेदिकाएं दो-दो कोश ऊंची हैं । पाँच-पाँच सौ धनुष चोड़ी हैं । उन यमक पर्वतों पर बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग है । उस के बीचोंबीच दो उत्तम प्रासाद हैं । वे प्रासाद ६२।। योजन ऊंचे हैं । ३१। योजन लम्बे-चौड़े हैं । इन यमक देवों के १६००० आत्मरक्षक देव हैं । उनके १६००० उत्तम आसन–हैं ।

भगवन् ! उन्हें यमक पर्वत क्यों कहा जाता है ? गौतम ! उन पर्वतों पर जहाँ तहाँ बहुत सी छोटी-छोटी वावड़ियों, पुष्करिणियों आदि में जो अनेक उत्पल, कमल आदि खिलते हैं, उनका आकार एवं आभा यमक के सदृश हैं । वहाँ यमक नामक दो परम ऋद्धिशाली देव हैं । उनके ४००० सामानिक देव हैं, गौतम ! इस कारण वे यमक पर्वत कहलाते हैं । अथवा यह नाम शाश्वत है । यमक देवों की यमिका राजधानियाँ कहाँ है ? गौतम !

जम्बूद्वीप के अन्तर्गत मन्दर पर्वत के उत्तर में अन्य जम्बूद्वीप में १२००० योजन जाने पर हैं । वे १२००० योजन लम्बी-चौड़ी हैं । उनकी परिधि कुछ अधिक ३७९४८ योजन है । प्रत्येक राजधानी आकार–से परिवेष्टित है– । वे प्राकार ३७।। योजन ऊंचे हैं । वे मूल में १२।। योजन, मध्य में ६। योजन तथा ऊपर तीन योजन आधा कोश चौड़े हैं । वे मूल में विस्तीर्ण–बीच में संक्षिप्त तथा ऊपर पतले हैं । वे बाहर वृत्त तथा भीतर से चौकोर प्रतीत होते हैं । वे सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं । नाना प्रकार के पंचरंगे रत्नों से निर्मित कपिशीर्षकों द्वारा सुशोभित हैं । वे कंगूरे आधा कोश ऊंचे तथा पाँच सौ धनुष मोटे हैं, सर्वरत्नमय हैं, उज्ज्वल हैं ।

यमिका राजधानियों के प्रत्येक पार्श्व में १२५-१२५ द्वार हैं । वे द्वार ६२।। योजन ऊंचे हैं । ३१। योजन चौड़े हैं । प्रवेश-मार्ग भी उतने ही प्रमाण के हैं । यमिका राजधानियों की चारों दिशाओं में पाँच-पाँच सौ योजन के व्यवधान से अशोकवन, सप्तवर्णवन, चम्पकवन तथा आम्रवन हैं । ये वन-खण्ड कुछ अधिक १२००० योजन लम्बे तथा ५०० योजन चौड़े हैं । प्रत्येक वन-खण्ड प्राकार द्वारा परिवेष्टित है । यमिका राजधानियों में से प्रत्येक में बहुत समतल सुन्दर भूमिभाग हैं । उन के बीचोंबीच दो प्रासाद-पीठिकाएं हैं । वे १२०० योजन लम्बी-चौड़ी हैं । उनकी परिधि ३७९५ योजन है । वे आधा कोश मोटी हैं । वे सम्पूर्णतः उत्तम जम्बूनद जातीय स्वर्णमय हैं, उज्ज्वल हैं । उनमें से प्रत्येक पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड द्वारा परिवेष्टित है ।

उसके बीचोंबीच एक उत्तम प्रासाद है । वह ६२।। योजन ऊंचा है । ३१। योजन लम्बा-चौड़ा है । प्रासाद-पंक्तियों में से प्रथम पंक्ति के प्रासाद ३१। योजन ऊंचे हैं । वे कुछ अधिक १५।। योजन लम्बे-चौड़े हैं । द्वितीय पंक्ति के प्रासाद कुछ अधिक १५।। योजन ऊंचे हैं । वे कुछ अधिक ७। योजन लम्बे-चौड़े हैं । तृतीय पंक्ति के प्रासाद कुछ अधिक ७।। योजन ऊंचे हैं, कुछ अधिक ३।। योजन लम्बे-चौड़े हैं । मूल प्रासाद के ईशान कोण में यमक देवों की सुधर्मा सभाएं हैं । वे सभाएं १२।। योजन लम्बी, ६। योजन चौड़ी तथा ९ योजन ऊंची हैं । सैकड़ों खंभों पर अवस्थित हैं । उन सुधर्मसभाओं की तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं । वे दो योजन ऊंचे हैं, एक योजन चौड़े हैं । उनके प्रवेश-मार्गों का प्रमाण–भी उतना ही है ।

उन द्वारोंमें से प्रत्येक के आगे मुखमण्डप–हैं । वे १२।। योजन लम्बे, ६। योजन चौड़े तथा साधिक दो योजन ऊंचे हैं । प्रेक्षागृहों–का प्रमाण मुखमण्डप सदृश हैं । मुखमण्डपमें अवस्थित मणिपीठिकाएं १ योजन लम्बी-चौड़ी तथा आधा योजन मोटी हैं । वे सर्वथा मणिमय हैं । प्रेक्षागृह-मण्डपों के आगे जो मणिपीठिकाएं हैं, वे दो योजन लम्बी-चौड़ी तथा एक योजन मोटी हैं । वे सम्पूर्णतः मणिमय हैं । उनमें से प्रत्येक पर तीन-तीन स्तूप–हैं । वे स्तूप दो योजन ऊंचे, दो योजन लम्बे-चौड़े हैं वे शंख ज्यों श्वेत हैं । उन स्तूपोंकी चारों दिशामें चार मणिपीठिकाएं हैं। वे मणिपीठिका १ योजन लम्बी-चौड़ी तथा आधा योजन मोटी हैं । वहाँ स्थित जिनप्रतिमाका वर्णन पूर्वानुरूप है

वहाँ के चैत्यवृक्षों की मणिपीठिकाएं दो योजन लम्बी-चौड़ी और एक योजन मोटी हैं । उन चैत्यवृक्षों के आगे तीन मणिपीठिकाएं हैं । वे एक योजन लम्बी-चौड़ी तथा आधा योजन मोटी हैं । उनमें से प्रत्येक पर एक-एक महेन्द्रध्वजा है । वे ध्वजाएं साढ़े सात योजन ऊंची हैं और आधा कोश जमीन में गहरी गड़ी हैं । वे वज्ररत्नमय हैं, वर्तुलाकार हैं । उन सुधर्मा सभाओं में ६००० पीठिकाएं हैं । पूर्व में २००० पीठिकाएं, पश्चिम में २००० पीठिकाएं, दक्षिण में १००० पीठिकाएं तथा उत्तर में १००० पीठिकाएं हैं । उन सुधर्मासभाओं के भीतर बहुत समतल, सुन्दर भूमिभाग हैं । मणिपीठिकाएं हैं । वे दो योजन लम्बी-चौड़ी हैं तथा एक योजन मोटी है । उन मणिपीठिकाओं के ऊपर महेन्द्रध्वज के समान प्रमाणयुक्त–माणवक चैत्य-स्तंभ हैं । उसमें ऊपर के छह कोश तथा नीचे के छह कोश वर्जित कर बीच में–साढ़े चार योजन के अन्तराल में जिनदंष्ट्राएं निक्षिप्त हैं । शयनीयों के–ईशान कोण में दो छोटे महेन्द्रध्वज हैं । उनका प्रमाण महेन्द्रध्वज जितना है । वे मणिपीठिका रहित हैं ।

उनके पश्चिम में चोप्फाल नामक प्रहरण-कोश– हैं । वहाँ परिघरत्न–आदि शस्त्र रखे हुए हैं । उन सुधर्मा सभाओं के ऊपर आठ-आठ मांगलिक पदार्थ प्रस्थापित हैं । उनके ईशान कोण में दो सिद्धायतन हैं । जिनगृह सम्बन्धी वर्णन पूर्ववत् है, केवल इतना अन्तर है–इन जिन-गृहों में बीचों-बीच प्रत्येक में मणिपीठिका है । वे दो

योजन लम्बी-चौड़ी तथा एक योजन मोटी है । उन मणिपीठिकाओं में से प्रत्येक पर जिनदेव के आसन हैं । वे आसन दो योजन लम्बे-चौड़े हैं, कुछ अधिक दो योजन ऊंचे हैं । वे सम्पूर्णतः रत्नमय हैं । धूपदान पर्यन्त जिन-प्रतिमा वर्णन पूर्वानुरूप है । अभिषेक सभा में तथा आलंकारिक सभा में बहुत से अलंकार-पात्र हैं, व्यवसाय-सभा में पुस्तक-रत्न हैं । वहाँ नन्दा पुष्करिणियाँ हैं, पूजा-पीठ हैं । वे पीठ दो योजन लम्बे-चौड़े तथा एक योजन मोटे हैं।

सूत्र – १४४, १४५

उपपात, संकल्प, अभिषेक, त्रिभूषणा, व्यवसाय, अर्चनिका, सुधर्मासभा में गमन, परिवारणा, ऋद्धि– आदि यमक देवों का वर्णन-क्रम है ।

नीलवान् पर्वत से यमक पर्वतों का जितना अन्तर है, उतना ही यमक-द्रहों का अन्य द्रहों से अन्तर है ।

सूत्र – १४६-१५०

भगवन् ! उत्तरकुरु में नीलवान् द्रह कहाँ है ? गौतम ! यमक पर्वतों के दक्षिणी छोर से ८३४–४/७ योजन के अन्तराल पर शीता महानदी के ठीक बीच में नीलवान् नामक द्रह है । वह दक्षिण-उत्तर लम्बा एवं पूर्व-पश्चिम चौड़ा है । शेष वर्णन पद्मद्रह समान है । केवल इतना अन्तर है–नीलवान् द्रह दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वनखण्डों द्वारा परिवेष्टित है । वहाँ नीलवान् नामक नागकुमार देव निवास करता है ।

नीलवान् द्रह के पूर्वी पश्चिमी पार्श्व में दश-दश योजन के अन्तराल पर बीस काञ्चनक पर्वत हैं । वे सौ योजन ऊंचे हैं । काञ्चनकपर्वतों का विस्तार मूल में सौ योजन, मध्यमें ७५ योजन तथा ऊपर ५० योजन है। उनकी परिधि मूल में ३१६ योजन, मध्य में २३७ योजन तथा ऊपर १५८ योजन है । पहला नीलवान्, दूसरा उत्तरकुरु, तीसरा चन्द्र, चौथा ऐरावत तथा पाँचवां माल्यवान्–ये पाँच द्रह हैं । अन्य द्रहों का प्रमाण, वर्णन नीलवान् द्रह के सदृश है । उनमें एक पल्योपम आयुष्यवाले देव निवास करते हैं । प्रथम नीलवान् द्रह में नागेन्द्र देव तथा अन्य चार में व्यन्तरेन्द्र देव निवास करते हैं ।

सूत्र – १५१-१५३

भगवन् ! उत्तरकुरु में जम्बूपीठ कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, मन्दर पर्वत के उत्तर में माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में एवं शीता महानदी के पूर्वी तट पर है । वह ५०० योजन लम्बा-चौड़ा है । उसकी परिधि कुछ अधिक १५८१ योजन है । वह पीठ बीच में बारह योजन मोटा है । फिर क्रमशः मोटाई में कम होता हुआ आखिरी छोरों पर दो दो कोश मोटा है । वह सम्पूर्णतः जम्बूनदजातीय स्वर्णमय है, उज्ज्वल है । एक पद्मवरवेदिका से तथा एक वन-खण्ड से सब ओर से घिरा है । जम्बूपीठ की चारों दिशाओं में तीन-तीन सोपान पंक्तियाँ हैं । जम्बूपीठ के बीचोंबीच एक मणि-पीठिका है । वह आठ योजन लम्बी-चौड़ी है, चार योजन मोटी है । उस के ऊपर जम्बू सुदर्शना नामक वृक्ष है । वह आठ योजन ऊंचा तथा आधा योजन जमीन में गहरा है उसका स्कन्ध–दो योजन ऊंचा और आधा योजन मोटा है । शाखा ६ योजन ऊंची है । बीच में उसका आयाम-विस्तार आठ योजन है । यों सर्वांगतः उसका आयाम-विस्तार कुछ अधिक आठ योजन है ।

वह जम्बू वृक्ष के मूल वज्ररत्नमय हैं, विडिमा से ऊर्ध्व विनिर्गत–हुई शाखा रजत-घटित है । यावत् वह वृक्ष दर्शनीय है । जम्बू सुदर्शना की चारों दिशाओं में चार शाखाएं हैं । उन शाखाओं के बीचोंबीच एक सिद्धायतन है । वह एक कोश लम्बा, आधा कोश चौड़ा तथा कुछ कम एक कोश ऊंचा है । वह सैकड़ों खंभों पर टिका है । उसके द्वार पाँच सौ धनुष ऊंचे हैं । उपर्युक्त मणिपीठिका ५०० धनुष लम्बी-चौड़ी है, २५० धनुष मोटी है । उस मणि-पीठिका पर देवच्छन्दक–है । वह पाँच सौ धनुष लम्बा-चौड़ा है, कुछ अधिक पाँच सौ धनुष ऊंचा है । आगे जिन-प्रतिमाओं तक का वर्णन पूर्ववत् है । उपर्युक्त शाखाओं में जो पूर्वी शाखा है, वहाँ एक भवन है । वह एक कोश लम्बा है । बाकी की दिशाओं में जो शाखाएं हैं, वहाँ प्रासादवतंसक– हैं । वह जम्बू बारह पद्मवरवेदिकाओं द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है । पुनः वह अन्य १०८ जम्बू वृक्षों से घिरा हुआ है, जो उससे आधे ऊंचे हैं । वे जम्बू वृक्ष

छह पद्मवरवेदिकाओं से घिरे हुए हैं । जम्बू के ईशान कोण में, उत्तर में तथा वायव्य कोण में अनादृत नामक देव, जो अपने को वैभव, ऐश्वर्य तथा ऋद्धि में अनुपम, अप्रतिम मानता हुआ जम्बूद्वीप के अन्य देवों को आदर नहीं देता रहता है । ४००० सामानिक देवों के ४००० जम्बू वृक्ष हैं । पूर्व में चार अग्रमहिषियों–के चार जम्बू हैं । आग्नेय कोण में, दक्षिण में तथा नैर्ऋत्य कोण में क्रमशः ८०००, १०,००० और १२,००० जम्बू हैं । पश्चिम में सात अनीकाधियों–के सात जम्बू हैं । चारों दिशाओं में १६,००० आत्मरक्षक देवों के १६००० जम्बू हैं ।

सूत्र – १५४-१५६

जम्बू ३०० वनखण्डों द्वारा सब ओर से घिरा हुआ है । उसके पूर्व में पचास योजन पर अवस्थित प्रथम वनखण्ड में जाने पर एक भवन आता है, जो एक कोश लम्बा है । बाकी की दिशाओं में भी भवन हैं । जम्बू सुदर्शन के ईशान कोण में प्रथम वनखण्ड में पचास योजन की दूरी पर पद्म, पद्मप्रभा, कुमुदा एवं कुमुदप्रभा नामक चार पुष्करिणियाँ हैं । वे एक कोश लम्बी, आधा कोश चौड़ी तथा पाँच सौ धनुष भूमि में गहरी है । उनके बीच-बीच में उत्तम प्रासाद हैं । वे एक कोश लम्बे, आधा कोश चौड़े तथा कुछ कम एक कोश ऊंचे हैं । इसी प्रकार बाकी की विदिशाओं में–भी पुष्करिणियाँ हैं । उनके नाम–पद्मा, पद्मप्रभा, कुमुदा, कुमुदप्रभा, उत्पलगुल्मा, नलिना, उत्पला, उत्पलोज्ज्वला । भृंगा, भृंगप्रभा, अंजना, कज्जलप्रभा, श्रीकान्ता, श्रीमहिता, श्रीचन्द्रा तथा श्रीनलिया ।

सूत्र – १५७-१६१

जम्बू के पूर्व दिग्वर्ती भवन के उत्तर में, ईशानकोण स्थित उत्तम प्रासाद के दक्षिण में एक कूट है । वह आठ योजन ऊंचा, दो योजन जमीन में गहरा है । मूलमें ८ योजन, बीचमें ६ योजन तथा ऊपर ४ योजन लम्बा-चौड़ा है उस शिखर की परिधि मूलमें साधिक २५ योजन, मध्यमें साधिक १८ योजन तथा ऊपर साधिक १२ योजन है । वह मूल में चौड़ा, बीच में संकड़ा और ऊपर पतला है, सर्व स्वर्णमय है, उज्ज्वल है । इसी प्रकार अन्य शिखर हैं

जम्बू सुदर्शना के बारह नाम हैं– सुदर्शना, अमोघा, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, विदेहजम्बू, सौमनस्या, नियता, नित्यमण्डिता । तथा–सुभद्रा, विशाला, सुजाता एवं सुमना ।

सूत्र - १६२

जम्बू सुदर्शना पर आठ-आठ मांगलिक द्रव्य प्रस्थापित हैं ।

भगवन् ! इसका नाम जम्बू सुदर्शना किस कारण पड़ा ? गौतम ! वहाँ जम्बूद्वीपाधिपति, परम ऋद्धिशाली अनादृत नामक देव अपने ४००० सामानिक देवों, यावत् १६००० आत्मरक्षक देवों का, जम्बूद्वीप का, जम्बू सुदर्शना का, अनादृता नामक राजधानी का, अन्य अनेक देव-देवियों का आधिपत्य करता हुआ निवास करता है । अथवा गौतम ! जम्बू सुदर्शना नाम ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय तथा अवस्थित है । अनादृत देव की अनादृता राजधानी कहाँ है? गौतम! जम्बूद्वीप अन्तर्गत मेरुपर्वत के उत्तर में है । उसके प्रमाणादि यमिका राजधानी सदृश हैं

सूत्र – १६३, १६४

भगवन् ! उत्तरकुरु–नाम किस कारण पड़ा ? गौतम ! उत्तरकुरुमें परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयु-युक्त उत्तरकुरु नामक देव निवास करता है । अथवा उत्तरकुरु नाम शाश्वत है । महाविदेह क्षेत्र अन्तर्गत माल्यवान् वक्षस्कारपर्वत कहाँ है ? गौतम ! मन्दरपर्वत के ईशानकोण में, नीलवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिणमें, उत्तरकुरु के पूर्व में, कच्छ नामक चक्रवर्ती-विजय के पश्चिममें है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बा एवं पूर्व-पश्चिम चौड़ा है । गन्धमादन समान प्रमाण विस्तार है। इतना अन्तर की सर्वथा वैडूर्य-रत्नमय है। गौतम! यावत्–शिखर नौ हैं यथा– सिद्धायतन कूट, माल्यवान्कूट, उत्तरकुरुकूट, कच्छकूट, सागरकूट, रजतकूट, शीताकूट, पूर्णभद्रकूट एवं हरिस्सहकूट ।

सूत्र - १६५

भगवन् ! माल्यवान वक्षस्कार पर्वत पर सिद्धायतनकूट कहाँ है ? गौतम ! मन्दरपर्वत के–ईशान-कोण में,

माल्यवान कूट के नैर्ऋत्य कोण में है । वह पाँच सौ योजन ऊंचा है । भगवन् ! माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत पर सागरकूट कहाँ है ? गौतम ! कच्छकूट के-ईशानकोण में और रजतकूट के दक्षिण में है । वह पाँच सौ योजन ऊंचा है । वहाँ सुभोगा नामक देवी निवास करती है । ईशानकोण में उसकी राजधानी है । रजतकूट पर भोगमालिनी देवी है । उत्तर-पूर्व में उसकी राजधानी है । पिछले कूट से अगला कूट उत्तर में, अगले कूट से पिछला कूट दक्षिण में-इस क्रम से अवस्थित हैं, समान प्रमाणयुक्त हैं ।

सूत्र - १६६

भगवन् ! माल्यवान वक्षस्कार पर्वत पर हरिस्सहकूट कहाँ है ? गौतम ! पूर्णभद्रकूट के उत्तर में, नीलवान पर्वत के दक्षिण में है । वह एक हजार योजन ऊंचा है । लम्बाई, आदि सब यमक पर्वत के सदृश है । मन्दर पर्वत के उत्तर में असंख्य तिर्यक् द्वीपसमुद्रों को लांघकर अन्य जम्बूद्वीप के अन्तर्गत उत्तर के १२००० योजन जाने पर हरिस्सहकूट के अधिष्ठायक हरिस्सह देव की हरिस्सहा राजधानी है । वह ८४००० योजन लम्बी-चौड़ी है । उसकी परिधि २६५६३६ योजन है । वह ऋद्धिमय तथा द्युतिमय है । भगवन् ! माल्यवान वक्षस्कारपर्वत-नाम क्यों है ? गौतम ! माल्यवान वक्षस्कार पर्वत पर जहाँ तहाँ बहुत से सरिकाओं, नवमालिकाओं, मगदन्तिकाओं-आदि पुष्पलताओं के गुल्म हैं । वे लताएं पवन द्वारा प्रकम्पित अपनी टहनियों के अग्रभाग से मुक्त हुए पुष्पों द्वारा माल्यवान वक्षस्कारपर्वत के अत्यन्त समतल एवं सुन्दर भूमिभाग को सुशोभित, सुसज्जित करती हैं । वहाँ एक पल्योपम आयुष्ययुक्त माल्यवान देव हैं, अथवा उसका यह नाम नित्य है ।

सूत्र - १६७, १६८

भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेहक्षेत्रमें कच्छविजय कहाँ है ? गौतम ! शीता महानदी के उत्तर में, नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिममें, माल्यवान वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बी एवं पूर्व-पश्चिम चौड़ी है, पलंग के आकारमें अवस्थित है । गंगा महानदी, सिन्धु महानदी तथा वैताढ्य पर्वत द्वारा वह छह भागों में विभक्त है । वह १६५९२-२/१९ योजन लम्बी तथा कुछ कम २२१३ योजन चौड़ी है । कच्छविजय के बीचोंबीच वैताढ्यपर्वत है, जो कच्छ विजय को दक्षिणार्ध तथा उत्तरार्ध रूप में दो भागों में बाँटता है

भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेहक्षेत्रमें दक्षिणार्ध कच्छ कहाँ है ? गौतम ! वैताढ्यपर्वत के दक्षिणमें, शीता महानदी के उत्तरमें, चित्रकूट वक्षस्कारपर्वत के पश्चिममें, माल्यवान वक्षस्कारपर्वत के पूर्व में है । वह उत्तर -दक्षिण लम्बा तथा पूर्व-पश्चिम चौड़ा है । ८२७१-१/१९ योजन लम्बा है, कुछ कम २२१३ योजन चौड़ा है, पलंग आकारमें विद्यमान है । दक्षिणार्ध कच्छविजय का आकार, भाव, प्रत्यवतार किस प्रकार का है ? गौतम ! वहाँ का भूमिभाग बहुत समतल एवं सुन्दर है । वह कृत्रिम मणियों तथा तृणों से सुशोभित है । दक्षिणार्ध कच्छ-विजय में मनुष्यों का आकार, भाव, प्रत्यवतार कैसा है ? गौतम ! वहाँ मनुष्य छह प्रकार के संहननों से युक्त होते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत् ।

जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में वैताढ्य पर्वत कहाँ है ? गौतम ! दक्षिणार्ध कच्छविजय के उत्तर में, उत्तरार्ध कच्छविजय के दक्षिण में, चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में तथा माल्यवान वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में है, वह पूर्व-पश्चिम लम्बा है, उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । दो ओर से वक्षस्कार-पर्वतों का स्पर्श करता है । वह भरत क्षेत्रवर्ती वैताढ्य पर्वत के सदृश है । अवक्रक्षेत्रवर्ती होने के कारण उसमें बाहाएं, जीवा तथा धनुपृष्ठ-नहीं कहना । चौड़ाई, ऊंचाई एवं गहराई में भरतक्षेत्रवर्ती वैताढ्य पर्वत के समान है । इसकी दक्षिणी श्रेणी में ५५ तथा उत्तरी श्रेणी में ५५ विद्याधर-नगरावास हैं । आभियोग्य श्रेण्यन्तर्गत, शीता महानदी के उत्तर में जो श्रेणियाँ हैं, वे ईशानदेव-की हैं, बाकी की श्रेणियाँ शक्र-की हैं । वहाँ कूट-इस प्रकार हैं- सिद्धायतनकूट, दक्षिणकच्छार्धकूट, खण्डप्रपातगुहाकूट, माणिभद्रकूट, वैताढ्यकूट, पूर्णभद्रकूट, तमिस्र-गुहाकूट, उत्तरार्धकच्छकूट, वैश्रवणकूट ।

सूत्र - १६९

भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में उत्तरार्ध कच्छ कहाँ है ? गौतम ! वैताढ्य पर्वत के उत्तर में,

नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, माल्यवान वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में तथा चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में है । अवशेष वर्णन पूर्ववत् । जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में उत्तरार्धकच्छविजय में सिन्धुकुण्ड कहाँ है ? गौतम ! माल्यवान वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में, ऋषभकूट के पश्चिम में, नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिणी नितम्ब में-है । वह साठ योजन लम्बा-चौड़ा है । उस सिन्धुकुण्ड के दक्षिणी तोरण से सिन्धु महानदी निकलती है । उत्तरार्ध कच्छ विजय में बहती है । उसमें वहाँ ७००० नदियाँ मिलती हैं । वह उनसे आपूर्ण होकर नीचे तिमिस्रगुहा से होती हुई वैताढ्य पर्वत के विदीर्ण कर-दक्षिणार्ध कच्छ विजय में जाती है । वहाँ १४००० नदियों से युक्त होकर वह दक्षिण में शीता महानदी में मिल जाती है । सिन्धु महानदी अपने उद्गम तथा संगम पर प्रवाह-में भरत क्षेत्रवर्ती सिन्धु महानदी के सदृश है ।

भगवन् ! उत्तरार्ध कच्छ विजय में ऋषभकूट पर्वत कहाँ है ? गौतम ! सिन्धुकूट के पूर्व में, गंगाकूट के पश्चिम में, नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिणी ढलान में है । वह आठ योजन ऊंचा है । उसकी राजधानी उत्तर में है । उत्तरार्ध कच्छविजय में गंगाकुण्ड कहाँ है ? गौतम ! चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में, ऋषभकूट पर्वत के पूर्व में, नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिणी ढलान में है । वह ६० योजन लम्बा-चौड़ा है । वह एक वनखण्ड द्वारा परिवेष्टित है-भगवन् ! वह कच्छविजय क्यों कहा जाता है ? गौतम ! कच्छविजय में वैताढ्य पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, गंगा महानदी के पश्चिम में, सिन्धु महानदी के पूर्व में दक्षिणार्ध कच्छ विजय के बीचोंबीच उसकी क्षेमा राजधानी है । क्षेमा राजधानी में कच्छ नामक षट्खण्ड-भोक्ता चक्रवर्ती राजा समुत्पन्न होता है-कच्छविजय में परम समृद्धिशाली, एक पल्योपम आयु-स्थितियुक्त कच्छ देव निवास करता है । अथवा उसका कच्छविजय नाम नित्य है, शाश्वत है ।

सूत्र - १७०

भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्रमें चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत कहाँ है ? गौतम ! शीता महानदी के उत्तर में, नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, कच्छविजय के पूर्वमें तथा सुकच्छविजय के दक्षिण में है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बा तथा पूर्व-पश्चिम चौड़ा है । १६५९२ योजन लम्बा है, ५०० योजन चौड़ा है, नीलवान वर्षधर पर्वत के पास ४०० योजन ऊंचा है तथा ४०० कोश जमीन में गहरा है । तत्पश्चात् ऊंचाई एवं गहराई में क्रमशः बढ़ता जाता है । शीतामहानदी पास वह ५०० योजन ऊंचा, ५०० कोश जमीनमें गहरा हो जाता है । उसका आकार घोड़े के कन्धे जैसा है, वह सर्वरत्नमय है । वह अपने दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं से तथा दो वन-खण्डों से घिरा है । चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के ऊपर बहुत समतल एवं सुन्दर भूमिभाग है । वहाँ देव-देवियाँ आश्रय लेते हैं, विश्राम करते हैं ।

चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के कितने कूट हैं ? गौतम ! चार - सिद्धायतनकूट, चित्रकूट, कच्छकूट तथा सुकच्छकूट । ये परस्पर उत्तर-दक्षिण में एक समान हैं । पहला सिद्धायतनकूट शीता महानदी के उत्तर में तथा चौथा सुकच्छकूट नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिण में है । चित्रकूट नामक देव वहाँ निवास करता है ।

सूत्र - १७१

भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में सुकच्छ विजय कहाँ है ? गौतम ! शीता महानदी के उत्तर में, नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, ग्राहावती महानदी के पश्चिम में तथा चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बा है । क्षेमपुरा उसकी राजधानी है । वहाँ सुकच्छ नामक राजा समुत्पन्न होता है । बाकी कच्छ विजय की ज्यों हैं ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में ग्राहावतीकुण्ड कहाँ है ? गौतम ! सुकच्छविजय के पूर्व में, महाकच्छ विजय के पश्चिम में नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिणी ढलान में है । उस के दक्षिणी तोरण-द्वार से ग्राहावती महानदी निकलती है । वह सुकच्छ महाकच्छ विजय को दो भागों में विभक्त है । उसमें २८००० नदियाँ मिलती हैं । वह उनसे आपूर्ण होकर दक्षिण में शीता महानदी से मिल जाती है । ग्राहावती महानदी उद्गम-स्थान

पर, संगम-स्थान पर–सर्वत्र एक समान है । वह १२५ योजन चौड़ी है, अढ़ाई योजन जमीन में गहरी है । वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं द्वारा, दो वन-खण्डों द्वारा घिरी हैं ।

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में महाकच्छ विजय कहाँ है ? गौतम ! नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में पद्मकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में, ग्राहावती महानदी के पूर्व में है । यहाँ महाकच्छ नामक देव रहता है । महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत पद्मकूट वक्षस्कार पर्वत कहाँ है ? गौतम ! नीलवान वक्षस्कार पर्वत के दक्षिण में शीता महानदी के उत्तर में, महाकच्छ विजय के पूर्व में, कच्छावती विजय के पश्चिम में है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बा है, पूर्व-पश्चिम चौड़ा है । पद्मकूट के चार कूट हैं–सिद्धायतनकूट, पद्मकूट, महाकच्छकूट, कच्छावती कूट । यहाँ परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्ययुक्त पद्मकूट देव निवास करता है । गौतम ! इस कारण यह पद्मकूट कहलाता है । भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में कच्छकावती विजय कहाँ है ? गौतम ! नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, द्रहावती महानदी के पश्चिम में, पद्मकूट के पूर्व में है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बा तथा पूर्व-पश्चिम चौड़ा है । यहाँ कच्छकावती नामक देव निवास करता है । महाविदेह क्षेत्र में द्रहावतीकुण्ड कहाँ है? गौतम ! आवर्त विजय के पश्चिम में, कच्छकावती विजय के पूर्व में, नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिणी ढलान में है । उस द्रहावतीकुण्ड के दक्षिणी तोरण-द्वार से द्रहावती महानदी निकलती है । वह कच्छावती तथा आवर्त विजय को दो भागों में बाँटती है । दक्षिण में शीतोदा महानदी में मिल जाती है ।

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में आवर्त विजय कहाँ है ? गौतम ! नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में तथा द्रहावती महानदी के पूर्व में है । महाविदेह क्षेत्र में नलिनकूट वक्षस्कार पर्वत कहाँ है ? गौतम ! नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, मंगलावती विजय के पश्चिम में तथा आवर्त विजय के पूर्व में है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बा एवं पूर्व-पश्चिम चौड़ा है । भगवन् ! नलिनकूट के कितने कूट हैं ? गौतम ! चार – सिद्धायतनकूट, नलिनकूट, आवर्तकूट तथा मंगलावर्तकूट । ये कूट पाँच सो योजन ऊंचे हैं । राजधानियाँ उत्तर में हैं ।

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में मंगलावर्त विजय कहाँ है ? गौतम ! नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, नलिनकूट के पूर्व में, पंकावती के पश्चिम में है । वहाँ मंगलावर्त नामक देव निवास करता है । इस कारण वह मंगलावर्त कहा जाता है । महाविदेह क्षेत्र में पंकावतीकुण्ड कुण्ड कहाँ है ? गौतम ! मंगलावर्त विजय के पूर्व में, पुष्कल विजय के पश्चिम में, नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिणी ढलान में है । उससे पंकावती नदी निकलती है, जो मंगलावर्त विजय तथा पुष्कलावर्त विजय को दो भागों में विभक्त करती है । महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावर्त विजय कहाँ है ? गौतम ! नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिण में शीता महानदी के उत्तर में, पंकावती के पूर्व में एकशैल वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में है । यहाँ एक पल्योपम आयुष्य युक्त पुष्कल देव निवास करता है ।

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में एकशैल वक्षस्कार पर्वत कहाँ है ? गौतम ! पुष्कलावर्त-चक्रवर्ती-विजय के पूर्व में, पुष्कलावती-चक्रवर्ती-विजय के पश्चिम में, नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में है । उसके चार कूट हैं–सिद्धायतनकूट, एकशैलकूट, पुष्कलावर्तकूट तथा पुष्कलावतीकूट । ये पाँच सौ योजन ऊंचे हैं । उस पर एकशैल नामक देव निवास करता है । महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती चक्रवर्ती-विजय कहाँ है ? गौतम ! नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, उत्तरवर्ती शीतामुखवन के पश्चिम में, एकशैल वक्षस्कारपर्वत के पूर्व में है । उसमें पुष्कलावती नामक देव निवास करता है ।

भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में शीता महानदी के उत्तर में शीतामुख वन कहाँ है ? गौतम ! नीलवान वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, शीता महानदी के उत्तर में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, पुष्कलावती चक्रवर्ती-विजय के पूर्व में है । वह १६५९२-२/१९ योजन लम्बा है । शीता महानदी के पास २९२२ योजन चौड़ा है । तत्पश्चात् विस्तार क्रमशः घटता जाता है । नीलवान वर्षधर पर्वत के पास यह केवल १/१९ योजन चौड़ा रह जाता है । यह वन एक पद्मवरवेदिका तथा एक वन-खण्ड द्वारा संपरिवृत्त है । विभिन्न विजयों की राजधानियाँ इस प्रकार हैं–

सूत्र - १७२

क्षेमा, क्षेमपुरा, अरिष्टा, अरिष्टपुरा, खड्गी, मंजूषा, औषधि तथा पुण्डरीकिणी ।

सूत्र - १७३

कच्छ आदि पूर्वोक्त विजयों में सोलह विद्याधर-श्रेणियाँ तथा उतनी ही-आभियोग्यश्रेणियाँ हैं । ये आभियोग्यश्रेणियाँ ईशानेन्द्र की हैं । सब विजयों की वक्तव्यता कच्छविजय समान है । उन विजयों के जो जो नाम हैं, उन्हीं नामों के चक्रवर्ती राजा वहाँ होते हैं । विजयों में जो सोलह पर्वत हैं, प्रत्येक वक्षस्कार पर्वत के चार चार कूट हैं । उनमें बारह नदियाँ हैं, वे दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो वन-खण्डों द्वारा परिवेष्टित है ।

सूत्र - १७४

भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में शीतामुखवन कहाँ है ? गौतम ! शीता महानदी के उत्तर-दिग्वर्ती शीतामुखवन के समान ही दक्षिण दिग्वर्ती शीतामुखवन समझ लेता । इतना अन्तर है-दक्षिण-दिग्वर्ती शीतामुखवन निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, शीता महानदी के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, वत्स विजय के पूर्व में है। वह उत्तर-दक्षिण लम्बा है और सब उत्तर-दिग्वर्ती शीतामुख वन की ज्यों है । इतना अन्तर और है-वह घटते-घटते निषध वर्षधर पर्वत के पास १/१९ योजन चौड़ा रह जाता है । वह काले, नीले आदि पत्तों से युक्त होने से वैसी आभा लिये है । उससे बड़ी सुगन्ध फुटती है, देव-देवियाँ उस पर आश्रय लेते हैं, विश्राम करते हैं । वह दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं तथा वनखण्डों से परिवेष्टित है-

भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में वत्स विजय कहाँ है ? गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, शीता महानदी के दक्षिण में, दक्षिणी शीतामुख वन के पश्चिम में, त्रिकूट वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में उसकी सुसीमा राजधानी है । त्रिकूट वक्षस्कार पर्वत पर सुवत्स विजय है । उसकी कुण्डला राजधानी है । वहाँ तप्तजला नदी है । महावत्स विजय की अपराजिता राजधानी है । वैश्रवणकूट वक्षस्कार पर्वत पर वत्सावती विजय है । उसकी प्रभंकरा राजधानी है । वहाँ मत्तजला नदी है । रम्य विजय की अंकावती राजधानी है । अंजन वक्षस्कार पर्वत पर रम्यक विजय है । उसकी पद्मावती राजधानी है । वहाँ उन्मत्तजला महानदी है । रमणीय विजय की शुभा राजधानी है । मातंजन वक्षस्कार पर्वत पर मंगलावती विजय है । उसकी रत्नसंचया राजधानी है । शीता महानदी का जैसा उत्तरी पार्श्व है, वैसा ही दक्षिणी पार्श्व है । उत्तरी शीतामुख वन की ज्यों दक्षिणी शीतामुख वन है । वक्षस्कारकूट इस प्रकार है-त्रिकूट, वैश्रवणकूट, अंजनकूट, मातंजनकूट ।

सूत्र – १७५, १७६

विजय इस प्रकार है-वत्स विजय, सुवत्स विजय, महावत्स विजय, वत्सकावती विजय, रम्यविजय, रम्यक विजय, रमणीय विजय तथा मंगलावती विजय । राजधानियाँ इस प्रकार हैं-सुसीमा, कुण्डला, अपराजिता, प्रभंकरा, अंकावती, पद्मावती, शुभा तथा रत्न-संचया ।

सूत्र - १७७

वत्स विजय के दक्षिण में निषध पर्वत है, उत्तर में शीता महानदी है, पूर्व में दक्षिणी शीतामुख वन है तथा पश्चिम में त्रिकूट वक्षस्कार पर्वत है । उसकी सुसीमा राजधानी है, जो विनीता के सदृश है । वत्स विजय के अनन्तर त्रिकूट पर्वत, तदनन्तर सुवत्स विजय, इसी क्रम से तप्तजला नदी, महावत्स विजय, वैश्रवण कूट वक्षस्कार पर्वत, वत्सावती विजय, मत्तजला नदी, रम्यविजय, अंजन वक्षस्कार पर्वत, रम्यक विजय, उन्मत्तजला नदी, रमणीय विजय, मातंजन वक्षस्कार पर्वत तथा मंगलावती विजय हैं ।

सूत्र - १७८

भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में सौमनस वक्षस्कार पर्वत कहाँ है ? गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत के

उत्तर में, अन्दर पर्वत के–आग्नेय कोण में, मंगलावती विजय के पश्चिम में, देवकुरु के पूर्व में है । वह सर्वथा रजतमय है, उज्ज्वल है, सुन्दर है । वह निषध वर्षधर पर्वत के पास ४०० योजन ऊंचा है । ४०० कोश जमीन में गहरा है । गौतम ! सौमनस वक्षस्कार पर्वत पर बहुत से सौम्य–स्वभावयुक्त, कायकुचेष्टारहित, सुमनस्क, मनःकालुष्य रहित देव-देवियाँ आश्रय लेते हैं, विश्राम करते हैं । तदधिष्ठायक परम ऋद्धिशाली सौमनस नामक देव वहाँ निवास करता है । अथवा गौतम ! उसका यह नाम नित्य है । सौमनस वक्षस्कार पर्वत के कितने कूट हैं ? गौतम ! सात हैं–

सूत्र - १७९

सिद्धायतनकूट, सौमनसकूट, मंगलावतीकूट, देवकुरुकूट, विमलकूट, कंचनकूट तथा वशिष्ठकूट ।

सूत्र - १८०

ये सब कूट ५०० योजन ऊंचे हैं । इनका वर्णन गन्धमादन के कूटों के सदृश है । इतना अन्तर है–विमलकूट तथा कंचनकूट पर सुवत्सा एवं वत्समित्रा नामक देवियाँ रहती हैं । बाकी के कूटों पर, कूटों के जो-जो नाम हैं, उन-उन नामों के देव निवास करते हैं । मेरु के दक्षिण में उनकी राजधानियाँ हैं । भगवन् ! महाविदेह क्षेत्र में देवकुरु कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत के दक्षिण में, निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में, सौमनस पर्वत के पश्चिम में है । वह ११८४२-२/१९ योजन विस्तीर्ण है । शेष वर्णन उत्तरकुरु सदृश है । वहाँ पद्मगन्ध, मृगगन्ध, अमम, सह, तेतली तथा शनैश्चारी, छह प्रकार के मनुष्य होते हैं, जिनकी वंश-परंपरा–उत्तरोत्तर चलती है ।

सूत्र - १८१

भगवन् ! देवकुरु में चित्र-विचित्र कूट नामक दो पर्वत कहाँ है ? गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत के उत्तरी चरमान्त से–८३४–४/७ योजन की दूरी पर शीतोदा महानदी के पूर्व-पश्चिम के अन्तराल में उसके दोनों तटों पर हैं । उनके अधिष्ठातृ-देवों की राजधानियाँ मेरु के दक्षिण में है ।

सूत्र - १८२

भगवन् ! देवकुरु में निषध द्रह कहाँ है ? गौतम ! चित्र-विचित्र कूट नामक पर्वतों के उत्तरी चरमान्त से ८३४–४/७ योजन की दूरी पर शीतोदा महानदी के ठीक मध्य भाग में है । नीलवान, उत्तरकुरु, चन्द्र, ऐरावत तथा माल्यवान–इन द्रहों की जो वक्तव्यता है, वही निषध, देवकुरु, सूर, सुलस तथा विद्युत्प्रभ नामक द्रहों की समझना । उनके अधिष्ठातृ-देवों की राजधानियाँ मेरु के दक्षिण में है ।

सूत्र - १८३

भगवन् ! देवकुरु में कूटशाल्मलीपीठ–कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत के–नैर्ऋत्य कोण में, निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत के पूर्व में, शीतोदा महानदी के पश्चिम में देवकुरु के पश्चिमार्ध के ठीक बीच में है । जम्बू सुदर्शना समान वर्णन इनका समझना । गरुड इसका अधिष्ठातृ-देव है । राजधानी मेरु के दक्षिण में है । यहाँ एक पल्योपमस्थितिक देव निवास करता है । अथवा देवगुरु नाम शाश्वत है ।

सूत्र – १८४, १८५

भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत कहाँ है ? गौतम ! निषध वर्षधर पर्वत के उत्तर में, मन्दर पर्वत के दक्षिण-पश्चिम में, देवकुरु के पश्चिम में तथा पद्म विजय के पूर्व में है । शेष वर्णन माल्यवान पर्वत जैसा है । इतनी विशेषता है–वह सर्वथा तपनीय–स्वर्णमय है । विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत के कितने कूट बतलाये गये हैं ? गौतम ! नौ हैं–सिद्धायतनकूट, विद्युत्प्रभकूट, देवकुरुकूट, पक्ष्मकूट, कनककूट, सौवत्सिककूट, शीतोदाकूट, शतज्वल-कूट, हरिकूट ।

सूत्र - १८६

हरिकूट के अतिरिक्त सभी कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे हैं । हरिकूट हरिस्सहकूट सदृश है । दक्षिण में इसकी राजधानी है । कनककूट तथा सौवत्सिककूट में वारिषेणा एवं बलाहका नामक दो दिक्कुमारियाँ निवास करती हैं । बाकी के कूटों में कूट-सदृश नामयुक्त देवता निवास करते हैं । उनकी राजधानियाँ मेरु के दक्षिण में है । वह विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत क्यों कहा जाता है ? गौतम ! विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत विद्युत की ज्यों–सब ओर से अवभासित होता है, उद्योतित होता है, प्रभासित होता है–बिजली की ज्यों चमकता है । वहाँ पल्योपमपरिमित आयुष्य-स्थिति युक्त विद्युत्प्रभ देव निवास करता है, अथवा उसका यह नाम नित्य है ।

सूत्र – १८७, १८८

पक्ष्म विजय हे, अश्वपुरी राजधानी है, अंकावती वक्षस्कार पर्वत है । सुपक्ष्म विजय है, सिंहपुरी राजधानी है, क्षीरोदा महानदी है । महापक्ष्म विजय है, महापुरी राजधानी है, पक्ष्मावती वक्षस्कार पर्वत है । पक्ष्मकावती विजय है, विजयपुरी राजधानी है, शीतस्रोता महानदी है । शंख विजय है, अपराजिता राजधानी है, आशीविष वक्षस्कार पर्वत है । कुमुद विजय है, अरजा राजधानी है, अन्तर्वाहिनी महानदी है । नलिन विजय है, अशोका राजधानी है, सुखावह वक्षस्कार पर्वत है । नलिनावती विजय है, वीताशोका राजधानी है । दाक्षिणात्य शीतोदामुख वनखण्ड के समान उत्तरी शीतोदामुख वनखण्ड है । उत्तरी शीतोदामुख वनखण्ड में वप्र विजय है, विजया राजधानी हे, चन्द्र वक्षस्कार पर्वत है । सुवप्र विजय है, वैजयन्ती राजधानी है, ऊर्मिमालिनी नदी है । महावप्र विजय है, जयन्ती राजधानी है, सूर वक्षस्कार पर्वत है । वप्रावती विजय है, अपराजिता राजधानी है, फेनमालिनी नदी है । वल्गु विजय है, चक्रपुरी राजधानी है, नाग वक्षस्कार पर्वत है । सुवल्गु विजय है, खड्गपुरी राजधानी है, गम्भीर-मालिनी अन्तरनदी है । गन्धिल विजय है, अवध्या राजधानी है, देव वक्षस्कार पर्वत है । गन्धिलावती विजय है, अयोध्या राजधानी है । इसी प्रकार मन्दर पर्वत के दक्षिणी पार्श्व का–कथन कर लेना । वहाँ शीतोदा नदी के दक्षिणी तट पर ये विजय हैं– पक्ष्म, सुपक्ष्म, महापक्ष्म, पक्ष्मकावती, शंख, कुमुद, नलिन तथा नलिनावती ।

सूत्र - १८९

राजधानियाँ इस प्रकार हैं–अश्वपुरी, सिंहपुरी, महापुरी, विजयपुरी, अपराजिता, अरजा, अशोका तथा वीतशोका ।

सूत्र – १९०, १९१

वक्षस्कार पर्वत इस प्रकार हैं–अंक, पक्ष्म, आशीविष तथा सुखावह । इस क्रमानुरूप कूट सदृश नामयुक्त दो-दो विजय, दिशा-विदिशाएं, शीतोदा का दक्षिणवर्ती मुखवन तथा उत्तरवर्ती मुखवन–ये सब समझ लेना । शीतोदा के उत्तरी पार्श्व में ये विजय हैं–

वप्र, सुवप्र, महावप्र, वप्रावती, वल्गु, सुवल्गु, गन्धिल तथा गन्धिलावती ।

सूत्र - १९२

राजधानियाँ इस प्रकार–विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता, चक्रपुरी, खड्गपुरी, अवध्या तथा अयोध्या ।

सूत्र - १९३

वक्षस्कार पर्वत इस प्रकार हैं–चन्द्र पर्वत, सूर पर्वत, नाग पर्वत तथा देव पर्वत । क्षीरोदा तथा शीतस्रोता नामक नदियाँ शीतोदा महानदी के दक्षिणी तट पर अन्तरवाहिनी नदियाँ हैं । ऊर्मिमालिनी, फेनमालिनी तथा गम्भीर मालिनी शीतोदा महानदी के उत्तर दिग्वर्ती विजयों की अन्तरवाहिनी नदियाँ हैं । इस क्रम में दो-दो कूट–अपने-अपने विजय के अनुरूप कथनीय हैं । वे अवस्थित हैं ।

सूत्र - १९४

भगवन् ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में मन्दर पर्वत कहाँ है ? गौतम ! उत्तरकुरु के दक्षिण में, देवकुरु के उत्तर में, पूर्व विदेह के पश्चिम में और पश्चिम विदेह के पूर्व में है । वह ९९००० योजन ऊंचा है, १००० जमीन में गहरा है । वह मूल में १००९०-१०/१९ योजन तथा भूमितल पर १०००० योजन चौड़ा है । उसके बाद वह चौड़ाई की मात्रा में क्रमशः घटता-घटता ऊपर के तल पर १००० योजन चौड़ा रह जाता है । उसकी परिधि मूल में ३१९१० -३/१९ योजन, भूमितल पर ३१६२३ योजन तथा ऊपरी तल पर कुछ अधिक ३१६२ योजन है । वह मूल में विस्तीर्ण-मध्य में संक्षिप्त-तथा ऊपर पतला है । उसका आकार गाय की पूँछ के आकार जैसा है । वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है, सुकोमल है । वह एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वनखण्ड द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ है ।

भगवन् ! मन्दर पर्वत पर कितने वन हैं ? गौतम ! चार - भद्रशालवन, नन्दनवन, सौमनसवन तथा पंडक वन । भद्रशालवन कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत पर उसके भूमिभाग पर है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बा एवं उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । वह सौमनस, विद्युत्प्रभ, गन्धमादन तथा माल्यवान नामक वक्षस्कार पर्वतों द्वारा शीता तथा शीतोदा नामक महानदियों द्वारा आठ भागों में विभक्त है । वह मन्दर पर्वत के पूर्व-पश्चिम बाईस-बाईस हजार योजन लम्बा है, उत्तर-दक्षिण अढ़ाई सौ-अढ़ाई सौ योजन चौड़ा है ।

वह एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वन-खण्ड द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ है । वह काले, नीले पत्तों से आच्छन्न है, वैसी आभा से युक्त है । देव-देवियाँ वहाँ आश्रय लेते हैं, विश्राम लेते हैं-मन्दर पर्वत के पूर्व में भद्रशालवन में पचास योजन जाने पर एक विशाल सिद्धायतन आता है । वह पचास योजन लम्बा है, पच्चीस योजन चौड़ा है तथा छत्तीस योजन ऊंचा है । वह सैकड़ों खंभों पर टिका है । उस सिद्धायतन की तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं । वे द्वार आठ योजन ऊंचे तथा चार योजन चौड़े हैं । उनके प्रवेश मार्ग भी उतने ही हैं । उनके शिखर श्वेत हैं, उत्तम स्वर्ण निर्मित हैं । उसके बीचोंबीच एक विशाल मणिपीठिका है । वह आठ योजन लम्बी-चौड़ी है, चार योजन मोटी है, सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है, उज्ज्वल है। उस मणिपीठिका के ऊपर देवच्छन्दक है । वह आठ योजन लम्बा-चौड़ा है । वह कुछ अधिक आठ योजन ऊंचा है । जिनप्रतिमा, देवच्छन्दक, धूपदान आदि का वर्णन पूर्ववत् है । मन्दर पर्वत के दक्षिण में भद्रशाल वन में पचास योजन जाने पर वहाँ उसकी चारों दिशाओं में चार सिद्धायतन हैं ।

मन्दर पर्वत के-ईशान कोण में भद्रशाल वन में पचास योजन जाने पर पद्मा, पद्मप्रभा, कुमुदा तथा कुमुदप्रभा नामक चार पुष्करिणियाँ आती हैं । वे पचास योजन लम्बी, पच्चीस योजन चौड़ी तथा दश योजन जमीन में गहरी है । उन पुष्करिणियों के बीच में देवराज ईशानेन्द्र का उत्तम प्रासाद है । वह पाँच सौ योजन ऊंचा और अढ़ाई सौ योजन चौड़ा है । मन्दर पर्वत के-आग्नेय कोण में उत्पलगुल्मा, नलिना, उत्पला तथा उत्पलो-ज्ज्वला नामक पुष्करिणियाँ हैं । उनके बीच में उत्तम प्रासाद हैं । देवराज शक्रेन्द्र वहाँ सपरिवार रहता है । मन्दर पर्वत के-नैर्ऋत्य कोण में भृंगा, भृंगनिभा, अंजना एवं अंजनप्रभा नामक पुष्करिणियाँ हैं । शक्रेन्द्र वहाँ का अधिष्ठातृ देव है । मन्दर पर्वत के-ईशान कोण में श्रीकान्ता, श्रीचन्द्रा, श्रीमहिता तथा श्रीनिलया नामक पुष्करिणियाँ हैं । बीच में उत्तम प्रासाद हैं । वहाँ ईशानेन्द्र देव निवास करता है । भगवन् ! मन्दर पर्वत पर भद्रशाल वन में दिशाहस्तिकूट-कितने हैं ? गौतम ! आठ-

सूत्र - १९५

पद्मोत्तर, नीलवान्, सुहस्ती, अंजनगिरि, कुमुद, पलाश, अवतंस तथा रोचनागिरि ।

सूत्र - १९६

भगवन् ! पद्मोत्तर नामक दिग्हस्तिकूट कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत के-ईशान कोण में तथा पूर्व दिग्गत शीता महानदी के उत्तर में है । वह ५०० योजन ऊंचा तथा ५०० कोश जमीन में गहरा है । उसकी चौड़ाई तथा

परिधि चुल्लहिमवान् पर्वत के समान है । वहाँ पद्मोत्तर देव निवास करता है । उसकी राजधानी–ईशान कोण में है । नीलवान् नामक दिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के–आग्नेय कोण में तथा पूर्व दिशागत शीता महानदी के दक्षिण में हैं । वहाँ नीलवान् देव निवास करता है । उसकी राजधानी–आग्नेय कोण में है । सुहस्ती नामक दिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के–आग्नेय कोण में तथा दक्षिण-दिशागत शीतोदा महानदी के पूर्व में है । वहाँ सुहस्ती देव निवास करता है । उसकी राजधानी–आग्नेय कोण में है । अंजनगिरि नामक दिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के–नैर्ऋत्य कोण में तथा दक्षिण –दिशागत शीतोदा महानदी के पश्चिम में है । अंजनगिरि नामक अधिष्ठायक देव है । राजधानी–नैर्ऋत्य को में है । कुमुद नामक विदिशागत हस्तिकूट मन्दर पर्वत के–नैर्ऋत्य कोण में तथा पश्चिम-दिग्वर्ती शीतोदा महानदी के दक्षिण में है । वहाँ कुमुद देव निवास करता है । राजधानी–नैर्ऋत्य कोण में है । पलाश नामक विदिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के–वायव्य कोण में एवं पश्चिम दिग्वर्ती शीतोदा महानदी के उत्तर में है । पलाश देव निवास करता है । राजधानी–वायव्य कोण में है । अवतंस नामक विदिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के–वायव्य कोण तथा उत्तर दिग्गत शीता महानदी के पश्चिम में है । अवतंस देव निवास करता है । राजधानी–वायव्य कोण में है । रोचनगिरि नामक दिग्हस्तिकूट मन्दर पर्वत के–ईशान कोण में और उत्तर दिग्गत शीता महानदी के पूर्व में है । रोचनागिरि देव निवास करता है । राजधानी–ईशान कोण में है ।

सूत्र - १९७

भगवन् ! नन्दनवन कहाँ है ? गौतम ! भद्रशालवन के बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग से पाँच सौ योजन ऊपर जाने पर है । चक्रवालविष्कम्भ–के सब ओर से समान, विस्तार की अपेक्षा से वह ५०० योजन है, गोल है । उसका आकार वलय–के सदृश है, सघन नहीं है, मध्य में वलय की ज्यों शुषिर है । वह मन्दर पर्वतों को चारों ओर से परिवेष्टित किये हुए है । नन्दनवन के बाहर मेरु पर्वत का विस्तार ९९५४–६/१९ योजन है । बाहर उसकी परिधि कुछ अधिक ३१४७९ योजन है । भीतर उसका विस्तार ८९४४–६/१९ योजन है । उसकी परिधि २८३१६–८/१९ योजन है । वह एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वनखण्ड द्वारा चारों ओर से परिवेष्टित है । वहाँ देव-देवियाँ आश्रय लेते हैं–मन्दर पर्वत के रूप में एक विशाल सिद्धायतन है । ऐसे चारों दिशाओं में चार सिद्धायतन हैं । विदिशाओं में–पुष्करिणियाँ हैं । नन्दनवन में कितने कूट हैं ? गौतम ! नौ, नन्दनवनकूट, मन्दरकूट, निषधकूट, हिमवत्कूट, रजतकूट, रुचककूट, सागरचित्रकूट, वज्रकूट तथा बलकूट ।

भगवन् ! नन्दनवनकूट कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत पर पूर्व दिशावर्ती सिद्धायतन के उत्तर में, ईशान कोणवर्ती उत्तम प्रासाद के दक्षिण में है । सभी कूट ५०० योजन ऊंचे हैं । नन्दनवनकूट पर मेघंकरा देवी निवास करती है । उसकी राजधनी–ईशानकोण में है । इन दिशाओं के अन्तर्गत पूर्व दिशावर्ती भवन के दक्षिण में, आग्नेय कोणवर्ती उत्तम प्रासाद के उत्तर में मन्दरकूट पर पूर्व में मेघवती राजधानी है । दक्षिण दिशावर्ती भवन के पूर्व में, आग्नेयकोणवर्ती उत्तम प्रासाद के पश्चिम में निषधकूट पर सुमेघा देवी है । दक्षिण में उसकी राजधानी है । दक्षिण दिशावर्ती भवन के पश्चिम में, –नैर्ऋत्यकोणवर्ती उत्तम प्रासाद के पूर्व में हैमवतकूट पर हेममालिनी देवी है । उसकी राजधानी दक्षिण में है । पश्चिम दिशावर्ती भवन के दक्षिण में, –नैर्ऋत्यकोणवर्ती उत्तम प्रासाद के उत्तर में रजतकूट पर सुवत्सा देवी है । पश्चिम में उसकी राजधानी है । पश्चिमदिग्वर्ती भवन के उत्तर में, वायव्यकोणवर्ती उत्तम प्रासाद के दक्षिण में रुचक कूट पर वत्समित्रा देवी निवास करती है । पश्चिम में उसकी राजधानी है ।

उत्तरदिग्वर्ती भवन के पश्चिम में, वायव्यकोणवर्ती उत्तम प्रासाद के पूर्व में सागरचित्र कूट पर वज्रसेना देवी निवास करती है । उत्तर में उसकी राजधानी है । उत्तरदिग्वर्ती भवन के पूर्व में, –ईशानकोणवर्ती उत्तम प्रासाद के पश्चिम में वज्रकूट पर बलाहका देवी निवास करती है । उसकी राजधानी उत्तर में है । बलकूट कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत के ईशान कोण में नन्दनवन के अन्तर्गत है । उसका प्रमाण, विस्तार हरिस्सहकूट सदृश है । इतना अन्तर है–उसका अधिष्ठायक बल देव है । उसकी राजधानी–ईशान कोण में है ।

सूत्र - १९८

भगवन् ! सौमनसवन कहाँ है ? गौतम ! नन्दनवन के बहुत समतल एवं रमणीय भूमिभाग से ६२५०० योजन ऊपर जाने पर है । वह चक्रवाल-विष्कम्भ से पाँच सौ योजन विस्तीर्ण है, गोल है, वलय के आकार का है । वह मन्दर पर्वत को चारों ओर से परिवेष्टित किये हुए हे । वह पर्वत से बाहर ४२७२-८/१९ योजन विस्तीर्ण है । बाहर उसकी परिधि १३५११-६/१९ योजन है । भीतरी भाग में ३२७२-८/१९ योजन विस्तीर्ण है । पर्वत के भीतरी भाग से संलग्न उसकी परिधि १०३४९-३/१९ योजन है । वह एक पद्मवरवेदिका तथा एक वनखण्ड द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ है । वह वन काले, नीले आदि पत्तों से, लताओं से आपूर्ण है । उनकी कृष्ण, नील आभा द्योतित है । वहाँ देव-देवियाँ आश्रय लेते हैं । उसमें आगे शक्रेन्द्र तथा ईशानेन्द्र के उत्तम प्रासाद हैं ।

सूत्र - १९९

भगवन् ! पण्डकवन कहाँ है ? गौतम ! सोमनसवन के बहुत समतल तथा रमणीय भूमिभाग से ३६००० योजन ऊपर जाने पर मन्दर पर्वत के शिखर पर है । चक्रवाल विष्कम्भ से वह ४९४ योजन विस्तीर्ण है, गोल है, वलय के आकार जैसा उसका आकार है । वह मन्दर पर्वत की चूलिका को चारों ओर से परिवेष्टित कर स्थित है । उसकी परिधि कुछ अधिक ३१६२ योजन है । वह एक पद्मवरवेदिका द्वारा तथा एक वनखण्ड द्वारा घिरा है । वह काले, नीले आदि पत्तों से युक्त है । देव-देवियाँ वहाँ आश्रय लेते हैं । पण्डकवन के बीचों-बीच मन्दर चूलिका है । वह चालीस योजन ऊंची है । मूल में बारह योजन, मध्य में आठ योजन तथा ऊपर चार योजन चौड़ी है । मूल में उसकी परिधि कुछ अधिक ३७ योजन, बीच में कुछ अधिक २५ योजन तथा ऊपर कुछ अधिक १२ योजन है । वह मूल में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त तथा ऊपर पतली है । उसका आकार गाय के पूँछ के सदृश है । वह सर्वथा वैडूर्य रतनमय है-वह एक पद्मवरवेदिका द्वारा चारों ओर से संपरिवृत्त है ।

ऊपर बहुत समतल एवं सुन्दर भूमिभाग है । उसके बीच में सिद्धायतन है । वह एक कोश लम्बा, आधा कोश चौड़ा, कुछ कम एक कोश ऊंचा है, सैकड़ों खम्भों पर टिका है । उस सिद्धायतन की तीन दिशाओं में तीन दरवाजे हैं । वे दरवाजे आठ योजन ऊंचे हैं । वे चार योजन चौड़े हैं । उनके प्रवेश-मार्ग भी उतने ही हैं । उस (सिद्धायतन) के सफेद, उत्तम स्वर्णमय शिखर हैं । उसके बीचों बीच एक विशाल मणिपीठिका है । वह आठ योजन लम्बी-चौड़ी है, चार योजन मोटी है, सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है । उस मणिपीठिका के ऊपर देवासन है । वह आठ योजन लम्बा-चौड़ा है, कुछ अधिक आठ योजन ऊंचा है । जिनप्रतिमा, देवच्छन्दक, धूपदान आदि का वर्णन पूर्वानुरूप है । मन्दर पर्वत की चूलिका के पूर्व में पण्डकवन में पचास योजन जाने पर एक विशाल भवन आता है। शक्रेन्द्र एवं ईशानेन्द्र वहाँ के अधिष्ठायक देव हैं ।

सूत्र - २००

भगवन् ! पण्डकवन में कितनी अभिषेक शिलाएं हैं ? गौतम ! चार, - पाण्डुशिला, पाण्डुकम्बलशिला, रक्तशिला तथा रक्तकम्बलशिला । पण्डकवन में पाण्डुशिला कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत की चूलिका के पूर्व में पण्डकवन के पूर्वी छोर पर है । वह उत्तर-दक्षिण लम्बी तथा पूर्व-पश्चिम चौड़ी है । उसका आधार अर्ध चन्द्र के आकार-जैसा है । वह ५०० योजन लम्बी, २५० योजन चौड़ी तथा ४ योजन मोटी है । वह सर्वथा स्वर्णमय है, स्वच्छ है, पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड द्वारा चारों ओर से संपरिवृत्त है । उस पाण्डुशिला के चारों ओर चारों दिशाओं में तीन-तीन सीढ़ियाँ है । उस पाण्डुशिला पर बहुत समतल एवं सुन्दर भूमिभाग है । उस पर देव आश्रय लेते हैं । उस भूमिभाग के बीच में उत्तर तथा दक्षिण में दो सिंहासन हैं । वे ५०० धनुष लम्बे-चौड़े और २५० धनुष ऊंचे हैं । वहाँ जो उत्तर दिग्वर्ती सिंहासन है, वहाँ बहुत से भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देव-देवियाँ कच्छ आदि विजयों में उत्पन्न तीर्थंकरो का अभिषेक करते हैं । वहाँ जो दक्षिण दिग्वर्ती सिंहासन है, वहाँ बहुत से भवनपति, यावत् वैमानिक देव-देवियाँ वत्स आदि विजयों में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभिषेक करते हैं ।

भगवन् ! पण्डकवन में पाण्डुकम्बलशिला कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत की चूलिका के दक्षिण में, पण्डकवन के दक्षिणी छोर पर है । उसका प्रमाण, विस्तार पूर्ववत् है । उसके भूमिभाग के बीचोंबीच एक विशाल सिंहासन है । उसका वर्णन पूर्ववत् है । वहाँ भवनपति आदि देव-देवियों द्वारा भरतक्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों का अभिषेक किया जाता है । पण्डकवन में रक्तशिला कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत की चूलिका के पश्चिम में, पण्डकवन के पश्चिमी छोर पर है । उसका प्रमाण, विस्तार पूर्ववत् है । वह सर्वथा तपनीय स्वर्णमय है, स्वच्छ है । उसके उत्तर-दक्षिण दो सिंहासन हैं । उनमें जो दक्षिणी सिंहासन है, वहाँ बहुत से भवनपति आदि देव-देवियों द्वारा पक्ष्मादिक विजयों में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभिषेक किया जाता है । जो उत्तरी सिंहासन है, वहाँ बहुत से वप्र आदि विजयों में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभिषेक किया जाता है । भगवन् ! पण्डकवन में रक्तकम्बलशिला कहाँ है ? गौतम ! मन्दर पर्वत की चूलिका के उत्तर में, पण्डकवन के उत्तरी छोर पर है । सम्पूर्णतः तपनीय स्वर्णमय तथा उज्ज्वल है । उसके बीचों-बीच एक सिंहासन है । वहाँ ऐरावतक्षेत्र में उत्पन्न तीर्थंकरों का अभिषेक किया जाता है ।

सूत्र - २०१

भगवन् ! मन्दर पर्वत के कितने काण्ड–हैं ? गौतम ! तीन, –अधस्तन, मध्यम तथा उपरितनकाण्ड । मन्दर पर्वत का अधस्तनविभाग कितने प्रकार का है ? गौतम ! चार प्रकार का, –पृथ्वी, उपल, वज्र तथा शर्करमय । उसका मध्यमविभाग चार प्रकार का है–अंकरत्नमय, स्फटिकमय, स्वर्णमय तथा रजतमय । उसका उपरितन विभाग एकाकार–है । वह सर्वथा जम्बूनद–स्वर्णमय है । मन्दर पर्वत का अधस्तन १००० योजन ऊंचा है । मध्यम विभाग ६३००० योजन ऊंचा है । उपरितन विभाग ३६००० योजन ऊंचा है । यों उसकी ऊंचाई का कुल परिमाण १००००० योजन है ।

सूत्र – २०२-२०४

भगवन् ! मन्दर पर्वत के कितने नाम बतलाये हैं ? गौतम ! सोलह– मन्दर, मेरु, मनोरम, सुदर्शन, स्वयंप्रभ, गिरिराज, रत्नोच्चय, शिलोच्चय, लोकमध्य, लोकनाभि । अच्छ, सूर्यावर्त, सूर्यावरण, उत्तम, दिगादि तथा अवतंस ।

सूत्र - २०५

भगवन् ! वह मन्दर पर्वत क्यों कहलाता है ? गौतम ! मन्दर पर्वत पर मन्दर नामक परम ऋद्धिशाली, पल्योपम के आयुष्यवाला देव निवास करता है, अथवा यह नाम शाश्वत है ।

सूत्र – २०६, २०७

भगवन् ! जम्बूद्वीप का नीलवान् वर्षधर पर्वत कहाँ है ? गौतम ! महाविदेह क्षेत्र के उत्तर में, रम्यक क्षेत्र के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में है । निषध पर्वत के समान है । इतना अन्तर है–दक्षिण में इसकी जीवा है, उत्तर में धनुपृष्ठभाग है । उसमें केसरी द्रह है । दक्षिण में उससे शीता महानदी निकलती है । वह उत्तरकुरु में बहती है । आगे यमक पर्वत तथा नीलवान्, उत्तरकुरु, चन्द्र, ऐरावत एवं माल्यवान् द्रह को दो भागों में बाँटती है । उसमें ८४०० नदियाँ मिलती हैं । उनसे आपूर्ण होकर वह भद्रशाल वन में बहती है । जब मन्दर पर्वत दो योजन दूर रहता है, तब वह पूर्व की ओर झुड़ती है, नीचे माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत को विदीर्ण –कर मन्दर पर्वत के पूर्व में पूर्व विदेह क्षेत्र को दो भागों में बाँटती है । एक-एक चक्रवर्तीविजय में उसमें अठ्ठाईस-अठ्ठाईस हजार नदियाँ मिलती हैं । यों कुल ५३२००० नदियों से आपूर्ण वह नीचे विजयद्वार की जगती को विदीर्ण कर पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है । नारीकान्ता नदी उत्तराभिमुख होती हुई बहती है । जब गन्धापाति वृत्तवैताढ्य पर्वत एक योजन दूर रह जाता है, तब वह वहाँ से पश्चिम की ओर मुड़ जाती है । नीलवान् वर्षधर पर्वत के नौ कूट हैं– यथा–

सिद्धायतनकूट, नीलवत्कूट, पूर्वविदेहकूट, शीताकूट, कीर्तिकूट, नारीकान्ताकूट, अपरविदेहकूट, रम्यक-

कूट, तथा उपदर्शनकूट ।

सूत्र - २०८

ये सब कूट पाँच सौ योजन ऊंचे हैं । इनके अधिष्ठातृ देवों की राजधानियाँ मेरु के उत्तर में है । भगवन् ! नीलवान् वर्षधर पर्वत इस नाम से क्यों पुकारा जाता है ? गौतम ! वहाँ नीलवर्णयुक्त, नील आभावाला परम ऋद्धिशाली नीलवान् देव निवास करता है, नीलवान् वर्षधर पर्वत सर्वथा वैडूर्यरत्नमय–है । अथवा उसका यह नाम नित्य है– ।

सूत्र - २०९

भगवन् ! जम्बूद्वीप का रम्यक क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! नीलवान् वर्षधर पर्वत के उत्तर में, रुक्मी पर्वत के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में है । उसकी जीवा दक्षिण में है, धनुपृष्ठभाग उत्तर में है । बाकी वर्णन हरिवर्ष सदृश है । रम्यक् क्षेत्र में गन्धापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत कहाँ है ? गौतम ! नरकान्ता नदी के पश्चिम में, नारीकान्ता नदी के पूर्व में रम्यक क्षेत्र के बीचों बीच है । वह विकटापाती वृत्तवैताढ्य समान है । वहाँ परम ऋद्धिशाली पल्योपम आयुष्य युक्त पद्म देव निवास करता है । उसकी राजधानी उत्तर में है । वह क्षेत्र रम्यकवर्ष क्यों कहलाता है ? गौतम ! रम्यकवर्ष सुन्दर, रमणीय है एवं उसमें रम्यक नामक देव निवास करता है, अतः वह रम्यकवर्ष कहा जाता है ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में रुक्मी वर्षधर पर्वत कहाँ है ? गौतम ! रम्यक वर्ष के उत्तर में, हैरण्यवत वर्ष के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में, पश्चिम लवणसमुद्र के पूर्व में है । वह पूर्व-पश्चिम लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण चौड़ा है । वह महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के सदृश है । इतना अन्तर है–उसकी जीवा दक्षिण में है । उसका धनुपृष्ठभाग उत्तर में है । वहाँ महापुण्डरीक द्रह है । उसके दक्षिण तोरण से नरकान्ता नदी निकलती है । पूर्वी लवणसमुद्र में मिल जाती है । रूप्यकूला नामक नदी महापुण्डरीक द्रह के उत्तरी तोरण से निकलती है । वह पश्चिमी लवणसमुद्र में मिल जाती है । रुक्मी वर्षधर पर्वत के कितने कूट हैं ? गौतम ! आठ कूट हैं । यथा–

सूत्र - २१०

सिद्धायतनकूट, रुक्मीकूट, रम्यककूट, नरकान्ताकूट, बुद्धिकूट, रूप्यकूलाकूट, हैरण्यवतकूट तथा मणिकांचनकूट ।

सूत्र - २११

ये सभी कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे हैं । उत्तर में इनकी राजधानियाँ है । भगवन् ! वह रुक्मी वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है ? गौतम ! रुक्मी वर्षधर पर्वत रजत-निष्पन्न रजत की ज्यों आभामय एवं सर्वथा रजतमय है । वहाँ पल्योपमस्थितिक रुक्मी नामक देव निवास करता है, इसलिए वह रुक्मी वर्षधर पर्वत कहा जाता है । भगवन् ! जम्बूद्वीप का हैरण्यवत क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! रुक्मी वर्षधर पर्वत के उत्तर में, शिखरी वर्षधर पर्वत के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में है । उसकी जीवा दक्षिण में है, धनुपृष्ठभाग उत्तर में है । बाकी वर्णन हैमवत-सदृश है ।

हैरण्यवत क्षेत्र में माल्यवत्पर्याय वृत्तवैताढ्य पर्वत कहाँ है ? गौतम ! सुवर्णकूला महानदी के पश्चिम में, रूप्यकूला महानदी के पूर्व में हैरण्यवत क्षेत्र के बीचोंबीच है । शब्दापाती वृत्त वैताढ्य के समान माल्यवत्पर्याय है । वहाँ परम ऋद्धिशाली, एक पल्योपम आयुष्ययुक्त प्रभास देव निवास करता है । इन कारणों से वह माल्यवत्पर्याय वृत्त वैताढ्य कहा जाता है । राजधानी उत्तर में है । हैरण्यवत क्षेत्र नाम किस कारण कहा जाता है ? गौतम ! हैरण्यवत क्षेत्र रुक्मी तथा शिखरी वर्षधर पर्वतों से दो ओर से घिरा हुआ है । वह नित्य हिरण्य–देता है, नित्य स्वर्ण प्रकाशित करता है, जो स्वर्णमय शिलापट्टक आदि के रूप में वहाँ यौगलिक मनुष्यों के शय्या, आसन आदि उपकरणों के रूप में उपयोग में आता है, वहाँ हैरण्यवत देव निवास करता है, इसलिए वह हैरण्यवत क्षेत्र कहा

जाता है ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् शिखरी वर्षधर कहाँ है ? गौतम ! हैरण्यवत के उत्तर में, ऐरावत के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में शिखरी वर्षधर पर्वत है । उसकी जीवा दक्षिण में है । उसका धनुपृष्ठभाग उत्तर में है बाकी वर्णन चुल्ल हिमवान् के अनुरूप है । उस पर पुण्डरीकद्रह है । उसके दक्षिण तोरण से सुवर्णकूला महानदी निकलती है । वह रोहितांशा की ज्यों पूर्वी लवणसमुद्र में मिलती है । रक्ता महानदी पूर्व में तथा रक्तवती पश्चिम में बहती है । शिखरी वर्षधर पर्वत के कितने कूट हैं ? गौतम ! ग्यारह – सिद्धायतनकूट, शिखरीकूट, हैरण्यवतकूट, सुवर्णकूलाकूट, सुरादेवीकूट, रक्ताकूट, लक्ष्मीकूट, रक्तावतीकूट, इलादेवीकूट, ऐरावतकूट, तिगिंच्छकूट । ये सभी कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे हैं । इनके अधिष्ठातृ देवों की राजधानियाँ उत्तर में हैं । यह पर्वत शिखरी वर्षधर पर्वत क्यों कहा जाता है ? गौतम ! शिखरी वर्षधर पर्वत पर बहुत से कूट उसी के-से आकार में अवस्थित हैं, वहाँ शिखरी देव निवास करता है, इस कारण शिखरी वर्षधर पर्वत कहा जाता है ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् ऐरावत क्षेत्र कहाँ है ? गौतम ! शिखरी वर्षधर पर्वत के उत्तर में, उत्तरी लवणसमुद्र के दक्षिण में, पूर्वी लवणसमुद्र के पश्चिम में तथा पश्चिमी लवणसमुद्र के पूर्व में है । वह स्थाणु-बहुल है, कंटकबहुल है, इत्यादि वर्णन भरतक्षेत्र की ज्यों है । वहाँ ऐरावत नामक चक्रवर्ती होता है, ऐरावत नामक अधिष्ठातृ –देव हैं, इस कारण वह ऐरावत क्षेत्र कहा जाता है ।

वक्षस्कार-४-का मुनि दीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

वक्षस्कार-५- 'ज्योतिष्क'

सूत्र - २१२

जब एक एक-किसी भी चक्रवर्ती-विजय में तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं, उस काल–उस समय–अधोलोकवास्तव्या, महत्तरिका–आठ दिक्कुमारिकाएं, जो अपने कूटों, भवनों और प्रासादों में अपने ४००० सामानिक देवों, सपरिवार चार महत्तरिकाओं, सात सेनाओं, सात सेनापति देवों, १६००० आत्मरक्षक देवों तथा अन्य अनेक भवनपति एवं वानव्यन्तर देवदेवियों से संपरिवृत्त, नृत्य, गीत, पटुता पूर्वक बजाये जाते वीणा, झींझ, ढोल एवं मृदंग की बादल जैसी गंभीर तथा मधुर ध्वनि के बीच विपुल सुखोपभोग में अभिरत होती है ।

सूत्र - २१३

वह आठ दिक्कुमारिका है–भोगंकरा, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, पुष्पमाला और अनिन्दिता ।

सूत्र - २१४

जब वे अधोलोकवासिनी आठ दिक्कुमारिकाएं अपने आसनों को चलित होते देखती हैं, वे अपने अवधिज्ञान का प्रयोग करती हैं । तीर्थंकर को देखती हैं । कहती हैं–जम्बूद्वीप में तीर्थंकर उत्पन्न हुए हैं । अतीत, प्रत्युत्पन्न तथा अनागत–अधोलोकवास्तव्या हम आठ महत्तरिका दिशाकुमारियों का यह परंपरागत आचार है कि हम भगवान् तीर्थंकर का जन्म-महोत्सव मनाएं, अतः हम चलें, भगवान् का जन्मोत्सव आयोजित करें । यों कहकर आभियोगिक देवों को कहती हैं–देवानुप्रियों ! सैकड़ों खंभों पर अवस्थित सुन्दर यान-विमान की विकुर्वणा करो–वे आभियोगिक देव सैकड़ों खंभों पर अवस्थित यान-विमानों की रचना करते हैं, यह जानकर वे अधोलोकवास्तव्या गौरवशीला दिक्कुमारियाँ हर्षित एवं परितुष्ट होती हैं । उनमें से प्रत्येक अपने-अपने ४००० सामानिक देवों यावत् तथा अन्य अनेक देव-देवियों के साथ दिव्य यान-विमानों पर आरूढ होती हैं । सब प्रकार की ऋद्धि एवं द्युति से समायुक्त, बादल की ज्यों घहराते-गूंजते मृदंग, ढोल आदि वाद्यों की ध्वनि के साथ उत्कृष्ट दिव्य गति द्वारा जहाँ तीर्थंकर का जन्मभवन होता है, वहाँ आती हैं । दिव्य विमानों में अवस्थित वे भगवान् तीर्थंकर के जन्मभवन की तीन बार प्रदक्षिणा करती हैं । ईशान कोण में अपने विमानों को, जब वे भूतल से चार अंगुल ऊंचे रह जाते हैं, ठहराती हैं । ४००० सामानिक देवों यावत् देव-देवियों से संपरिवृत्त वे दिव्य विमानों से नीचे उतरती हैं ।

सब प्रकारकी समृद्धि लिए, जहाँ तीर्थंकर तथा उनकी माता होती है, वहाँ आती हैं । तीन प्रदक्षिणाएं करती हैं, हाथ जोड़े, अंजलि बाँधे, तीर्थंकरमाता से कहती हैं–'रत्नकुक्षिधारिके, जगत्प्रदीपदायिके, हम आपको नमस्कार करती हैं । समस्त जगत् के लिए मंगलमय, नेत्रस्वरूप, मूर्त्त, समस्त जगत् के प्राणियों के लिए वात्सल्यमय, हितप्रद मार्ग उपदिष्ट करनेवाली, विभु, जिन, ज्ञानी, नायक, बुद्ध, बोधक, योग-क्षेमकारी, निर्मम, उत्तम कुल, क्षत्रिय-जाति में उद्भूत, लोकोत्तम की आप जननी हैं । आप धन्य, पुण्य एवं कृतार्थ–हैं । अधोलोक-निवासिनी हम आठ प्रमुख दिशाकुमारिकाएं भगवान् तीर्थंकर का जन्ममहोत्सव मनायेंगी अतः आप भयभीत मत होना ।

यों कहकर वे ईशान-कोण में जाती हैं । वैक्रिय समुद्घात द्वारा अपने आत्म-प्रदेशों को शरीर से बाहर निकालती हैं । उन्हें संख्यात योजन तक दण्डाकार परिणत करती हैं । फिर दूसरी बार वैक्रिय समुद्घात करती हैं, संवर्तक वायु की विकुर्वणा करती हैं । उस शिव, मृदुल, अनुद्धूत, भूमितल को निर्मल, स्वच्छ करनेवाले, मनोहर, पुष्पों की सुगन्ध से सुवासित, तिर्यक्, वायु द्वारा भगवान् तीर्थंकर के योजन परिमित परिमण्डल को–चारों ओर से सम्मार्जित करती हैं । जैसे एक तरुण, बलिष्ठ, युगवान्, युवा, अल्पातंक, नीरोग, स्थिराग्रहस्त, दृढपाणिपाद, पृष्ठान्तोरुपरिणत्, अहीनांग, जिसके कंधे गठीले, वृत्त–एवं वलित–हुए, हृदय की ओर झुके हुए मांसल एवं सुपुष्ट हो, चमड़े के बन्धनों के युक्त मुद्गर आदि उपकरण ज्यों जिनके अंग मजबूत हों, दोनों भुजाएं दो एक-जैसे ताड़

वृक्षों की ज्यों हों, जो गर्त आदि लांघने में, कूदने में, तेज चलने में, प्रमर्दन से–कड़ी वस्तु को चूर-चूर कर डालने में सक्षम हों, जो छेक, दक्ष, प्रष्ठ, कुशल, मेघावी, निपुण, ऐसा कर्मकर लकड़ा खजूर के पत्तों से बनी बड़ी झाड़ू को, दण्डयुक्त लेकर राजमहल के आंग, राजान्तःपुर, देव-मन्दिर, सभा, प्रपा, जलस्थान, आराम, उद्यान, बाग को सब ओर से झाड़ कर साफ कर देता है, उसी प्रकार वे दिक्कुमारियाँ संवर्तक वायु द्वारा तिनके, पत्ते, लकड़ियाँ, कचरा, अशुचि, अचोक्ष, पूतिक, दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को उठाकर, परिमण्डल से बाहर एकान्त में डाल देती हैं–। फिर वे दिक्कुमारिकाएं भगवान् तीर्थंकर तथा उनकी माता के पास आती हैं । उनसे न अधिक समीप तथा न अधिक दूर अवस्थित हो आगान और परिगान–करती हैं ।

सूत्र - २१५

उस काल, उस समय, ऊर्ध्वलोकवास्तव्या–आठ दिक्कुमारिकाओं के, जो अपने कूटों पर, अपने भवनों में, अपने उत्तम प्रासादों में अपने चार हजार सामानिक देवों, यावत् अनेक भवनपति एवं वानव्यन्तर देव-देवियों से संपरिवृत्त, नृत्य, गीत एवं तुमुल वाद्य-ध्वनि के बीच विपुल सुखोपभोग में अभिरत होती हैं ।

सूत्र - २१६

यह दिक्कुमारिकाएं है–मेघंकरा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, सुवत्सा, वत्समित्रा, वारिषेणा तथा बलाहका ।

सूत्र - २१७

तब उन देवी के आसन चलित होते हैं, शेष पूर्ववत् । वे दिक्कुमारिकाएं भगवान् तीर्थंकर की माता से कहती हैं–देवानुप्रिये ! हम उर्ध्वलोकवासिनी दिक्कुमारिकाएं भगवान् का जन्म-महोत्सव मनायेंगी । अतः आप भयभीत मत होना । यों कहकर वे–ईशान कोण में चली जाती हैं । यावत् वे आकाश में बादलों की विकुर्वणा करती हैं, वे (बादल) शीघ्र ही गरजते हैं, उनमें बिजलियाँ चमकती हैं तथा वे तीर्थंकर जन्म-भवन के चारों ओर योजन-परिमित परिमंडल मिट्टी को आसिक्त, शुष्क रखते हुए मन्द गति से, धूल, मिट्टी जम जाए, इतने से धीमे वेग से उत्तम स्पर्शयुक्त दिव्य सुगन्धयुक्त झिरमिर-झिरमिर जल बरसाते हैं । उसमें धूलनिहत, नष्ट, भ्रष्ट, प्रशान्त तथा उपशान्त हो जाती हैं । ऐसा कर वे बादल शीघ्र ही उपरत हो जाते हैं ।

फिर वे ऊर्ध्वलोकवास्तव्या आठ दिक्कुमारिकाएं पुष्पों के बादलों की विकुर्वणा करती हैं । उन विकुर्वित फूलों के बादल जोर-जोर से गरजते हैं, उसी प्रकार, कमल, वेला, गुलाब आदि देदीप्यमान, पंचरंगे, वृत्तसहित फूलों की इतनी विपुल वृष्टि करते हैं कि उनका घुटने-घुटने तक ऊंचा ढेर हो जाता है । फिर वे काले अगर, उत्तम कुन्दरुक, लोबान तथा धूप की गमगमाती महक से वहाँ के वातावरण को बड़ा मनोज्ञ, उत्कृष्ट-सुरभिमय बना देती है । सुगंधित धुएं की प्रचुरता से वहाँ गोल-गोल धूममय छल्ले से बनने लगते हैं । यों वे दिक्कुमारिकाएं उस भूभाग को सुरवर–के अभिगमन योग्य बना देती हैं । ऐसा कर वे भगवान् तीर्थंकर एवं उनकी माँ के पास आती हैं । वहाँ आकर आगान, परिगान करती हैं ।

सूत्र – २१८, २१९

उस काल, उस समय पूर्वदिग्वर्ती रुचककूट-निवासिनी आठ दिक्कुमारिकाएं अपने-अपने कूटों पर सुखोपभोग करती हुई विहार करती हैं । उनके नाम इस प्रकार है– नन्दोत्तरा, नन्दा, आनन्दा, नन्दिवर्धना, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती तथा अपराजिता ।

सूत्र – २२०, २२१

अवशिष्ट वर्णन पूर्ववत् है । देवानुप्रिये ! पूर्वदिशावर्ती रुचककूट निवासिनी हम आठ दिशाकुमारिकाएं भगवान् तीर्थंकर का जन्म-महोत्सव मनायेंगी । अतः आप भयभीत मत होना ।' यों कहकर तीर्थंकर तथा उनकी

माता के शृंगार, शोभा, सज्जा आदि विलोकन में उपयोगी, प्रयोजनीय दर्पण हाथ में लिये वे भगवान् तीर्थंकर एवं उनकी माता के पूर्व में आगान, परिगान करने लगती हैं । उस काल, उस समय दक्षिण रुचककूट-निवासिनी आठ दिक्कुमारिकाएं यावत् विहरती हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं– समाहारा, सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, शेषवती, चित्रगुप्ता तथा वसुन्धरा ।

सूत्र – २२२, २२३

वे भगवान् तीर्थंकर की माता से कहती हैं–'आप भयभीत न हों ।' यों कहकर वे भगवान् तीर्थंकर एवं उनकी माता के स्नपन में प्रयोजनीय सजल कलश हाथ में लिए दक्षिण में आगान, परिगान करने लगती हैं । उस काल, उस समय पश्चिम रूचक कूट-निवासिनी आठ दिक्कुमारिकाएं हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं– इलादेवी, सुरादेवी, पृथिवी, पद्मावती, एकनासा, नवमिका, भद्रा तथा सीता ।

सूत्र – २२४, २२५

वे भगवान् तीर्थंकर की माता को सम्बोधित कर कहती हैं–'आप भयभीत न हो ।' यों कहकर वे हाथों में तालवृन्त–लिये हुए आगान, परिगान करती हैं । उस काल, उस समय उत्तर रुचककूट-निवासिनी आठ दिक्कुमारि-काएं हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं– अलंबुसा, मिश्रकेशी, पुण्डरीका, वारुणी, हासा, सर्वप्रभा, श्री तथा ह्री ।

सूत्र - २२६

वे भगवान् तीर्थंकर तथा उनकी माता को प्रणाम कर उनके उत्तर में चँवर हाथ में लिए आगान-परिगान करती हैं । उस काल, उस समय रुचककूट के मस्तक पर–चारों विदिशाओं में निवास करने वाली चार दिक्कुमारि-काएं हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं–चित्रा, चित्रकनका, श्वेता तथा सौदामिनी । वे आकर तीर्थंकर तथा उनकी माता के चारों विदिशाओं में अपने हाथों में दीपक लिये आगान-परिगान करती हैं । उस काल, उस समय मध्य रुचककूट पर निवास करनेवाली चार दिक्कुमारिकाएं हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं–रूपा, रूपासिका, सुरूपा तथा रूपकावती । वे उपस्थित होकर तीर्थंकर के नाभिनाल को चार अंगुल छोड़कर काटती हैं । जमीनमें गड्ढा खोदती हैं नाभि-नाल को उनमें गाड़ देती हैं, उस गड्ढे को रत्नों से, हीरों से भर देती हैं । गड्ढा भरकर मिट्टी जमा देती हैं, उन कदलीगृहों के बीचमें तीन चतुःशालाओं–की तथा उन भवनों के बीचोंबीच तीन सिंहासनो की विकुर्वणा करती हैं ।

फिर वे मध्यरुचकवासिनी महत्तरा दिक्कुमारिकाएं भगवान् तीर्थंकर तथा उसकी माता के पास आती हैं । तीर्थंकर को अपनी हथेलियों के संपुट द्वारा उठाती हैं और तीर्थंकर की माता को भुजाओं द्वारा उठाती हैं । दक्षिण-दिग्वर्ती कदलीगृह में तीर्थंकर एवं उनकी माता को सिंहासन पर बिठाती हैं । उनके शरीर पर शतपाक एवं सहस्र पाक तैल द्वारा अभ्यंगन करती हैं । फिर सुगन्धित गन्धाटक से–तैयार किये गये उबटन से–तैल की चिकनाई दूर करती हैं । वे भगवान् तीर्थंकर को पूर्वदिशावर्ती कदलीगृह में लाकर तीर्थंकर एवं उनकी माता को सिंहासन पर बिठाती हैं । गन्धोदक, पुष्पोदक तथा शुद्ध जल के द्वारा स्नान कराती हैं । सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित करती हैं । तत्पश्चात् भगवान् तीर्थंकर और उनकी माता को उत्तरदिशावर्ती कदलीगृह में लाती हैं । उन्हें सिंहासन पर बिठाकर अपने आभियोगिक देवों को बुलाकर कहती हैं–देवानुप्रियों ! चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत से गोशीर्ष-चन्दन-काष्ठ लाओ ।'

वे आभियोगिक देव हर्षित एवं परितुष्ट होते हैं, शीघ्र ही चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत से ताजा गोशीर्ष चन्दन ले आते हैं । तब वे मध्य रुचकनिवासिनी दिक्कुमारिकाएं शरक, अग्नि-उत्पादक काष्ठ-विशेष तैयार करती हैं । उसके साथ अरणि काष्ठ को संयोजित करती हैं । अग्नि उत्पन्न करती हैं । उद्दीप्त करती हैं । उसमें गोशीर्ष चन्दन के टुकड़े डालती हैं । अग्नि को प्रज्वलित कर उसमें समिधा डालती हैं, हवन करती हैं, भूतिकर्म करती हैं–वे डाकिनी, शाकिनी आदि से, दृष्टिदोष रक्षा हेतु भगवान् तीर्थंकर तथा उनकी माता के भस्म की पोटलियाँ बाँधती हैं। फिर नानाविध मणि-रत्नांकित दो पाषाण-गोलक लेकर वे भगवान् तीर्थंकर के कर्णमूल में उन्हें परस्पर ताडित कर

बजाती हैं, जिससे बाललीलावश अन्यत्र आसक्त भगवान् तीर्थंकर उन द्वारा वक्ष्यमाण आशीर्वचन सूनने में दत्तावधान हो सकें । वे आशीर्वाद देती हैं– भगवन् ! आप पर्वत के सदृश दीर्घायु हों ।' फिर मध्य रुचकनिवासिनी वे चार महत्तरा दिक्कुमारिकाएं भगवान् को तथा भगवान् की माता को तीर्थंकर के जन्म-भवन में ले आती हैं । भगवन् की माता को वे शय्या पर सूला देती हैं । शय्या पर सूलाकर भगवान् को माता की बगल में रख देती हैं–। फिर वे मंगल-गीतों का आगान, परिगान करती हैं ।

सूत्र - २२७

उस काल, उस समय शक्र नामक देवेन्द्र, देवराज, वज्रपाणि, पुरन्दर, शतक्रतु, सहस्राक्ष, मघवा, पाक-शासन, दक्षिणार्धलोकाधिपति, बत्तीस लाख विमानों के स्वामी, ऐरावत हाथी पर सवारी करनेवाले, सुरेन्द्र, निर्मल वस्त्रधारी, मालायुक्त मुकुट धारण किये हुए, उज्ज्वल स्वर्ण के सुन्दर, चित्रित चंचल–कुण्डलों से जिसके कपोल सुशोभित थे, देदीप्यमान शरीरधारी, परम ऋद्धिशाली, परम द्युतिशाली, महान् बली, महान् यशस्वी, परम प्रभावक, अत्यन्त सुखी, सुधर्मा सभा में इन्द्रासन पर स्थित होते हुए बत्तीस लाख विमानों, ८४००० सामानिक देवों, तेतीस गुरुस्थानीय त्रायस्त्रिंश देवों, चार लोकपालों परिवार सहित आठ अग्रमहिषियों, तीन परिषदों, सात अनीकों, सात अनीकाधिपतियों, ३३६००० अंगरक्षक देवों तथा सौधर्मकल्पवासी अन्य बहुत से देवों तथा देवियों का आधिपत्य, यावत् सैनापत्य करते हुए, इन सबका पालन करते हुए, नृत्य, गीत, कलाकौशल के साथ बजाये जाते वीणा, झांझ, ढोल एवं मृदंग की बादल जैसी गंभीर तथा मधुर ध्वनि के बीच दिव्य भोगों का आनन्द ले रहा था ।

सहसा देवेन्द्र, देवराज शक्र का आसन चलित होता है, शक्र अवधिज्ञान द्वारा भगवान् को देखता है । वह हृष्ट तथा परितुष्ट होता है । उसका हृदय खिल उठता है । उसके रोंगटें खड़े हो जाते हैं–मुख तथा नेत्र विकसित हो उठते हैं । हर्षातिरेकजनित स्फूर्तावेगवश उसके हाथों के उत्तम कटक, त्रुटित, पट्टिका, केयूर एवं मुकुट सहसा कम्पित हो उठते हैं । उसका वक्षःस्थल हारों से सुशोभित होता है । गले में लम्बी माला लटकती है, आभूषण झूलते हैं । (इस प्रकार सुसज्जित) देवराज शक्र आदरपूर्वक शीघ्र सिंहासन से उठता है । पादपीठ से नीचे उतरकर वैडूर्य, रिष्ठ तथा अंजन रत्नों से निपुणतापूर्वक कलात्मक रूप में निर्मित, देदीप्यमान, मणि-मण्डित पादुकाएं उतारता है । अखण्ड वस्त्र का उत्तरासंग करता है । हाथ जोड़ता है, जिस ओर तीर्थंकर थे उस दिशा की ओर सात, आठ कदम आगे जाता है । बायें घुटने को सिकोड़ता है, दाहिने घुटने को भूमि पर टिकाता है, तीन बार अपना मस्तक भूमि से लगाता है । फिर हाथ जोड़ता है, और कहता है–

अर्हत्, भगवान्, आदिकर, तीर्थंकर, स्वयंसंबुद्ध, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषवरपुण्डरीक, पुरुषवरगन्ध-हस्ती, लोकोत्तम, लोकनाथ, लोकहितकर, लोकप्रदीप, लोकप्रद्योतकर, अभयदायक, चक्षुदायक, मार्गदायक, शरण दायक, जीवनदायक, बोधिदायक, धर्मदायक, धर्मदेशक, धर्मनायक, धर्मसारथि, दीप-त्राण-शरण, गति एवं प्रतिष्ठा स्वरूप, प्रतिघात, बाधा या आवरण रहित उत्तम ज्ञान-दर्शन धारक, व्यावृत्तछद्मा–जिन, ज्ञायक, तीर्ण, तारक, बुद्ध, बोधक, मुक्त, मोचक, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव, अचल, निरुद्रव, अनन्त, अक्षय, अबाध, अपुनरावृत्ति, सिद्धावस्था को प्राप्त, भयातीत जिनेश्वरों को नमस्कार हो । आदिकर, सिद्धावस्था पानेके इच्छुक भगवान् तीर्थंकर को नमस्कार हो

यहाँ स्थित मैं वहाँ–में स्थित भगवान् तीर्थंकर को वन्दन करता हूँ । वहाँ स्थित भगवान् यहाँ स्थित मुझको देखें । ऐसा कहकर वह भगवान् को वन्दन करता है, नमन करता है । पूर्व की ओर मुँह करके सिंहासन पर बैठ जाता है । तब देवेन्द्र, देवराज शक्र के मन में ऐसा संकल्प, भाव उत्पन्न होता है–जम्बूद्वीप में भगवान् उत्पन्न हुए हैं। देवेन्द्रों, देवराजों, शक्रों का यह परंपरागत आचार है कि वे तीर्थंकरों का जन्म-महोत्सव मनाएं । इसलिए मैं भी जाऊं, भगवान् तीर्थंकर का जन्मोत्सव समायोजित करूँ । देवराज शक्र ऐसा विचार करता है, निश्चय करता है । अपनी पदातिसेना के अधिपति हरिनिगमेषी देव को बुलाकर कहता है–'देवानुप्रिय ! शीघ्र ही सुधर्मा सभा में मेघसमूह के गर्जन के सदृश गंभीर तथा अति मधुर शब्दयुक्त, एक योजन वर्तुलाकार, सुन्दर स्वर युक्त सुघोषा

नामक घण्टा को तीन बार बजाते हुए, जोर जोर से उद्घोषणा करते हुए कहो–वे जम्बूद्वीप में भगवान् का जन्म-महोत्सव मनाने जा रहे हैं । आप सभी अपनी सर्वविध ऋद्धि, द्युति, बल, समुदय, आदर विभूति, विभूषा, नाटक-नृत्य-गीतादि के साथ, किसी भी बाधा की परवाह न करते हुए सब प्रकार के पुष्पों, सुरभित पदार्थों, मालाओं तथा आभूषणों से विभूषित होकर दिव्य, तुमुल ध्वनि के साथ महती ऋद्धि यावत् उच्च, दिव्य वाद्यध्वनिपूर्वक अपने-अपने परिवार सहित अपने-अपने विमानों पर सवार होकर शक्र के समक्ष उपस्थित हों ।'

देवेन्द्र, देवराज शक्र द्वारा इस प्रकार आदेश दिये जाने पर हरिणेगमेषी देव हर्षित होता है, परितुष्ट होता है, आदेश स्वीकार कर शक्र के पास से निकलता है । सुघोषा घण्टा को तीन बार बजाता है । मेघसमूह के गर्जन की तरह गंभीर तथा अत्यन्त मधुर ध्वनि से युक्त, एक योजन वर्तुलाकार सुघोषा घण्टा के तीन बार बजाये जाने पर सौधर्म कल्प में एक कम बत्तीस विमानों में एक कम बत्तीस लाख घण्टाएं एक साथ तुमुल शब्द करने लगती हैं । सौधर्मकल्प के प्रासादों एवं विमानों के निष्कुट, कोनों में आपतित शब्द-वर्गणा के पुद्गल लाखों घण्टा-प्रतिध्वनियों के रूप में प्रकट होने लगते हैं । सौधर्मकल्प सुन्दर स्वरयुक्त घण्टाओं की विपुल ध्वनि से आपूर्ण हो जाता है । वहाँ निवास करनेवाले बहुत से वैमानिक देव, देवियाँ जो रतिसुख में प्रसक्त तथा प्रमत्त रहते हैं, मूर्च्छित रहते हैं, शीघ्र जागरित होते हैं–घोषणा सूनने हेतु उनमें कुतूहल उत्पन्न होता है, उसे सूनने में वे दत्तचित्त हो जाते हैं। जब घण्टा ध्वनि निःशान्त, प्रशान्त होता है, तब हरिणेगमेषी देव स्थान-स्थान पर जोर-जोर से उद्घोषणा करता कहता है–

सौधर्मकल्पवासी बहुत से देवों ! देवियों ! आप सौधर्मकल्पपति का यह हितकर एवं सुखप्रद वचन सूनें, आप उन के समक्ष उपस्थित हों । यह सुनकर उन देवों, देवियों के हृदय हर्षित एवं परितुष्ट होते हैं । उनमें से कतिपय भगवान् तीर्थंकर के वन्दन–हेतु, कतिपय पूजन हेतु, कतिपय सत्कार, सम्मान, दर्शन की उत्सकुता, भक्ति-अनुरागवश तथा कतिपय परंपरानुगत आचार मानकर वहाँ उपस्थित हो जाते हैं । देवेन्द्र, देवराज शक्र उन वैमानिक देव-देवियों को अविलम्ब अपने समक्ष उपस्थित देखता है । अपने पालक नामक आभियोगिक देवों को बुलाकर कहता है–देवानुप्रिय ! सैकड़ों खंभों पर अवस्थित, क्रीडोद्यत पुत्तलियों से कलित, ईहामृग-वृक, वृषभ, अश्व आदि के चित्रांकन से युक्त, खंभों पर उत्कीर्ण वज्ररत्नमयी वेदिका द्वारा सुन्दर प्रतीयमान, संचरणशील सहजात पुरुष-युगल की ज्यों प्रतीत होते चित्रांकित विद्याधरों से समायुक्त, अपने पर जड़ी सहस्रो मणियों तथा रत्नों की प्रभा से सुशोभित, हजारों रूपकों–अतीव देदीप्यमान, नेत्रों में समा जानेवाले, सुखमय स्पर्शयुक्त, सश्रीक, घण्टियों की मधुर, मनोहर ध्वनि से युक्त, सुखमय, कमनीय, दर्शनीय, देदीप्यमान मणिरत्नमय घण्टिकाओं के समूह से परिव्याप्त, १००० योजन विस्तीर्ण, ५०० योजन ऊंचे, शीघ्रगामी, त्वरितगामी, अतिशय वेगयुक्त एवं प्रस्तुत कार्य-निर्वहण में सक्षम दिव्य विमान की विकुर्वणा करो ।

सूत्र - २२८

देवेन्द्र, देवराज शक्र द्वारा यों कहे जाने पर–पालक नामक देव हर्षित एवं परितुष्ट होता है । वह वैक्रिय समुद्घात द्वारा यान-विमान की विकुर्वणा करता है । उस यान-विमान के भीतर बहुत समतल एवं रमणीय भूमि-भाग है । वह आलिंग-पुष्कर तथा शंकुसदृश बड़े-बड़े कीले ठोक कर, खींचकर समान किये गये चीते आदि के चर्म जैसा समतल और सुन्दर है । वह भूमिभाग आवर्त, प्रत्यावर्त, श्रेणि, प्रश्रेणि, स्वस्तिक, वर्द्धमान, पुष्यमाणव, मत्स्य के अंडे, मगर के अंडे, जार, मार, पुष्पावलि, कमलपत्र, सागर-तरंग वासन्तीलता एवं पद्मलता के चित्रांकन से युक्त, आभायुक्त, प्रभायुक्त, रश्मियुक्त, उद्योतयुक्त नानाविध पंचरंगी मणियों से सुशोभित हैं । उस भूमिभाग के ठीक बीच में एक प्रेक्षागृह-मण्डप है । वह सैकड़ों खंभों पर टिका है, उस प्रेक्षामण्डप के ऊपर का भाग पद्मलता आदि के चित्रण से युक्त है, सर्वथा तपनीय–स्वर्णमय है, यावत् प्रतिरूप है ।

उस मण्डप के भूमिभाग के बीचोंबीच एक मणिपीठिका है । वह आठ योजन लम्बी-चौड़ी तथा चार योजन मोटी है, सर्वथा मणिमय है । उसके ऊपर एक विशाल सिंहासन है । उसके ऊपर एक सर्वरत्नमय, बृहत् विजयदूष्य है । उसके बीच में एक वज्ररत्नमय अंकुश है । वहाँ एक कुम्भिका-प्रमाण मोतियों की बृहत् माला है । वह मुक्ता

माला अपने से आधी ऊंची, अर्ध कुम्भिकापरिमित चार मुक्तामालाओं द्वारा चारों ओर से परिवेष्टित है । उन मालाओं में तपनीय-स्वर्णनिर्मित लंबूसक लटकते हैं । वे सोने के पातों से मण्डित हैं । वे नानाविध मणियों एवं रत्नों से निर्मित हारों, अर्धहारों-से उपशोभित हैं, विभूषित हैं । पूर्वीय-आदि वायु के झोंकों से धीरे-धीरे हलती हुई, परस्पर टकराने से उत्पन्न कानों के लिए तथा मन के लिए शान्तिप्रद शब्द से आस-पास के प्रदेशों को आपूर्ण करती हुई-भरती हुई वे अत्यन्त सुशोभित होती हैं । उस सिंहासन के वायव्यकोण में, उत्तर में एवं ईशान में शक्र के ८४०००, सामानिक देवों के ८४००० उत्तम आसन हैं, पूर्व में आठ प्रधान देवियों के आठ उत्तम आसन हैं, आग्नेय कोण में आभ्यन्तर परिषद् के १२००० देवों के १२०००, दक्षिण में मध्यम परिषद् के १४००० देवों के १४००० तथा नैर्ऋत्यकोण में बाह्य परिषद् के १६००० देवों के १६००० उत्तम आसन हैं । पश्चिम में सात अनीकाधिपतियों-के सात उत्तम आसन हैं । उस सिंहासन की चारों दिशाओं में चौरासी चौरासी हजार आत्मरक्षक कुल ३३६००० उत्तम आसन हैं । इनसे सबकी विकुर्वणा कर पालक देव शक्रेन्द्र को निवेदित करता है ।

सूत्र - २२९

पालक देव द्वारा दिव्य यान की रचना को सुनकर शक्र मन में हर्षित होता है । जिनेन्द्र भगवान् के सम्मुख जाने योग्य, दिव्य, सर्वालंकारविभूषित, उत्तरवैक्रिय रूप की विकुर्वणा करता है । सपरिवार आठ अग्रमहिषियों, नाट्यानीक, गन्धर्वानीक के साथ उस यान-विमान की अनुप्रदक्षिणा करता हुआ पूर्वदिशावर्ती त्रिसोपनक से-विमान पर आरूढ होता है । पूर्वाभिमुख हो सिंहासन पर आसीन होता है । उसी प्रकार सामानिक देव, बाकी के देव-देवियाँ दक्षिणदिग्वर्ती त्रिसोपानक से विमान पर आरूढ होकर उसी तरह बैठ जात हैं । शक्र के यों विमानारूढ होने पर आगे आठ मंगलिक-द्रव्य प्रस्थित होते हैं । तत्पश्चात् शुभ शकुन के रूप में समायोजित, प्रयाण-प्रसंग में दर्शनीय जलपूर्ण कलश, जलपूर्ण झारी, चँवर सहित दिव्य छत्र, दिव्य पताका, वायु द्वारा उड़ाई जाती, अत्यन्त ऊंची, मानो आकाश को छूती हुई-सी विजय-वैजयन्ती से क्रमशः आगे प्रस्थान करते हैं ।

तदनन्तर छत्र, विशिष्ट वर्णकों एवं चित्रों द्वारा शोभित निर्जल झारी, फिर वज्ररत्नमय, वर्तुलाकार, लष्ट, सुश्लिष्ट, परिघृष्ट, स्निग्ध, मृष्ट, मृदुल, सुप्रतिष्ठित, विशिष्ट, अनेक उत्तम, पंचरंगी हजारों कुडभियों-से अलंकृत, सुन्दर, वायु द्वारा हिलती विजय-वैजयन्ती, ध्वजा, छत्र एवं अतिछत्र से सुशोभित, तुंग आकाश को छूते हुए से शिखर युक्त १००० योजन ऊंचा, अतिमहत् महेन्द्रध्वज यथाक्रम आगे प्रस्थान करता है । उसके बाद अपने कार्यानुरूप वेष से युक्त, सुसज्जित, सर्वविध अलंकारों से विभूषित पाँच सेनाएं, पाँच सेनापति-देव प्रस्थान करते हैं। फिर बहुत से आभियोगिक देव-देवियाँ अपने-अपने रूप, नियोग-सहित देवेन्द्र, देवराज शक्र के आगे, पीछे यथाक्रम प्रस्थान करते हैं । तत्पश्चात् सौधर्मकल्पवासी अनेक देव-देवियाँ विमानारूढ होते हैं, देवेन्द्र, देवराज शक्र के आगे पीछे तथा दोनों ओर प्रस्थान करते हैं । इस प्रकार विमानस्थ देवराज शक्र पाँच सेनाओं से परिवृत्त ८४००० सामानिक देवों आदि से संपरिवृत, सब प्रकार की ऋद्धि-के साथ, वाद्य-निनाद के साथ सौधर्मकल्प के बीचोंबीच होता हुआ, दिव्य देव-ऋद्धि उपदर्शित करता हुआ, जहाँ सौधर्मकल्प का उत्तरी निर्याण-मार्ग आता है, वहाँ आकर एक-एक लाख योजन-प्रमाण विग्रहों द्वारा आगे बढ़ता तिर्यक्-असंख्य द्वीपों एवं समुद्रों के बीच से होता हुआ, जहाँ नन्दीश्वर द्वीप है, आग्नेय कोणवर्ती रतिकर पर्वत है, वहाँ आता है ।

फिर शक्रेन्द्र दिव्य देव-ऋद्धि का दिव्य यान-विमान का प्रतिसंहरण करता है-जहाँ भगवान् तीर्थंकर का जन्म-भवन होता है, वहाँ आता है । तीन बार प्रदक्षिणा करता है । तीर्थंकर के जन्म-भवन के-ईशान कोण में अपने दिव्य विमान को भूमितल से चार अंगुल ऊंचा ठहराता है । उस दिव्य-यान से नीचे उतरता है यावत् सब नीचे उतरते हैं । तत्पश्चात् देवेन्द्र, देवराज शक्र अपने सहवर्ती देव-समुदाय से संपरिवृत, सर्व ऋद्धि-वैभव-समायुक्त, नगाड़ों के गूंजते हुए निर्घोष के साथ, तीर्थंकर थे और उनकी माता थी, वहाँ आता है । देखते ही प्रणाम करता है, प्रदक्षिणा करता है । वैसा कर, हाथ जोड़, अंजलि बाँधे तीर्थंकर की माता को कहता है-रत्नकुक्षिधारिके, जगत्प्र-दीपदायिके-आपको नमस्कार हो । आप धन्य, पुण्य एवं कृतार्थ-हैं । मैं देवेन्द्र, देवराज शक्र भगवान् तीर्थंकर का

जन्म महोत्सव मनाऊंगा, अतः आप भयभीत मत होना।' यों कहकर वह तीर्थंकर की माता को अवस्वापिनी निद्रा में सूला देता है। तीर्थंकर-सदृश प्रतिरूपक विकुर्वणा करता है। शक्र फिर पाँच शक्रों की विकुर्वणा करता है–एक शक्र भगवान् तीर्थंकर को हथेलियों के संपुट द्वारा उठाता है, एक छत्र धारण करता है, दो चँवर डुलाते हैं, एक हाथ में वज्र लिये आगे चलता है। तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्र, अनेक भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक देवदेवियों से घिरा हुआ, सब प्रकार ऋद्धि से शोभित, उत्कृष्ट, त्वरित देव-गति से चलता हुआ, जहाँ मन्दरपर्वत, पण्डकवन, अभिषेक-शिला एवं अभिषेक-सिंहासन हैं, वहाँ आता है, पूर्वाभिमुख हो सिंहासन पर बैठता है।

सूत्र – २३०-२३३

उस काल, उस समय हाथ में त्रिशूल लिये, वृषभ पर सवार, सुरेन्द्र, उत्तरार्धलोकाधिपति, अठ्ठाईस लाख विमानों का स्वामी, निर्मल वस्त्र धारण किये देवेन्द्र, देवराज ईशान मन्दर पर्वत पर आता है। शेष वर्णन सौधर्मेन्द्र शक्र के सदृश है। अन्तर इतना है–घण्टा का नाम महाघोषा है। पदातिसेनाधिपति का नाम लघुपराक्रम है, विमानकारी देव का नाम पुष्पक है। उसका निर्याण मार्ग दक्षिणवर्ती है, उत्तरपूर्ववर्ती रतिकर पर्वत है। वह भगवान् तीर्थंकर को वन्दन करता है, नमस्कार करता है, उनकी पर्युपासना करता है। अच्युतेन्द्र पर्यंत बाकी के इन्द्र भी इसी प्रकार आते हैं, उन सबका वर्णन पूर्वानुरूप है। इतना अन्तर है– यथा–

सौधर्मेन्द्र शक्र के ८४०००, ईशानेन्द्र के ८००००, सनत्कुमारेन्द्र के ७२०००, माहेन्द्र के ७००००, ब्रह्मेन्द्र के ६००००, लान्तकेन्द्र के ५००००, शुक्रेन्द्र के ४००००, सहस्रारेन्द्र के ३००००, आनत-प्रणत-कल्प-द्विकेन्द्र के २०००० तथा आरण-अच्युत-कल्प-द्विकेन्द्र के १०००० सामानिक देव हैं। सौधर्मेन्द्र के ३२ लाख, ईशानेन्द्र के २८ लाख, सनत्कुमारेन्द्र के १२ लाख, ब्रह्मलोकेन्द्र के ४ लाख, लान्त-केन्द्र के ५००००, शुक्रेन्द्र के ४००००, सहस्रारेन्द्र के ६००००, आनत-प्राणत–के ४०० तथा आरण-अच्युत–के ३०० विमान होते हैं।

सूत्र – २३४, २३५

पालक, पुष्पक, सौमनस, श्रीवत्स, नन्दावर्त, कामगम, प्रीतिगम, मनोरम, विमल तथा सर्वतोभद्र ये यान-विमानों की विकुर्वणा करनेवाले देवों के अनुक्रम से नाम हैं। सौधर्मेन्द्र, सनत्कुमारेन्द्र, ब्रह्मलोकेन्द्र, महाशुक्रेन्द्र तथा प्राणतेन्द्र की सुघोषा घण्टा, हरिनिगमेषी पदाति-सेनाधिपति, उत्तरवर्ती निर्याण-मार्ग, दक्षिण-पूर्ववर्ती रतिकर पर्वत है। ईशानेन्द्र, माहेन्द्र, लान्तकेन्द्र, सहस्रारेन्द्र तथा अच्युतेन्द्र की महाघोषा घण्टा, लघुपराक्रम पदाति-सेनाधिपति, दक्षिणवर्ती निर्याण-मार्ग तथा उत्तर-पूर्ववर्ती रतिकर पर्वत है। इन्द्रों के जितने-जितने सामानिक देव होते हैं, अंगरक्षक देव उनसे चार गुने होते हैं। सबके यान-विमान एक-एक लाख योजन विस्तीर्ण होते हैं तथा उनकी ऊंचाई स्व-स्व-विमान-प्रमाण होती है। सबके महेन्द्र ध्वज एक-एक हजार योजन विस्तीर्ण होते हैं। शक्र के अतिरिक्त सब मन्दर पर्वत पर समवसृत होते हैं, भगवान् को वन्दन-नमन करते हैं, पर्युपासना करते हैं।

सूत्र - २३६

उस काल, उस समय चमरचंचा राजधानी में, सुधर्मासभा में, चमर नामक सिंहासन पर स्थित असुरेन्द्र, असुरराज चमर अपने ६४००० सामानिक देवों, ३३ त्रायस्त्रिंश देवों, चार लोकपालों, सपरिवार पाँच अग्रमहिषियों, तीन परिषदों, सात सेनाओं, सात सेनापति देवों, ६४००० अंगरक्षक देवों तथा अन्य देवों से संपरिवृत होता हुआ आता है। उसके पदातिसेनाधिपति का नाम द्रुम है, घण्टा ओधस्वरा है, विमान ५०००० योजन विस्तीर्ण है, महेन्द्र ध्वज ५०० योजन विस्तीर्ण है, विमानकारी आभियोगिक देव है। बाकी वर्णन पूर्वानुरूप है। उस काल, उस समय असुरेन्द्र, असुरराज बलि उसी तरह मन्दर पर्वत पर समवसृत होता है। उसके सामानिक देव ६०००० हैं, २४०००० आत्मरक्षक देव हैं, महाद्रुम पदातिसेनाधिपति हैं, महौघस्वरा घण्टा है। शेष वर्णन जीवाभिगम अनुसार समझना।

इसी प्रकार धरणेन्द्र आता है। उसके सामानिक देव ६००० हैं, अग्रमहिषियाँ छह हैं, २४००० अंगरक्षक देव हैं, मेघस्वरा घण्टा है, भद्रसेन पदाति-सेनाधिपति है। विमान २५००० योजन विस्तीर्ण है। महेन्द्रध्वज का

विस्तार २५० योजन है । असुरेन्द्र वर्जित सभी भवनवासी इन्द्रों का ऐसा ही वर्णन है । असुरकुमारों के ओघस्वरा, नागकुमारों के मेघस्वरा, सुपर्णकुमारों के हंसस्वरा, विद्युत्कुमारों के तौञ्चस्वरा, अग्निकुमारों के मंजुस्वरा, दिक्कुमारों के मंजुघोषा, उदधिकुमारों के सुस्वरा, द्वीपकुमारों के मधुरस्वरा, वायुकुमारों के नन्दिस्वरा तथा स्तनित कुमारों के नन्दिघोषा नामक घण्टाएं हैं ।

सूत्र - २३७

चमरेन्द्र के चौसठ एवं बलीन्द्र के साठ हजार सामानिक देव हैं । असुरेन्द्रों को छोड़कर धरणेन्द्र आदि इन्द्रों के छह-छह हजार सामानिक देव हैं । सामानिक देवों से चार चार गुने अंगरक्षक देव हैं ।

सूत्र - २३८

चमरेन्द्र को छोड़कर दाक्षिणात्य भवनपति इन्द्रों के भद्रसेन और बलीन्द्र को छोड़कर उत्तरीय भवनपति इन्द्रों के दक्ष नामक पदाति-सेनाधिपति हैं । इसी प्रकार व्यन्तरेन्द्रों तथा ज्योतिष्केन्द्रों का वर्णन है । उनके ४००० सामानिक देव, चार अग्रमहिषियाँ तथा १६००० अंगरक्षक देव हैं, विमान १००० योजन विस्तीर्ण तथा महेन्द्रध्वज १२५ योजन विस्तीर्ण है । दाक्षिणात्यों की मंजुस्वरा तथा उत्तरीयों की मंजुघोषा घण्टा है । उनके पदातिसेनाधिपति तथा विमानकारी-आभियोगिक देव हैं । ज्योतिष्केन्द्रों-चन्द्रों की सुस्वरा एवं सूर्यों की सुस्वरनिर्घोषा घण्टाएं हैं ।

सूत्र - २३९

देवेन्द्र, देवराज, महान् देवाधिप अच्युत अपने आभियोगिक देवों को बुलाता है, उनसे कहता है-देवानुप्रियों! शीघ्र ही महार्थ, महार्घ, महार्ह, विपुल-तीर्थंकराभिषेक उपस्थापित करो-। यह सुनकर वे आभियोगिक देव हर्षित एवं परिपुष्ट होते हैं । वे ईशानकोण में जाते हैं । वैक्रियसमुद्घात से १००८ स्वर्णकलश, १००८ रजत-कलश-इसी प्रकार मणिमय, स्वर्ण-रजतमय, स्वर्णमणिमय, रजत-मणिमय, स्वर्ण-रजतमणिमय, भौमेय, चन्दन ये सब कलश तथा १००८-१००८ झारियाँ, दर्पण, थाल, पात्रियाँ, सुप्रतिष्ठक, रत्नकरंडक, वातकरंडक, पुष्पचंगेरी, पुष्प-पटलों, १००८-१००८ सिंहासन, तैल-समुद्गक, यावत् सरसों के समुद्गक, १००८ तालवृन्त तथा १००८ धूपदान-की विकुर्वणा करते हैं । स्वाभाविक एवं विकुर्वित कलशों से धूपदान पर्यन्त सब वस्तुएं लेकर, क्षीरोद्र समुद्र आकर क्षीररूप उदक ग्रहण करते हैं । उत्पल, पद्म आदि लेते हैं । पुष्करोद समुद्र से जल आदि लेते हैं ।

समयक्षेत्र-पुष्करवरद्वीपार्ध के भरत, ऐरवत के मागध आदि तीर्थों का जल तथा मृत्तिका लेते हैं । गंगा आदि महानदियों का जल एवं मृतिका ग्रहण करते हैं । फिर क्षुद्र हिमवान् पर्वत से तुवर आदि सब कषायद्रव्य, पुष्प, सुगन्धित पदार्थ, मालाएं, औषधियाँ तथा सफेद सरसों लेते हैं । उन्हें लेकर पद्मद्रह से उसका जल एवं कमल आदि ग्रहण करते हैं ।

इसी प्रकार समस्त कुलपर्वतों, वृत्तवैताढ्य पर्वतों, सब महाद्रहों, समस्त क्षेत्रों, सर्व चक्रवर्ती विजयों, वक्षस्कार पर्वतों, अन्तर-नदियों से जल एवं मृत्तिका लेते हैं । कुरु से पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्व भरतार्ध, पश्चिम भरतार्ध आदि स्थानों से सुदर्शन-के भद्रशाल वन पर्यन्त सभी स्थानों से समस्त कषायद्रव्य एवं सफेद सरसों लेते हैं। इसी प्रकार नन्दनवन से सर्वविध कषायद्रव्य, सफेद सरसों, सरस-चन्दन तथा दिव्य पुष्पमाला लेते हैं । इसी भाँति सौमनस एवं पण्डक वन से सर्व-कषाय-द्रव्य पुष्पमाला एवं दर्दर और मलय पर्वत पर उद्भूत सुरभिमय पदार्थ लेते हैं । ये सब वस्तुएं लेकर एक स्थान पर मिलते हैं । तीर्थंकर के पास आकर महार्थ तीर्थंकराभिषेको-पयोगी क्षीरोदक आदि वस्तुएं अच्युतेन्द्र के संमुख रखते हैं ।

सूत्र - २४०

देवेन्द्र अच्युत अपने १०००० सामानिक देवों, ३३ त्रायस्त्रिंश देवों, चार लोकपालों, तीन परिषदों, सात सेनाओं, सात सेनापति-देवों तथा ४०००० अंगरक्षक देवों से परिवृत्त होता हुआ स्वाभाविक एवं विकुर्वित उत्तम कमलों पर रखे हुए, सुगन्धित, उत्तम जल से परिपूर्ण, चन्दन से चर्चित गलवे में मोली बाँधे हुए, कमलों एवं उत्पलों

से ढँके हुए, सुकोमल हथेलियों पर उठाये हुए १००८ सोने के कलशों यावत् १००८ मिट्टी के कलशों के सब प्रकार के जलों, मृत्तिकाओं, कसैले पदार्थों, औषधियों एवं सफेद सरसों द्वारा सब प्रकार की ऋद्धि-वैभव के साथ तुमुल वाद्यध्वनिपूर्वक भगवान् तीर्थंकर का अभिषेक करता है । अच्युतेन्द्र द्वारा अभिषेक किये जाते समय अत्यन्त हर्षित एवं परितुष्ट अन्य इन्द्र आदि देव छात्र, चँवर, धूपपान, पुष्प, सुगन्धित पदार्थ, वज्र, त्रिशूल हाथ में लिये, अंजलि बाँधे खड़े रहते हैं । कतिपय देव पण्डकवन के मार्गों में, जल का छिड़काव करते हैं, सम्मार्जन करते हैं-उपलिप्त करते हैं । यों उसे शुचि एवं स्वच्छ बनाते हैं, सुगन्धित धूममय बनाते हैं ।

कईं एक वहाँ चाँदी बरसाते हैं । कईं स्वर्ण, रत्न, हीरे, गहने, पत्ते, फूल, फल, बीज, मालाएं, गन्ध, वर्ण तथा चूर्ण-बरसाते हैं । कईं एक मांगलिक प्रतीक के रूप में अन्य देवों को रजत भेंट करते हैं, यावत् चूर्ण भेंट करते हैं । कईं एक तत्, वितत, घन तथा कईं एक शुषिर-आदि चार प्रकार के वाद्य बजाते हैं । कईं एक उत्क्षिप्त, पादात्त, मंदाय, आदि के प्रयोग द्वारा धीरे-धीरे गाये जाते तथा रोचितावसान-पर्यन्त समुचितनिर्वाहयुक्त गेय-गाते हैं। कईं एक अञ्चित, द्रुत, आरभट तथा भसोल नामक चार प्रकार का नृत्य करते हैं । कईं दार्ष्टान्तिक, प्राति-श्रुतिक, सामान्यतोविनिपातिक एवं लोकमध्यावसानिक-चार प्रकार का अभिनय करते हैं । कईं बत्तीस प्रकार की नाट्य-विधि उपदर्शित करते हैं । कईं उत्पात-निपात, निपातोत्पात, संकुचित-प्रसारित तथा भ्रान्त-संभ्रान्त, वैसी अभिनयशून्य गात्रविक्षेपमात्र-नाट्यविधि उपदर्शित करते हैं । कईं ताण्डव, कईं लास्य नृत्य करते हैं ।

कईं एक अपने को पीन बनाते हैं, प्रदर्शित करते हैं, कईं एक बूत्कार करते हैं-आहनन करते हैं, कईं एक वल्गन करते हैं, कईं सिंहनाद करते हैं, कईं घोड़ों की ज्यों हिनहिनाते हैं, कईं हाथियों की ज्यों गुलगुलाते हैं, कईं रथों की ज्यों घनघनाते हैं, कईं एक आगे से मुख पर चपत लगाते हैं, कईं एक पीछे से मुख पर चपत लगाते हैं, कईं एक अखाड़े में पहलवान की ज्यों पैंतरे बदलते हैं, कईं एक पैर से भूमि का आस्फोटन करते हैं, कईं हाथ से भूमि का आहनन करते हैं, कईं जोर-जोर से आवाज लगाते हैं । कईं हुंकार करते हैं । कईं पूत्कार करते हैं । कईं थक्कार करते हैं, कईं अवपतित होते हैं, कईं उत्पतित होते हैं, कईं परिपतित होते हैं, कईं ज्वलित होते हैं, कईं तप्त होते हैं, कईं प्रतप्त होते हैं, कईं गर्जन करते हैं । कईं बिजली की ज्यों चमकते हैं । कईं वर्षा के रूप में परिणत होते हैं । कईं वातूल की ज्यों चक्कर लगाते हैं । कईं अत्यन्त प्रमोदपूर्वक कहकहाहट करते हैं । कईं लटकते होठ, मुँह बाये, आँखें फाड़े-बेतहाशा नाचते हैं । कईं चारों ओर दौड़ लगाते हैं ।

सूत्र - २४१

सपरिवार अच्युतेन्द्र विपुल, बृहत् अभिषेक-सामग्री द्वारा तीर्थंकर का अभिषेक करता है । अभिषेक कर वह हाथ जोड़ता है, 'जय-विजय' शब्दों द्वारा भगवान् की वर्धापना करता है, 'जय-जय' शब्द उच्चारित करता है । वैसा कर वह रोएंदार, सुकोमल, सुरभित, काषायित, बिभीतक, आमलक आदि कसैली वनौषधियों से रंगे हुए वस्त्र-द्वारा भगवान् का शरीर पोंछता है । उनके अंगों पर ताजे गोशीर्ष चन्दन का लेप करता है । बारीक और हलके, नेत्रों को आकृष्ट करनेवाले, उत्तम वर्ण एवं स्पर्शयुक्त, घोड़े के मुख की लार के समान कोमल, अत्यन्त स्वच्छ, श्वेत, स्वर्णमय तारों से अन्तःखचित दो दिव्य वस्त्र-एवं उत्तरीय उन्हें धारण कराता है । कल्पवृक्ष की ज्यों अलंकृत करता है । नाट्यविधि प्रदर्शित करता है, उजले, चिकने, रजतमय, उत्तम रसपूर्ण चावलों से भगवान् के आगे आठ-आठ मंगल-प्रतीक आलिखित करता है-जैसे-

सूत्र - २४२

१. दर्पण, २. भद्रासन, ३. वर्धमान, ४. वर कलश, ५. मत्स्य, ६. श्रीवत्स, ७. स्वस्तिक तथा ८. नन्द्यावर्त ।

सूत्र - २४३

पूजोपचार करता है । गुलाब, मल्लिका, आदि सुगन्धयुक्त फूलों को कोमलता से हाथ में लेता है । वे सहज रूप में उसकी हथेलियों से गिरते हैं, उन पँचरंगे पुष्पों का घुटने-घुटने जितना ऊंचा एक विचित्र ढेर लग जाता है ।

चन्द्रकान्त आदि रत्न, हीरे तथा नीलम से बने उज्ज्वल दंडयुक्त, स्वर्णमणि एवं रत्नों से चित्रांकित, काले अगर, उत्तम कुन्दरुक्क, लोबान एवं धूप से निकलती श्रेष्ठ सुगन्ध से परिव्याप्त, धूम-श्रेणी छोड़ते हुए नीलम-निर्मित धूपदान को पकड़ कर सावधानी से, धूप देता है । जिनवरेन्द्र के सम्मुख सात-आठ कदम चलकर, हाथ जोड़कर जागरूक शुद्ध पाठयुक्त, एक सौ आठ स्तुति करता है । वैसा कर वह अपना बायां घुटना ऊंचा उठाता है, दाहिना घुटना भूमितल पर रखता है, हाथ जोड़ता है, कहता है–हे सिद्ध, बुद्ध, नीरज, श्रमण, समाहित, कृत-कृत्य ! समयोगिन् ! शल्य-कर्तन, निर्भय, नीरागदोष, निर्मम, निःशल्य, मान-मूरण, गुण-रत्न-शील-सागर, अनन्त, अप्रमेय, धर्म-साम्राज्य के भावी उत्तम चातुरन्त-चक्रवर्ती धर्मचक्र के प्रवर्तक ! अर्हत्, आपको नमस्कार हो । इन शब्दों में वह भगवान् को वन्दन करता है, नमन करता है । पर्युपासना करता है ।

अच्युतेन्द्र की ज्यों प्राणतेन्द्र यावत् ईशानेन्द्र, भवनपति, वानव्यन्तर एवं ज्योतिष्केन्द्र सभी इसी प्रकार अपने-अपने देव-परिवार सहित अभिषेक-कृत्य करते हैं । देवेन्द्र, देवराज ईशान पाँच ईशानेन्द्रों की विकुर्वणा करता है–एक ईशानेन्द्र तीर्थंकर को उठाकर पूर्वाभिमुख होकर सिंहासन पर बैठता है । एक छत्र धारण करता है । दो ईशानेन्द्र चँवर डुलाते हैं । एक ईशानेन्द्र हाथ में त्रिशूल लिये आगे खड़ा रहता है । तब देवेन्द्र देवराज शक्र अपने आभियोगिक देवों को बुलाता है । अच्युतेन्द्र की ज्यों अभिषेक-सामग्री लाने की आज्ञा देता है । फिर देवेन्द्र, देवराज शक्र भगवान् तीर्थंकर की चारों दिशाओं में शंख के चूर्ण की ज्यों विमल, गहरे जमे हुए, दधि-पिण्ड, गो-दुग्ध के झाग एवं चन्द्र-ज्योत्सना की ज्यों सफेद, चित्त को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप, प्रतिरूप, वृषभों–की विकुर्वणा करता है । उन चारों बैलों के आठ सींगो में से आठ जलधाराएं निकलती हैं, तीर्थंकर के मस्तक पर निपतीत होती हैं । अपने ८४००० सामानिक आदि देव-परिवार से परिवृत्त देवेन्द्र, देवराज शक्र तीर्थंकर का अभिषेक करता है । वन्दन नमन करता है, पर्युपासना करता है ।

सूत्र - २४४

तत्पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्र पाँच शक्रों की विकुर्वणा करता है । यावत् एक शक्र वज्र हाथ में लिये आगे खड़ा होता है । फिर शक्र अपने ८४००० सामानिक देवों, भवनपति यावत् वैमानिक देवों, देवियों से परिवृत, सब प्रकार की ऋद्धि से युक्त, वाद्य-ध्वनि के बीच उत्कृष्ट त्वरित दिव्य गति द्वारा, जहाँ भगवान् तीर्थंकर का जन्म-भवन था वहाँ आता है । तीर्थंकर को उनकी माता की बगल में स्थापित करता है । तीर्थंकर के प्रतिकरूप को, प्रतिसंहृत करता है । भगवान् तीर्थंकर की माता की अवस्वापिनी निद्रा को, जिसमें वह सोई होती है, प्रतिसंहृत कर लेता है । भगवान् तीर्थंकर के उच्छीर्षक मूल में–दो बड़े वस्त्र तथा दो कुण्डल रखता है । तपनीय-स्वर्ण-निर्मित झुम्बनक, सोने के पातों से परिमण्डित, नाना प्रकार की मणियों तथा रत्नों से बने तरह-तरह के हारों, अर्धहारों से उपशोभित श्रीमदागण्ड भगवान् के ऊपर तनी चाँदनी में लटकाता है, जिसे भगवान् तीर्थंकर निर्निमेष दृष्टि से–उसे देखते हुए सुखपूर्वक अभिरमण करते हैं ।

तदनन्तर देवेन्द्र देवराज शक्र वैश्रमण देव को बुलाकर कहता है–शीघ्र ही ३२-३२ करोड़ रौप्य-मुद्राएं, स्वर्ण-मुद्राएं, वर्तुलाकार लोहासन, भद्रासन भगवान् तीर्थंकर के जन्म-भवन में लाओ । वैश्रमण देव शक्र के आदेश को विनयपूर्वक स्वीकार करता है । जृम्भक देवों को बुलाता है । बुलाकर शक्र की आज्ञा से सूचित करता है । वे शीघ्र ही बत्तीस करोड़ रौप्य-मुद्राएं आदि तीर्थंकर के जन्म-भवन में आते हैं । वैश्रमण देव को सूचित करते हैं । तब वैश्रमण देव देवेन्द्र देवराज शक्र को अवगत कराता है ।

तत्पश्चात् देवेन्द्र, देवराज शक्र अपने आभियोगिक देवों को बुलाकर कहता है–देवानुप्रियों ! शीघ्र ही तीर्थंकर के जन्म-नगर के तिकोने स्थानों, तिराहों, चौराहों एवं विशाल मार्गों में जोर-जोर से उद्घोषित करते हुए कहो–'बहुत से भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा वैमानिक देव-देवियों ! आप सूनें–आप में से जो कोई तीर्थंकर या उनकी माता के प्रति अपने मन में अशुभ भाव लायेगा–आर्यक मंजरी की ज्यों उसके मस्तक के सौ टुकड़े हो जायेंगे ।'

वे आभियोगिक देव देवेन्द्र देवराज शक्र का आदेश स्वीकार करते हैं । वहाँ से प्रतिनिष्क्रान्त होते हैं–वे शीघ्र ही तीर्थंकर के जन्म-नगर में आते हैं । वहाँ पूर्वोक्त घोषणा करते हैं । ऐसी घोषणा कर वे आभियोगिक देव देवराज शक्र को, उनके आदेश का पालन किया जा चूका है, ऐसा अवगत कराते हैं ।

तदनन्तर बहुत से भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा वैमानिक देव भगवान् तीर्थंकर का जन्मोत्सव मनाते हैं । तत्पश्चात् नन्दीश्वर द्वीप आकर अष्टदिवसीय विराट् जन्म-महोत्सव आयोजित करते हैं । वैसा करके जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में चले जाते हैं ।

वक्षस्कार-५-का मुनि दीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

वक्षस्कार-६- जम्बूद्वीपगत पदार्थ

सूत्र - २४५

भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप के चरम प्रदेश लवणसमुद्र का स्पर्श करते हैं ? हाँ, गौतम ! करते हैं । जम्बूद्वीप के जो प्रदेश लवणसमुद्र का स्पर्श करते हैं, क्या वे जम्बूद्वीप के ही प्रदेश कहलाते हैं या लवणसमुद्र के ? गौतम ! वे जम्बूद्वीप के ही प्रदेश कहलाते हैं । इसी प्रकार लवणसमुद्र के प्रदेशों की बात है ।

भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप के जीव मर कर लवणसमुद्र में उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! कतिपय उत्पन्न होते हैं, कतिपय उत्पन्न नहीं होते । इसी प्रकार लवणसमुद्र के जीवों के विषय में जानना ।

सूत्र - २४६

खण्ड, योजन, वर्ष, पर्वत, कूट, तीर्थ, श्रेणियाँ, विजय, द्रह तथा नदियाँ–इनका प्रस्तुत सूत्र में वर्णन है ।

सूत्र – २४७, २४८

भगवन् ! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के प्रमाण जितने–भरतक्षेत्र के बराबर खण्ड किये जाए तो वे कितने होते हैं ? गौतम ! खण्डगणित के अनुसार वे १९० होते हैं । भगवन् ! योजनगणित के अनुसार जम्बूद्वीप का कितना प्रमाण है ? गौतम ! जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल-प्रमाण ७,९०,५६,९४,१५० योजन है ।

सूत्र - २४९

भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने वर्ष–क्षेत्र हैं ? गौतम ! सात, –भरत, ऐरावत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष तथा महाविदेह । जम्बूद्वीप के अन्तर्गत छह वर्षधर पर्वत, एक मन्दर पर्वत, एक चित्रकूट पर्वत, एक विचित्रकूट पर्वत, दो यमक पर्वत, दो सौ काञ्चन पर्वत, बीस वक्षस्कार पर्वत, चौतीस दीर्घ वैताढ्य पर्वत तथा चार वृत्त वैताढ्य पर्वत हैं । यों जम्बूद्वीप में पर्वतों की कुल संख्या २६९ है । जम्बूद्वीप में ५६ वर्षधरकूट, ९६ वक्षस्कार-कूट, ३०६ वैताढ्यकूट तथा नौ मन्दरकूट हैं । इस प्रकार कुल ४६७ कूट होते हैं ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरतक्षेत्र में कितने तीर्थ बतलाये गये हैं ? गौतम ! तीन, –मागधतीर्थ, वरदामतीर्थ तथा प्रभासतीर्थ । इसी तरह ऐरवतक्षेत्र और महाविदेहक्षेत्र में भी जानना । यों जम्बूद्वीप के चौतीस विजयों में कुल १०२ तीर्थ हैं । जम्बूद्वीप में अड़सठ विद्याधर–श्रेणियाँ तथा अड़सठ आभियोगिक–श्रेणियाँ हैं । इस प्रकार कुल १३६ श्रेणियाँ हैं । जम्बूद्वीप के अन्तर्गत ३४-३४ चक्रवर्तिविजय, राजधानियाँ, तिमिस्र गुफाएं, खण्ड-प्रपात गुफाएं, कृतमालक देव, नृत्तमालक देव तथा ऋषभकूट बतलाये गये हैं ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् महाद्रह कितने बतलाये गये हैं ? गौतम ! सोलह । जम्बूद्वीप के अन्तर्गत १४ महानदियाँ वर्षधर पर्वतों से निकलती हैं तथा ७६ महानदियाँ कुण्डों से निकलती हैं । कुल मिलाकर ९० महा-नदियाँ हैं । भरत तथा ऐरवत में चार महानदियाँ हैं–गंगा, सिन्धु, रक्ता तथा रक्तवती । एक एक महानदी में चौदह-चौदह हजार नदियाँ मिलती हैं । वे पूर्वी एवं पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती हैं । भरतक्षेत्र में गंगा महानदी पूर्वी लवणसमुद्र में तथा सिन्धु महानदी पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती है । ऐरावत क्षेत्र में रक्ता महानदी पूर्वी लवणसमुद्र में तथा रक्तवती महानदी पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती है । यों जम्बूद्वीप के भरत तथा ऐरावत क्षेत्र में कुल ५६००० नदियाँ हैं ।

जम्बूद्वीप के अन्तर्गत हैमवत एवं हैरण्यवत क्षेत्र में चार महानदियाँ हैं–रोहिता, रोहितांशा, सुवर्णकुला तथा रूप्यकूला । प्रत्येक महानदी में अठ्ठाईस-अठ्ठाईस हजार नदियाँ मिलती हैं । वे पूर्वी एवं पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती हैं । हैमवत में रोहिता पूर्वी लवणसमुद्र में तथा रोहितांशा पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती हैं । हैरण्यवत में सुवर्णकूला पूर्वी लवणसमुद्र में तथा रूप्यकूला पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती हैं । इस प्रकार जम्बूद्वीप के हैमवत तथा हैरण्यवत क्षेत्र में कुल ११२००० नदियाँ हैं ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत हरिवर्ष तथा रम्यकवर्ष में कितनी महानदियाँ बतलाई गई हैं ? गौतम ! चार–हरिसलिला, हरिकान्ता, नरकान्ता तथा नारीकान्ता। प्रत्येक महानदीमें छप्पन-छप्पन हजार नदियाँ मिलती हैं। हरिवर्ष में हरिसलिला पूर्वी लवणसमुद्र में तथा हरिकान्ता पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती हैं ।

रम्यकवर्ष में नरकान्ता पूर्वी लवणसमुद्र में तथा नारीकान्ता पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती है । यों जम्बूद्वीप के अन्तर्गत हरिवर्ष तथा रम्यकवर्ष में कुल २२४००० नदियाँ हैं । भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में दो महानदियाँ हैं–शीता एवं शीतोदा । प्रत्येक महानदी में ५३२००० नदियाँ मिलती हैं । शीता पूर्वी लवणसमुद्र में तथा शीतोदा पश्चिमी लवणसमुद्र में मिलती हैं ।

वक्षस्कार-६-का मुनि दीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

वक्षस्कार-७- 'ज्योतिष्क'

सूत्र – २५०, २५१

भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने चन्द्रमा उद्योत करते थे ? उद्योत करते हैं एवं करते रहेंगे ? कितने सूर्य तपते थे ? तपते हैं और तपते रहेंगे ? इत्यादि प्रश्न । गौतम ! जम्बूद्वीप में चन्द्र उद्योत करते थे । करते हैं तथा करेंगे । दो सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपते रहेंगे । ५६ नक्षत्र योग करते थे, करते हैं एवं करते रहेंगे । १७६ महाग्रह परिभ्रमण करते थे, करते हैं तथा करते रहेंगे । १३३९५० कोड़ाकोड़ी तारे शोभित थे, शोभित हैं और शोभित होंगे ।

सूत्र - २५२

भगवन् ! सूर्य-मण्डल कितने हैं ? गौतम ! १८४, जम्बूद्वीप में १८० योजन क्षेत्र का अवगाहन कर आगत क्षेत्र में ६५ सूर्य-मण्डल हैं । लवणसमुद्र में ३३० योजन क्षेत्र का अवगाहन कर आगत क्षेत्र में ११९ सूर्यमण्डल हैं । इस प्रकार जम्बूद्वीप तथा लवणसमुद्र में १८४ सूर्य-मण्डल होते हैं ।

सूत्र - २५३

भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल से सर्वबाह्य सूर्य-मण्डल कितने अन्तर पर हैं ? गौतम ! ५१० योजन के अन्तर पर है ।

सूत्र - २५४

भगवन् ! एक सूर्य-मण्डल से दूसरे सूर्य-मण्डल का अबाधित-कितना अन्तर है ? गौतम ! दो योजन का है

सूत्र - २५५

भगवन् ! सूर्य-मण्डल का आयाम, विस्तार, परिक्षेप तथा बाहल्य–कितना है ? गौतम ! लम्बाई-चौड़ाई ४८/६१ योजन, परिधि उससे कुछ अधिक तीन गुणी तथा मोटाई २४/६१ योजन है ।

सूत्र - २५६

भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल जम्बूद्वीप स्थित मन्दर पर्वत से कितनी दूरी पर है ? गौतम ! ४४८२० योजन की दूरी पर है । सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल से दूसरा सूर्य-मण्डल ४४८२२-४८/६१ योजन की दूरी पर है । सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल से तीसरा सूर्य-मण्डल ४४८२५-३५/६१ योजन की दूरी पर है । यों प्रति दिन रात एक-एक मण्डल के परित्यागरूप क्रम से निष्क्रमण करता हुआ–सूर्य तदनन्तर मण्डल से तदनन्तर मण्डल–संक्रमण करता हुआ एक-एक मण्डल पर २–४८/६१ योजन दूरी की अभिवृद्धि करता हुआ सर्वबाह्य मण्डल पर पहुँच कर गति करता है । सर्वबाह्य सूर्य-मण्डल जम्बूद्वीप-स्थित मन्दर पर्वत से ४५३३० योजन की दूरी पर है । सर्वबाह्य सूर्य-मण्डल से दूसरा बाह्य सूर्य-मण्डल ४५३२७–१३/६१ योजन की दूरी पर है । सर्वबाह्य सूर्य-मण्डल से तीसरा बाह्य सूर्य-मण्डल ४५३२४–२६/६१ योजन की दूरी पर है । इस प्रकार अहोरात्र-मण्डल में परित्यागरूप क्रम से जम्बूद्वीप में प्रविष्ट होता हुआ सूर्य तदनन्तर मण्डल में तदनन्तर मण्डल पर संक्रमण करता हुआ–एक-एक मण्डल पर २–४८/६१ योजन की अन्तर-वृद्धि कम करता हुआ सर्वाभ्यन्तर-मण्डल पर पहुँच कर गति करता है ।

सूत्र - २५७

भगवन् ! जम्बूद्वीप में सर्वाभ्यन्तर सूर्य-मण्डल का लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी है ? गौतम ! लम्बाई-चौड़ाई ९९६४० योजन तथा परिधि कुछ अधिक ३१५०८९ योजन है । द्वितीय आभ्यन्तर सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई ९९६४५–३५/६१ योजन तथा परिधि ३१५१०७ योजन है । तृतीय आभ्यन्तर सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई ९९६५१–६/६१ योजन तथा परिधि ३१५१२५ योजन है । उक्त क्रम से निष्क्रमण करता हुआ सूर्य पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल पर उपसंक्रान्त होता हुआ–एक-एक मण्डल पर ५–३५/६१ योजन की विस्तार-वृद्धि करता हुआ तथा अठारह योजन की परिक्षेप-वृद्धि करता हुआ सर्वबाह्य मण्डल पर पहुँचता है । सर्वबाह्य सूर्य-

मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई १००६६० योजन तथा परिधि ३१८३१५ योजन है । द्वितीय बाह्य सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई १००६५४-२६/६१ योजन एवं परिधि ३१८२९७ योजन है । तृतीय बाह्य सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई १००६४८-५२/६१ योजन तथा परिधि ३१८२७९ योजन है । यों पूर्वोक्त क्रम के अनुसार प्रवेश करता हुआ सूर्य पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल पर जाता हुआ एक-एक मण्डल पर ५-३५/६१ योजन की विस्तार-वृद्धि कम करता हुआ, अठारह-अठारह योजन की परिधि-वृद्धि कम करता हुआ सर्वाभ्यन्तर-मण्डल पर पहुँचता है ।

सूत्र - २५८

भगवन् ! जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर-मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तो वह एक-एक मुहूर्त्त में कितने क्षेत्र को गमन करता है ? गौतम ! वह एक-एक मुहूर्त्त में ५२५१-२९/६० योजन पार करता है । उस समय सूर्य यहाँ भरतक्षेत्र-स्थित मनुष्यों को ४७२६३-२१/६० योजन की दूरी से दृष्टिगोचर होता है । वहाँ से निकलता हुआ सूर्य नव संवत्सर का प्रथम अयन बनाता हुआ प्रथम अहोरात्र में सर्वाभ्यन्तर मण्डल से दूसरे मण्डल पर उप-संक्रान्त होकर गति करता है । दूसरे मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है, तब वह एक-एक मुहूर्त्त में ५२५१-४७/६० योजन क्षेत्र पार करता है । तब यहाँ स्थित मनुष्यों को ४७१७९-५७/६० योजन तथा ६० भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ६१ भागों में से १९ भाग योजनांश की दूरी से सूर्य दृष्टिगोचर होता है । इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ सूर्य पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल को संक्रान्त करता हुआ १८/६० योजन मुहूर्त्त-गति बढ़ाता हुआ, ८४ योजन न्यून पुरुषछायापरिमित कम करता हुआ सर्वबाह्य मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है ।

भगवन् ! जब सूर्य सर्वबाह्य मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है, तब वह प्रति मुहूर्त्त कितना क्षेत्र गमन करता है ? गौतम ! वह प्रति मुहूर्त्त ५३०५-१५/६० योजन गमन करता है- । तब वहाँ स्थित मनुष्यों को वह ३१८३१-३०/६० योजन की दूरी से दृष्टिगोचर होता है । ये प्रथम छह मास हैं । सूर्य दूसरे छह मास के प्रथम अहोरात्र में सर्वबाह्य मण्डल से दूसरे बाह्य मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है । जब सूर्य दूसरे बाह्य मण्डल पर उपसंक्रान्त होकर गति करता है तो वह ५३०४-३९/६० योजन प्रति मुहूर्त्त गमन करता है । तब यहाँ स्थित मनुष्यों को वह ३१९१६-३९/६० योजन तथा ६० भोगों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ६१ भागों में से ६० भाग योजनांश की दूरी से दृष्टिगोचर होता है । यों पूर्वोक्त क्रम से प्रवेश करता हुआ सूर्य पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल पर संक्रमण करता हुआ, प्रतिमण्डल पर निष्क्रमण क्रम से गति करता है । ये दूसरा छह मास है । यह आदित्य-संवत्सर है ।

सूत्र - २५९

भगवन् ! जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है, तब-उस समय दिन कितना बड़ा होता है, रात कितनी बड़ी होती है ? गौतम ! उत्तमावस्थाप्राप्त, उत्कृष्ट-१८ मुहूर्त्त का दिन होता है, जघन्य १२ मुहुर्त्त की रात होती है । वहाँ से निष्क्रमण करता हुआ सूर्य नये संवत्सर में प्रथम अहोरात्र में दूसरे आभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है । जब सूर्य दूसरे मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब २/६१ मुहूर्तांश कम १८ मुहूर्त्त का दिन होता है, २/६१ मुहूर्तांश अधिक १२ मुहूर्त की रात होती है । इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ, पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल का संक्रमण करता हुआ सूर्य प्रत्येक मण्डल में दिवस-क्षेत्र-दिवस-परिमाण को २/६१ मुहूर्तांश कम करता हुआ तथा रात्रि-परिमाण को २/६१ मुहूर्तांश बढ़ाता हुआ सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है । जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल से सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब सर्वाभ्यन्तर मण्डल का परित्याग कर १८३ अहोरात्र में दिवस-क्षेत्र में ३६६ संख्या-परिमित १/६१ मुहूर्तांश कम कर तथा रात्रि-क्षेत्र में इतने ही मुहूर्तांश बढ़ाकर गति करता है ।

भगवन् ! जब सूर्य सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब दिन कितना बड़ा होता है, रात कितनी बड़ी होती है ? गौतम ! तब रात उत्तमावस्थाप्राप्त, उत्कृष्ट-१८ मुहूर्त्त की होती है, दिन जघन्य-१२ मुहूर्त्त

का होता है । ये प्रथम छः मास हैं । वहाँ से प्रवेश करता हुआ सूर्य दूसरे छः मास के प्रथम अहोरात्र में दूसरे बाह्य मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है । जब सूर्य दूसरे बाह्य मण्डल को उपसंक्रान्त कर गति करता है, तब २/६१ मुहूर्तांश कम १८ मुहूर्त्त की रात होती है, २/६१ मुहूर्तांश अधिक १२ मुहूर्त्त का दिन होता है । ऐसे पूर्वोक्त क्रम से प्रवेश करता हुआ सूर्य पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल का संक्रमण करता हुआ रात्रि-क्षेत्रमें एक-एक मण्डलमें २/६१ मुहूर्तांश कम करता हुआ तथा दिवस-क्षेत्रमें २/६१ मुहूर्तांश बढ़ाता हुआ सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है । जब सूर्य सर्वबाह्य मण्डल से सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब वह सर्वबाह्य मण्डल का परित्याग कर १८३ अहोरात्र में रात्रि-क्षेत्र में ३६६ संख्या-परिमित १/६१ मुहूर्तांश कम कर तथा दिवस-क्षेत्र में उतने ही मुहूर्तांश अधिक कर गति करता है । ये द्वितीय छह मास हैं । यह आदित्य-संवत्सर हैं ।

सूत्र – २६०, २६१

भगवन् ! जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तो उसके ताप-क्षेत्र की स्थिति किस प्रकार है ? तब ताप-क्षेत्र की स्थिति ऊर्ध्वमुखी कदम्ब-पुष्प के संस्थान जैसी होती है–वह भीतर में संकीर्ण तथा बाहर विस्तीर्ण, भीतर से वृत्त तथा बाहर से पृथुल, भीतर अंकमुख तथा बाहर गाड़ी की धुरी के अग्रभाग जैसी होती है । मेरु के दोनों ओर उसकी दो बाहाएं हैं–उनमें वृद्धि-हानि नहीं होती । उनकी लम्बाई ४५००० योजन है । उसकी दो बाहाएं अनवस्थित हैं । वे सर्वाभ्यन्तर तथा सर्वबाह्य के रूप में अभिहित हैं । उनमें सर्वाभ्यन्तर बाहा की परिधि मेरु पर्वत के अन्त में ९४८६–९/१० योजन है । जो मेरु पर्वत की परिधि है, उसे ३ से गुणित किया जाए । गुणनफल को दस का भाग दिया जाए । उसका भागफल इस परिधि का परिमाण है । उसकी सर्वबाह्य बाहा की परिधि लवणसमुद्र के अन्त में ९४८६८–४/१० योजन-परिमित है । जो जम्बूद्वीप की परिधि है, उसे ३ से गुणित किया जाए, गुणनफल को १० से विभक्त किया जाए । वह भागफल इस परिधि का परिमाण है । उस समय ताप-क्षेत्र की लम्बाई ७८३३३–१/३ योजन होती है ।

मेरु से लेकर जम्बूद्वीप पर्यन्त ४५००० योजन तथा लवणसमुद्र के विस्तार २००००० योजन के १/६ भाग ३३३३३–१/३ योजन का जोड़ ताप-क्षेत्र की लम्बाई है । उसका संस्थान गाड़ी की धूरी के अग्रभाग जैसा होता है ।

सूत्र - २६२

भगवन् ! तब अन्धकार-स्थिति कैसी होती है ? गौतम ! अन्धकार-स्थिति तब ऊर्ध्वमुखी कदम्ब पुष्प का संस्थान लिये होती है । वह भीतर संकीर्ण, बाहर विस्तीर्ण इत्यादि होती है । उसकी सर्वाभ्यन्तर बाहा की परिधि मेरु पर्वत के अन्त में ६३२४–६/१० योजन–प्रमाण है । जो पर्वत की परिधि है, उसे दो से गुणित किया जाए, गुणनफल को दस से विभक्त किया जाए, उसका भागफल इस परिधि का परिमाण है । उसकी सर्वबाह्य बाहा की परिधि लवणसमुद्र के अन्त में ६३२४५/६-१० योजन-परिमित है । गौतम ! जो जम्बूद्वीप की परिधि है, उसे दो से गुणित किया जाए, गुणनफल को दस से विभक्त किया जाए, उसका भागफल इस परिधि का परिमाण है । तब अन्धकार क्षेत्र का आयाम, ७८३३३-१/३ योजन है । जब सूर्य सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है तो ताप-क्षेत्र का संस्थान ऊर्ध्वमुखी कदम्ब-पुष्प संस्थान जैसा है । अन्य वर्णन पूर्वानुरूप है । इतना अन्तर है–पूर्वानुपूर्वी के अनुसार जो अन्धकार-संस्थिति का प्रमाण है, वह इस पश्चानुपूर्वी के अनुसार ताप-संस्थिति का जानना । सर्वाभ्यन्तर मण्डल के सन्दर्भ में जो ताप-क्षेत्र-संस्थिति का प्रमाण है, वह अन्धार-संस्थिति में समझ लेना

सूत्र - २६३

भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप में सूर्य (दो) उद्गमन-मुहूर्त्त में–स्थानापेक्षया दूर होते हुए भी द्रष्टा की प्रतीति की अपेक्षा से समीप दिखाई देते हैं ? मध्याह्न-काल में समीप होते हुए भी क्या वे दूर दिखाई देते हैं ? अस्तमन-वेलामें दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं ? हा गौतम ! ऐसा ही है । भगवन् ! जम्बूद्वीप में सूर्य उदयकाल, मध्याह्नकाल तथा अस्तमानकाल में क्या सर्वत्र एक सरीखी ऊंचाई लिये होते हैं ? हाँ, गौतम ! ऐसा ही है । भगवन् ! यदि जम्बू

द्वीप में सूर्य उदयकाल, मध्याह्नकाल तथा अस्तमानकाल में सर्वत्र एक-सरीखी ऊंचाई लिये होते हैं तो उदयकाल में दूर होते हुए भी निकट क्यों दिखता हैं, इत्यादि प्रश्न । गौतम! लेश्या के प्रतिघात से-अत्यधिक दूर होने के कारण उदयस्थान से आगे प्रसृत न हो पाने से, यों तेज या ताप के प्रतिहत होने के कारण सुखदृश्य-होने के कारण दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं । मध्याह्नकाल में लेश्या के अभिताप से-कष्टपूर्वक देखे जा सकने योग्य होने के कारण दूर दिखाई देते हैं । अस्तमानकालमें लेश्या के उदयकाल की ज्यों दूर होते हुए भी सूर्य निकट दिखाई देता हैं

सूत्र - २६४

भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप में सूर्य अतीत-क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं अथवा प्रत्युत्पन्न या अनागत क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं ? गौतम ! वे केवल वर्तमान क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं । भगवन् ! क्या वे गम्यमान क्षेत्र का स्पर्श करते हुए अतिक्रमण करते हैं या अस्पर्शपूर्वक ? गौतम ! वे गम्यमान क्षेत्र का स्पर्श करते हुए अतिक्रमण करते हैं । वे गम्यमान क्षेत्र को अवगाढ कर अतिक्रमण करते हैं । वे उस क्षेत्र का अव्यवहित रूप में अवगाहन करते अतिक्रमण करते हैं । वे अणुरूप-अनन्तरावगाढ क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं, अणुबादररूप ऊर्ध्व क्षेत्र का, अधःक्षेत्र का और तिर्यक् क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं-वे साठ मुहूर्त्तप्रमाण मण्डलसंक्रमणकाल के आदि में मध्य में तथा अन्त में भी गमन करते हैं । वे स्पृष्ट-अवगाढ-अनन्तरावगाढ रूप उचित क्षेत्र में गमन करते हैं । वे आनुपूर्वीपूर्वक-आसन्न क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं । वे नियमतः छह दिशाविषयक क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं । इस प्रकार वे अवभासित होते हैं-जिसमें स्थूलतर वस्तुएं दिख पाती हैं । इस प्रकार दोनों सूर्य छहों दिशाओं में उद्योत करते हैं, तपते हैं, प्रभासित होते हैं-

सूत्र - २६५

भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो सूर्यों द्वारा अवभासन आदि क्रिया क्या अतीत क्षेत्र में, या प्रत्युत्पन्न-क्षेत्र में अथवा अनागत क्षेत्र में की जाती है ? गौतम ! अवभासन आदि क्रिया प्रत्युत्पन्न क्षेत्र में ही की जाती है । सूर्य अपने तेज द्वारा क्षेत्र-स्पर्शन पूर्वक अवभासन आदि क्रिया करते हैं । वह अवभासन आदि क्रिया साठ मुहूर्त्तप्रमाण मण्डलसंक्रमणकाल के आदि में, मध्य में और अन्त में की जाती है ।

सूत्र - २६६

भगवन् ! जम्बूद्वीप में सूर्य कितने क्षेत्र को ऊर्ध्वभाग में, अधोभाग में तथा तिर्यक् भाग में तपाते हैं ? गौतम! ऊर्ध्वभाग में १०० योजन क्षेत्र को, अधोभाग में १८०० योजन क्षेत्र को तथा तिर्यक् भाग में ४७२६३-२१/६० योजन क्षेत्र को अपने तेज से तपाते हैं-

सूत्र - २६७

भगवन् ! मानुषोत्तर पर्वतवर्ती चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र एवं तारे-ऊर्ध्वोपपन्न हैं ? कल्पातीत हैं ? कल्पोपपन्न हैं, चारोपपन्न हैं, चारस्थितिक हैं, गतिरतिक हैं-या गति समापन्न हैं ? गौतम ! मानुषोत्तर ज्योतिष्क देव विमानोत्पन्न हैं, चारोपपन्न हैं, गतिरतिक हैं, गतिसमापन्न हैं। ऊर्ध्वमुखी कदम्ब पुष्प के आकारमें संस्थित सहस्रोंयोजनपर्यन्त, चन्द्र-सूर्यापेक्षया तापक्षेत्र युक्त, वैक्रियलब्धियुक्त, आभियोगिक कर्म करने में तत्पर, सहस्रों बाह्य परिषदों से संपरिवृत वे ज्योतिष्क देव नाट्य-गीत-वादन रूप त्रिविध संगीतोपक्रममें जोर-जोर से बजाये जाते वाद्योंसे उत्पन्न मधुर ध्वनि के साथ दिव्य भोग भोगते हुए, उच्च स्वर से सिंहनाद करते हुए, मुँह पर हाथ लगाकर जोर से पूत्कार करते-कलकल शब्द करते हुए अच्छ-निर्मल, उज्ज्वल मेरु पर्वत की प्रदक्षिणावर्त मण्डल गति द्वारा प्रदक्षिणा करते रहते हैं ।

सूत्र - २६८

भगवन् ! उन ज्योतिष्क देवों का इन्द्र जब च्युत हो जाता है, तब इन्द्रविरहकाल में देव किस प्रकार काम चलाते हैं ? गौतम ! चार या पाँच सामानिक देव मिल कर इन्द्रस्थान का संचालन करते हैं । इन्द्र का स्थान कम एक

समय तथा अधिक से अधिक छह मास तक इन्द्रोत्पत्ति से विरहित रहता है । मानुषोत्तर पर्वत के बहिर्वर्ती ज्योतिष्क देवों का वर्णन पूर्वानुरूप जानना । इतना अन्तर है–वे विमानोत्पन्न हैं । पकी ईंट के आकार में संस्थित, चन्द्रसूर्यापेक्षया लाखों योजन विस्तीर्ण तापक्षेत्रयुक्त, नानाविध विकुर्वित रूप धारण करने में सक्षम, लाखों बाह्य परिषदों से संपरिवृत्त ज्योतिष्क देव वाद्यों से उत्पन्न मधुर ध्वनि के आनन्द के साथ दिव्य भोग भोगने में अनुरत, सुखलेश्यायुक्त, मन्दलेश्यायुक्त, विविधलेश्यायुक्त, परस्पर अपनी-अपनी लेश्याओं द्वारा अवगाढ–अपने स्थान में स्थित, सब ओर के अपने प्रत्यासन्न, उद्योतित करते हैं, प्रभासित करते हैं । शेष कथन पूर्ववत् है ।

सूत्र - २६९

भगवन् ! चन्द्र-मण्डल कितने हैं ? गौतम ! १५ हैं । जम्बूद्वीपमें १८० योजन क्षेत्र अवगाहन कर पाँच चन्द्र-मण्डल है। लवणसमुद्रमें ३३० योजन क्षेत्र का अवगाहन कर दस चन्द्र-मण्डल हैं । यों कुल १५ चन्द्र-मण्डल होते हैं

सूत्र - २७०

भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल से सर्वबाह्य चन्द्र-मण्डल अबाधित रूप में कितनी दूरी पर है । गौतम ! ५१० योजन की दूरी पर है ।

सूत्र - २७१

भगवन् ! एक चन्द्र-मण्डल का दूसरे चन्द्र-मण्डल से कितना अन्तर है ? गौतम ! ३५–३०/६१ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के सात भागों में चार भाग योजनांश परिमित अन्तर है ।

सूत्र - २७२

भगवन् ! चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई, परिधि तथा ऊंचाई कितनी है ? गौतम ! लम्बाई-चौड़ाई ५६/६१ योजन, परिधि उससे कुछ अधिक तीन गुनी तथा ऊंचाई २८/६१ योजन है ।

सूत्र - २७३

भगवन् ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से सर्वाभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल कितनी दूरी पर है ? गौतम ! ४४८२० योजन की दूरी पर है । जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से दूसरा आभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल ४४८५६–२५/६१ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से ४ भाग योजनांश की दूरी पर है । इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ चन्द्र पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल का संक्रमण करता हुआ एक-एक मण्डल पर ३६–२५/६१ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के ७ भागों में से ४ भाग योजनांश की अभिवृद्धि करता हुआ सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है । भगवन् ! जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से सर्वबाह्य चन्द्र-मण्डल कितनी दूरी पर है ? गौतम ! ४५३३० योजन की दूरी पर है । जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से दूसरा बाह्य चन्द्र-मण्डल ४५२९३–३५/६१ योजन तथा ६१ भागों के विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से ३ भाग योजनांश की दूरी पर है । इस क्रम से प्रवेश करता हुआ चन्द्र पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल का संक्रमण करता हुआ एक-एक मण्डल पर ३६/२५-६१ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग में ७ भागों में से ४ भाग योजनांश की वृद्धि में कमी करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है ।

सूत्र - २७४

भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी है ? गौतम ! सर्वाभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई ९९६४० योजन तथा उसकी परिधि कुछ अधिक ३१५०८९ योजन है । द्वितीय आभ्यन्तर चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई ९९७१२–५१/६१ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से १ भाग योजनांश तथा उसकी परिधि कुछ अधिक ३१५३१९ योजन है । इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ चन्द्र प्रत्येक मण्डल पर ७२–५६/६१ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक

भाग के ७ भागों में से १ भाग योजनांश विस्तारवृद्धि करता हुआ तथा २३० योजन परिधिवृद्धि करता हुआ सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है ।

भगवन् ! सर्वबाह्य चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी बतलाई गई है ? गौतम ! १००-६६० योजन तथा उसकी परिधि ३१८३१५ योजन है । द्वितीय बाह्य चन्द्र-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई १००५८७-९/६१ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से ६ भाग योजनांश तथा उसकी परिधि ३१८०८५ योजन है । इस क्रम से प्रवेश करता हुआ चन्द्र पूर्व मण्डल से उत्तर मण्डल का संक्रमण करता हुआ प्रत्येक मण्डल पर ७२-५१/६१ योजन तथा ६१ भागों में विभक्त एक योजन के एक भाग के ७ भागों में से १ भाग योजनांश विस्तारवृद्धि कम करता हुआ तथा २३० योजन परिधिवृद्धि कम करता हुआ सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है ।

सूत्र - २७५

भगवन् ! जब चन्द्र सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब वह प्रतिमुहूर्त्त कितना क्षेत्र पार करता है ? गौतम ! ५०७३-७७४४/१३७२५ योजन । तब वह यहाँ स्थित मनुष्यों को ४७२६३-२१/६१ योजन की दूरी से दृष्टिगोचर होता है । जब चन्द्र दूसरे आभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब प्रतिमुहूर्त्त ५०७७-३६७४/१३७२५ योजन क्षेत्र पार करता है । इस क्रम से निष्क्रमण करता हुआ चन्द्र प्रत्येक मण्डल पर ३-९६५५/१३७२५ मुहूर्त्त-गति बढ़ाता हुआ सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है । भगवन् ! जब चन्द्र सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब वह प्रतिमुहूर्त्त कितना क्षेत्र पार करता है ? गौतम ! ५१२५-६६६०/१३७२५ योजन । तब यहाँ स्थित मनुष्यों को वह ३१८३१ योजन की दूरी से दृष्टिगोचर होता है । जब चन्द्र दूसरे बाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है, तब वह प्रतिमुहूर्त्त ५१२१-११६०/१३७२५ योजन क्षेत्र पार करता है । इस क्रम से निष्क्रमण करते हुए सूर्य का गणित पूर्ववत् जानना ।

सूत्र - २७६

भगवन् ! नक्षत्रमण्डल कितने बतलाये हैं ? गौतम ! आठ । जम्बूद्वीपमें १८० योजन क्षेत्र का अवगाहन कर दो नक्षत्रमण्डल हैं । लवणसमुद्र में ३३० योजन क्षेत्र का अवगाहन कर छ नक्षत्रमण्डल हैं । सर्वाभ्यन्तर नक्षत्र-मण्डल से सर्वबाह्य नक्षत्रमण्डल ५१० योजन की अव्यवहित दूरी पर है । एक नक्षत्रमण्डल से दूसरे नक्षत्रमण्डल की दूरी अव्यवहित रूपमें दो योजन है । नक्षत्रमण्डल की लम्बाई-चौड़ाई दो कोस, परिधि लम्बाई-चौड़ाई से कुछ अधिक तीन गुनी तथा ऊंचाई एक कोस है । जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से सर्वाभ्यन्तर नक्षत्रमण्डल अव्यवहित रूप में ४४८२० योजन की दूरी पर है । और सर्वबाह्य नक्षत्रमण्डल अव्यवहित रूप में ४५३३० योजन की दूरी पर है ।

भगवन् ! सर्वाभ्यन्तर नक्षत्रमण्डल की लम्बाई-चौड़ाई तथा परिधि कितनी है ? गौतम ! सर्वाभ्यन्तर नक्षत्र मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई ९९६४० योजन तथा परिधि कुछ अधिक ३१५०८९ योजन है । सर्वबाह्य नक्षत्रमण्डल की लम्बाई-चौड़ाई १००६६० योजन तथा ३१८३१५ योजन है । जब नक्षत्र सर्वाभ्यन्तर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करते हैं तो एक मुहूर्त्त में ५२६५-१८२६३/२१९६० योजन क्षेत्र पार करते हैं । जब नक्षत्र सर्वबाह्य मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करते हैं तो वे प्रतिमुहूर्त्त ५३१९-१६३६५/२१९६० योजन क्षेत्र पार करते हैं । आठ नक्षत्र-मण्डल पहले, तीसरे, छठे, सातवें, आठवें, दसवें, ग्यारहवें तथा पन्द्रहवें चन्द्र-मण्डल में समवसृत होते हैं । चन्द्रमा मुहूर्त्तमें मण्डल-परिधि का १७६८/१०९८०० भाग अतिक्रान्त करता है । सूर्यमण्डल परिधि का १८३०/१०९८०० भाग अतिक्रान्त करता है । नक्षत्र प्रतिमुहूर्त्त मण्डल-परिधि का १८३५/१०९८०० भाग अतिक्रान्त करते हैं ।

सूत्र - २७७

भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो सूर्य-ईशान कोण में उदित होकर क्या आग्नेय कोण में अस्त होते हैं, आग्नेय कोण में उदित होकर नैर्ऋत्य कोण में अस्त होते हैं, नैर्ऋत्य कोण में उदित होकर वायव्य कोण में अस्त होते हैं,

वायव्य कोण में उदित होकर ईशान कोण में अस्त होते हैं ? हाँ, गौतम ! ऐसा ही है । भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो चन्द्रमा ईशान कोण में उदित होकर दक्षिण–आग्नेय कोण में अस्त होते हैं–इत्यादि वर्णन पूर्ववत् जान लेना ।

सूत्र - २७८

भगवन् ! संवत्सर कितने हैं ? गौतम ! संवत्सर पाँच हैं–नक्षत्र-संवत्सर, युग-संवत्सर, प्रमाण-संवत्सर, लक्षण-संवत्सर तथा शनैश्चर-संवत्सर । नक्षत्र-संवत्सर कितने प्रकार का है ? बारह प्रकार का, श्रावण, भाद्रपद, आसोज यावत् आषाढ । अथवा बृहस्पति महाग्रह बारह वर्षों की अवधि में जो सर्व नक्षत्रमण्डल का परिसमापन करता है–वह भी नक्षत्र-संवत्सर है ।

भगवन् ! युग-संवत्सर कितने प्रकार का है ? गौतम ! पाँच प्रकार का, चन्द्र-संवत्सर, चन्द्र-संवत्सर, अभि-वर्द्धित-संवत्सर, चन्द्र-संवत्सर तथा अभिवर्द्धित-संवत्सर । प्रथम चन्द्र-संवत्सर के चौबीस पर्व, द्वितीय चन्द्र-संवत्सर के चौबीस पर्व, तृतीय अभिवृद्धित-संवत्सर के छब्बीस पर्व, चौथे चन्द्र-संवत्सर के चौबीस तथा पाँचवें अभिवर्द्धित-संवत्सर के छब्बीस पर्व हैं । पाँच भेदों में विभक्त युग-संवत्सर के पर्व १२४ होते हैं ।

भगवन् ! प्रमाण-संवत्सर कितने प्रकार का है ? गौतम ! पाँच प्रकार का–नक्षत्र-संवत्सर, चन्द्र-संवत्सर, ऋतु-संवत्सर, आदित्य-संवत्सर तथा अभिवर्द्धित-संवत्सर। लक्षण-संवत्सर कितने प्रकार का है ? पाँच प्रकार का–

सूत्र - २७९

जिसमें कृत्तिका आदि नक्षत्र समरूप में–मासान्तिक तिथियों से योग–करते हैं, जिसमें ऋतुएं समरूप में परिणत होती हैं, जो प्रचुर जलयुक्त हैं, वह समक-संवत्सर हैं ।

सूत्र - २८०

जब चन्द्र के साथ पूर्णमासी में विषम–नक्षत्र का योग होता है, जो कटुक, कष्टकर, विपुल वर्षायुक्त होता है, वह चन्द्र-संवत्सर है ।

सूत्र - २८१

जिसमें विषम काल में–वनस्पति अंकुरित होती है, अन्-ऋतु में–पुष्प एवं फल आते हैं, जिसमें सम्यक्-वर्षा नहीं होती, वह कर्म-संवत्सर है ।

सूत्र - २८२

जिसमें सूर्य, पृथ्वी, चल, पुष्प एवं फल–रस प्रदान करता है, जिसमें थोड़ी वर्षा से ही धान्य सम्यक् रूप में निष्पन्न होता है–अच्छी फसल होती है, वह आदित्य-संवत्सर है ।

सूत्र - २८३

जिसमें क्षण, लव, दिन, ऋतु, सूर्य के तेज से तप्त रहते हैं, जिसमें निम्न स्थल जल-पूरित रहते हैं, वह अभिवर्द्धित संवत्सर है ।

सूत्र – २८४, २८५

भगवन् ! शनैश्चर संवत्सर कितने प्रकार का है ? अठ्ठाईस प्रकार का – १. अभिजित, २. श्रवण, ३. धनिष्ठा, ४. शतभिषक्, ५. पूर्वा भाद्रपद, ६. उत्तरा भाद्रपद, ७. रेवती, ८. अश्विनी, ९. भरिणी, १०. कृत्तिका, ११. रोहिणी यावत् तथा २८. उत्तराषाढा । अथवा शनैश्चर महाग्रह तीस संवत्सरों में समस्त नक्षत्र-मण्डल का समापन करता है–वह काल शनैश्चर-संवत्सर है ।

सूत्र – २८६-२८८

भगवन् ! प्रत्येक संवत्सर के कितने महीने हैं ? गौतम ! बारह महीने, उनके लौकिक एवं लोकोत्तर दो प्रकार के नाम । लौकिक नाम–श्रावण, भाद्रपद यावत् आषाढ । लोकोत्तर नाम इस प्रकार हैं– १. अभिनन्दित, २.

प्रतिष्ठित, ३. विजय, ४. प्रीतिवर्द्धन, ५. श्रेयान्, ६. शिव, ७. शिशिर, ८. हिमवान्, ९. वसन्तमास, १०. कुसुमसम्भव, ११. निदाघ तथा १२. वनविरोह ।

सूत्र – २८९-२९८

भगवन् ! प्रत्येक महीने के कितने पक्ष हैं ? गौतम ! दो, कृष्ण तथा शुक्ल । प्रत्येक पक्ष के पन्द्रह दिन हैं, – १. प्रतिपदा-दिवस, २. द्वितीया-दिवस, ३. तृतीया-दिवस यावत् १५. पंचदशी-दिवस–अमावस्या या पूर्णमासी का दिन । इन पन्द्रह दिनों के पन्द्रह नाम हैं, जैसे– १. पूर्वाङ्ग, २. सिद्धमनोरम, ३. मनोहर, ४. यशोभद्र, ५. यशोधर, ६. सर्वकाम-समृद्ध, ७. इन्द्रमूर्द्धाभिषिक्त, ८. सौमनस्, ९. धनञ्जय, १०. अर्थसिद्ध, ११. अभिजात, १२. अत्यशन, १३. शतञ्जय , १४. अग्निवेश्म तथा १५. उपशम ।

भगवन् ! इन पन्द्रह दिनों की कितनी तिथियाँ हैं ? पन्द्रह–१. नन्दा, २. भद्रा, ३. जया, ४. तुच्छारिक्ता, ५. पूर्णा-पञ्चमी । फिर ६. नन्दा, ७. भद्रा, ८. जया, ९. तृच्छा, १०. पूर्णा–दशमी । फिर ११. नन्दा, १२. भद्रा, १३. जया, १४. तुच्छा, १५. पूर्णा–पञ्चदशी ।

प्रत्येक पक्ष में पन्द्रह राते हैं, जैसे–प्रतिपदारात्रि-एकम की रात, द्वितीयारात्रि, तृतीयारात्रि यावत् पञ्चदशी–अमावस या पूनम की रात ।

इन पन्द्रह रातों के पन्द्रह नाम हैं– उत्तमा, सुनक्षत्रा, एलापत्या, यशोधरा, सौमनसा, श्रीसम्भूता, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता, ईच्छा, समाहारा, तेजा, अतितेजा, देवानन्दा या निरति ।

भगवन् ! इन पन्द्रह रातों की कितनी तिथियाँ हैं ? गौतम ! पन्द्रह जैसे–१. उग्रवती, २. भोगवती, ३. यशोमती, ४. सर्वसिद्धा, ५. शुभनामा । फिर ६. उग्रवती, ७. भोगवती, ८. यशोमती, ९. सर्वसिद्धा, १०. शुभनामा । फिर ११. उग्रवती, १२. भोगवती, १३. यशोमती, १४. सर्वसिद्धा, १५. शुभनामा ।

प्रत्येक अहोरात्र के तीस मुहूर्त्त बतलाये गये हैं–रुद्र, श्रेयान, मित्र, वायु, सुपीत, अभिचन्द्र, माहेन्द्र, बलवान् , ब्रह्म, बहुसत्य, ऐशान, त्वष्टा, भावितात्मा, वैश्रमण, वारुण, आनन्द, विजय, विश्वसेन, प्राजापत्य, उपशम, गन्धर्व, अग्निवेश्म, शतवृषभ, आतपवान्, अमम, ऋणवान्, भौम, वृषभ, सर्वार्थ तथा राक्षस ।

सूत्र - २९९

भगवन् ! करण कितने हैं ? गौतम ! ग्यारह – १. बव, २. बालव, ३. कौलव, ४. स्त्रीविलोचन–तैतिल, ५. गर, ६. वणिज, ७. विष्टि, ८. शकुनि, ९. चतुष्पद, १०. नाग तथा ११. किंस्तुघ्न । इन ग्यारह करणों में सात करण चर तथा चार करण स्थिर हैं । बव, बालव, कौलव, स्त्रीविलोचन, गरादि, वणिज तथा विष्टि–ये सात करण चर हैं एवं शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न–ये चार करण स्थिर हैं ।

भगवन् ! ये चर तथा स्थिर करण कब होते हैं ? गौतम ! शुक्ल पक्ष की एकम की रात में, एकम के दिन में बवकरण होता है । दूज को दिन में बालवकरण होता है, रात में कौलवकरण होता है । तीज को दिन में स्त्री विलोचनकरण होता है, रात में गरकरण होता है । चौथ को दिन में वणिजकरण होता है, रात में विष्टिकरण होता है। पाँचम को दिन में बवकरण होता है, रात में बालवकरण होता है । छठ को दिन में कौलवकरण होता है, रात में स्त्रीविलोचनकरण होता है । सातम को दिन में गरादिकरण होता है, रात में वणिजकरण होता है । आठम को दिन में विष्टिकरण होता है, रात में बवकरण होता है । नवम को दिन में बालवकरण होता है, रात में कौलवकरण होता है । दसम को दिन में स्त्रीविलोचन करण होता है, रात में गरादिकरण होता है । ग्यारस को दिन में वणिजकरण होता है, रात में विष्टिकरण होता है । बारस को दिन में बवकरण होता है, रात में बालवकरण होता है । तेरस को दिन में कौलवकरण होता है, रात में स्त्रीविलोचन करण होता है । चौदस को दिन में गरादिकरण होता है, रात में वणिजकरण होता है । पूनम को दिन में विष्टिकरण होता है, रात में बवकरण होता है ।

कृष्णपक्ष की एकम को दिन में बालवकरण होता है, रात में कौलवकरण होता है । दूज को दिन में स्त्री-

विलोचनकरण होता है, रात में गरादिकरण होता है । तीज को दिन में वाणिजयकरण होता है । रात में विष्टिकरण होता है । चौथ को दिन में बवकरण होता है, रात में बालवकरण होता है । पाँचम को दिन में कौलवकरण होता है, रात में स्त्रीविलोचनकरण होता है । छठ को दिन में गरादिकरण होता है, रात में वणिजकरण होता है । सातम को दिन में विष्टिकरण होता है । रात को बवकरण होता है । आठम को दिन में बालवकरण होता है, रात में कौलव-करण होता है । नवम को दिन में स्त्रीविलोचनकरण होता है, रात में गरादिकरण होता है । दसम को दिन में वणिजकरण होता है, रात में विष्टिकरण होता है । ग्यारस को दिन में बवकरण होता है, रात में बालवकरण होता है। बारस को दिन में कौलवकरण होता है, रात में स्त्रीविलोचनकरण होता है, तेरस को दिन में गरादिकरण होता है, रात में वणिजकरण होता है । चौदस को दिन में विष्टिकरण होता है, रात में शकुनिकरण होता है । अमावस को दिन में चतुष्पदकरण होता है, रात में नागकरण होता है । शुक्ल पक्ष की एकम को दिन में किंस्तुघ्नकरण होता है ।

सूत्र - ३००

भगवन् ! संवत्सरों में आदि–संवत्सर कौन सा है ? अयनों में प्रथम अयन कौन सा है ? यावत् नक्षत्रों में प्रथम नक्षत्र कौन सा है ? गौतम ! संवत्सरों में आदि–चन्द्र-संवत्सर है । अयनों में प्रथम दक्षिणायन है । ऋतुओं में प्रथम प्रावृट्-ऋतु है । महीनों में प्रथम श्रावण है । पक्षों में प्रथम कृष्णपक्ष है । अहोरात्र में प्रथम दिवस है । मुहूर्त्तों में प्रथम रुद्र है । करणों में प्रथम बालव है । नक्षत्रों में प्रथम अभिजित है । भगवन् ! पञ्च संवत्सरिक युग में अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र तथा मुहूर्त्त कितने कितने हैं ? गौतम ! अयन १०, ऋतुएं ३०, मास ६०, पक्ष १२०, अहोरात्र १८३० तथा मुहूर्त्त ५४९०० हैं ।

सूत्र - ३०१

योग, देवता, ताराग्र, गोत्र, संस्थान, चन्द्र-रवि–योग, कुल, पूर्णिमा–अमावस्या, सन्निपात तथा नेता–यहाँ विवक्षित हैं ।

सूत्र - ३०२

भगवन् ! नक्षत्र कितने हैं ? गौतम ! अठ्ठाईस – अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वभाद्रपदा, उत्तर भाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढा ।

सूत्र – ३०३, ३०४

भगवन् ! इन अठ्ठाईस नक्षत्रों में कितने नक्षत्र ऐसे हैं, जो सदा चन्द्र के दक्षिण में–योग करते हैं–कितने नक्षत्र चन्द्रमा के उत्तर में, कितने दक्षिण में भी, उत्तर में भी, कितने चन्द्रमा के दक्षिण में भी नक्षण-विमानों को चीरकर भी और कितने नक्षत्र सदा नक्षत्र-विमानों को चीरकर चन्द्रमा से योग करते हैं ? गौतम ! जो नक्षत्र सदा चन्द्र के दक्षिण में अवस्थित होते हुए योग करते हैं, वे छह हैं– मृगशिर, आर्द्रा, पुष्य, अश्लेषा, हस्त तथा मूल । ये छहों नक्षत्र चन्द्रसम्बन्धी पन्द्रह मण्डलों के बाहर से ही योग करते हैं ।

सूत्र - ३०५

जो नक्षत्र सदा चन्द्रमा के उत्तर में अवस्थित होते हुए योग करते हैं, वे बारह हैं–अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी तथा स्वाति ।

जो नक्षत्र सदा चन्द्रमा के दक्षिण में भी, उत्तर में भी, नक्षत्र-विमानों को चीरकर भी योग करते हैं, वे सात हैं–कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा तथा अनुराधा ।

जो नक्षत्र सदा चन्द्रमा के दक्षिण में भी, नक्षत्र-विमानों को चीरकर भी योग करते हैं, वे दो हैं–पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढा । ये दोनों नक्षत्र सदा सर्वबाह्य मण्डल में अवस्थित होते हुए चन्द्रमा के साथ योग करते हैं ।

जो सदा नक्षत्र-विमानों को चीरकर चन्द्रमा के साथ योग करता है, ऐसा एक ज्येष्ठा नक्षत्र है ।

सूत्र - ३०६

भगवन् ! अभिजित आदि नक्षत्रों के कौन-कौन देवता हैं ? पहले नक्षत्र से अठ्ठावीसवें नक्षत्र तक के देवता यथाक्रम इस प्रकार हैं – ब्रह्मा, विष्णु, वसु, वरुण, अज, अभिवृद्धि, पूषा, अश्व, यम, अग्नि, प्रजापति, सोम, रुद्र, अदिति, बृहस्पति, सर्प्प, पितृ, भंग, अर्यमा, सविता, त्वष्टा, वायु, इन्द्राग्नी, मित्र, इन्द्र, नैर्ऋत, आप तथा विश्वदेव ।

सूत्र – ३०७-३०९

भगवन् ! इन अठ्ठाईस नक्षत्रों में अभिजित नक्षत्र के कितने तारे हैं ? गौतम ! तीन तारे हैं । जिन नक्षत्रों के जितने जितने तारे हैं, वे प्रथम से अन्तिम तक इस प्रकार हैं– अभिजित नक्षत्र के तीन तारे, श्रवण के तीन, धनिष्ठा के पाँच, शतभिषक् के सौ, पूर्वभाद्रपदा के दो, उत्तर-भाद्रपदा के दो, रेवती के बत्तीस, अश्विनी के तीन, भरणी के तीन, कृत्तिका के छः, रोहिणी के पाँच, मृगशिर के तीन, आर्द्रा का एक, पुनर्वसु के पाँच, पुष्य के तीन और अश्लेषा नक्षत्र के छः तारे होते हैं । मघा नक्षत्र के सात तारे, पूर्वफाल्गुनी के दो, उत्तरफाल्गुनी के दो, हस्त के पाँच, चित्रा का एक, स्वाति का एक, विशाखा के पाँच, अनुराधा के पाँच, ज्येष्ठा के तीन, मूल के ग्यारह, पूर्वाषाढा के चार तथा उत्तराषाढा नक्षत्र के चार तारे हैं ।

सूत्र - ३१०

भगवन् ! इन अठ्ठाईस नक्षत्रों में अभिजित नक्षत्र का क्या गोत्र है ? गौतम ! मौद्गलायन गोत्र है ।

सूत्र – ३११-३१४

प्रथम से अन्तिम नक्षत्र तक सब नक्षत्रों के गोत्र इस प्रकार हैं–अभिजित नक्षत्र का मौद्गलायन, श्रवण का सांख्यायन, धनिष्ठा का अग्रभाग, शतभिषक् का कण्णिलायन, पूर्वभाद्रपदा का जातुकर्ण्ण, उत्तरभाद्रपदा का धनञ्जय । तथा– रेवती का पुष्यायन, अश्विनी का अश्वायन, भरणी का भार्गवेश, कृत्तिका का अग्निवेश्य, रोहिणी का गौतम, मृगशिर का भारद्वाज, आर्द्रा का लोहित्यायन, पुनर्वसु का वासिष्ठ । तथा–पुष्य का अवमज्जायन, अश्लेषा का माण्डव्यायन, मघा का पिङ्गायन, पूर्वफाल्गुनी का गोवल्लायन, उत्तर फाल्गुनी का काश्यप, हस्त का कौशिक, चित्रा का दार्भायन, स्वाति का चामरच्छायन, विशाखा का शुङ्गायन । तथा अनुराधा का गोलव्यायन, ज्येष्ठा का चिकित्सायन, मूल का कात्यायन, पूर्वाषाढा का बाभ्रव्यायन तथा उत्तराषाढा नक्षत्र का व्याघ्रपत्य गोत्र है

सूत्र – ३१५-३१८

भगवन् ! इन अठ्ठाईस नक्षत्रों में अभिजित नक्षत्र का कैसा संस्थान है ? गौतम ! गोशीर्षावलि–प्रथम से अन्तिम तक सब नक्षत्रों के संस्थान इस प्रकार हैं– अभिजित का गोशीर्षावलि, श्रवण का कासार, धनिष्ठा का पक्षी के कलेवर सदृश, शतभिषक् का पुष्प-राशि, पूर्वभाद्रपदा का अर्धवापी, उत्तरभाद्रपदा का भी अर्धवापी, रेवती का नौका, अश्विनी का अश्व, भरणी का भग, कृत्तिका का क्षुरगृह, रोहिणी का गाड़ी की धुरी के समान, मृगशिर का मृग, आर्द्रा का रुधिर की बूँद, पुनर्वसु का तराजू, पुष्य का सुप्रतिष्ठित वर्द्धमानक, अश्लेषा का ध्वजा,

मघा का प्राकार, पूर्वफाल्गुनी का आधे पलंग, उत्तरफाल्गुनी का भी आधे पलंग, हस्त का हाथ, चित्रा का मुख पर सुशोभित पीली जूही के पुष्प के सदृश, स्वाति का कीलक, विशाखा का दामनि, अनुराधा का एकावली, ज्येष्ठा का हाथी-दाँत, मूल का बिच्छू की पूँछ, पूर्वाषाढा का हाथी के पैर तथा उत्तराषाढा नक्षत्र का बैठे हुए सिंह के सदृश संस्थान है

सूत्र – ३१९-३२३

भगवन् ! अठ्ठाईस नक्षत्रों में अभिजित नक्षत्र कितने मुहूर्त्त पर्यन्त चन्द्रमा के साथ योगयुक्त रहता है ? गौतम ! ९–२७/६७ मुहूर्त्त रहता है । इन नक्षत्रों का चन्द्र के साथ योग इस प्रकार है । अभिजित नक्षत्र का चन्द्रमा

के साथ एक अहोरात्र में उनके २६/३७ भाग परिमित योग होता है । इससे अभिजित चन्द्रयोग काल ९-२७/६७ मुहूर्त्त तय होता है । शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति एवं ज्येष्ठा-इन छह नक्षत्रों का चन्द्रमा के साथ ४५ मुहूर्त्त योग रहता है । तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, रोहिणी तथा विशाखा-इन छह नक्षत्रों का चन्द्रमा के साथ ४५ मुहूर्त्त योग रहता है । बाकी पन्द्रह नक्षत्रों का चन्द्रमा के साथ ३० मुहूर्त्त पर्यन्त योग रहता है ।

सूत्र – ३२४-३२८

भगवन् ! इन अठ्ठाईस नक्षत्रों में अभिजित नक्षत्र सूर्य के साथ कितने अहोरात्र पर्यन्त योगयुक्त रहता है ? गौतम ! ४ अहोरात्र एवं ६ मुहूर्त्त पर्यन्त । इन गाथाओं द्वारा नक्षत्र-सूर्ययोग जानना । अभिजित नक्षत्र का सूर्य के साथ ४ अहोरात्र तथा ६ मुहूर्त्त पर्यन्त योग रहता है । शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति तथा ज्येष्ठा-इन नक्षत्रों का सूर्य के साथ ६ अहोरात्र तथा २१ मुहूर्त्त पर्यन्त योग रहता है । तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, रोहिणी एवं विशाखा-इन नक्षत्रों का सूर्य के साथ २० अहोरात्र और ३ मुहूर्त्त पर्यन्त योग रहता है । बाकी के पन्द्रह नक्षत्रों का सूर्य के साथ १३ अहोरात्र तथा १२ मुहूर्त्त पर्यन्त योग रहता है ।

सूत्र - ३२९

भगवन् ! कुल, उपकुल तथा कुलोपकुल कितने हैं ? गौतम ! कुल बारह, उपकुल बारह तथा कुलोपकुल चार हैं । बारह कुल-धनिष्ठा, उत्तरभाद्रपदा, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिर, पुष्य, मघा, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, मूल तथा उत्तराषाढाकुल ।

सूत्र - ३३०

जिन नक्षत्रों द्वारा महीनों की परिसमाप्ति होती है, वे माससदृश नामवाले नक्षत्र कुल हैं । जो कुलों के अधस्तन होते हैं, कुलों के समीप होते हैं, वे उपकुल कहे जाते हैं । वे भी मास-समापक होते हैं । जो कुलों तथा उपकुलों के अधस्तन होते हैं, वे कुलोपकुल कहे जाते हैं ।

सूत्र - ३३१

बारह उपकुल-श्रवण, पूर्वभाद्रपदा, रेवती, भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, अश्लेषा, पूर्वफाल्गुनी, हस्त, स्वाति, ज्येष्ठा तथा पूर्वाषाढा उपकुल ।

चार कुलोपकुल-अभिजित, शतभिषक्, आर्द्रा तथा अनुराधा कुलोपकुल ।

भगवन् ! पूर्णिमाएं तथा अमावस्याएं कितनी हैं ? गौतम ! बारह पूर्णिमाएं तथा बारह अमावस्याएं हैं, जैसे -श्राविष्ठी, प्रौष्ठपदी, आश्वयुजी, कार्तिकी, मार्गशीर्षी, पौषी, माघी, फाल्गुनी, चैत्री, वैशाखी, ज्येष्ठामूली तथा आषाढी ।

भगवन् ! श्रावणी पूर्णमाणी के साथ कितने नक्षत्रों का योग होता है ? गौतम ! अभिजित, श्रवण तथा धनिष्ठा का । भाद्रपदी पूर्णिमा के साथ शतभिषक्, पूर्वभाद्रपदा तथा उत्तरभाद्रपदा-नक्षत्रों का योग होता है । आसौजी पूर्णिमा के साथ रेवती तथा अश्विनी-नक्षत्रों का, कार्तिक पूर्णिमा के साथ भरणी तथा कृत्तिका का, मार्गशीर्षी के साथ रोहिणी तथा मृगशिर का, पौषी पूर्णिमा के साथ आर्द्रा, पुनर्वसु तथा पुष्य का, माघी पूर्णिमा के साथ अश्लेषा और मघा का, फाल्गुनी पूर्णिमा के साथ पूर्वाफाल्गुनी तथा उत्तराफाल्गुनी का, चैत्री पूर्णिमा के साथ हस्त एवं चित्रा का, वैशाखी पूर्णिमा के साथ स्वाति और विशाखा का, ज्येष्ठामूली पूर्णिमा के साथ अनुराधा, ज्येष्ठा एवं मूल का तथा आषाढी पूर्णिमा के साथ पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा-नक्षत्रों का योग होता है ।

भगवन् ! श्रावणी पूर्णिमा के साथ क्या कुल का, उपकुल का या कुलोपकुल नक्षत्रों का योग होता है ? गौतम ! तीनों का योग होता है । कुलयोग में धनिष्ठा, उपकुलयोग में श्रवण तथा कुलोपकुलयोग में अभिजित नक्षत्र का योग होता है । भाद्रपदी पूर्णिमा के साथ कुल, उपकुल तथा कुलोपकुल का योग होता है । कुलयोग में उत्तर-भाद्रपदा, उपकुलयोग में पूर्वभाद्रपदा तथा कुलोपकुलयोग में शतभिषक् नक्षत्र का योग होता है । आसौजी पूर्णिमा के

साथ कुल का और उपकुल का योग होता है । कुलयोग में अश्विनी और उपकुलयोग में रेवती नक्षत्र का योग होता है । कार्तिकी पूर्णिमा के साथ कुल और उपकुल का योग होता है, कुलयोग में कृत्तिका और उपकुलयोग में भरणी नक्षत्र का योग होता है । मार्गशीर्षी पूर्णिमा के साथ कुलयोग में मृगशिर और उपकुलयोग में रोहिणी नक्षत्र का योग होता है । आषाढी पूर्णिमा तक का वर्णन वैसा ही है । इतना अन्तर है–पौषी तथा ज्येष्ठामूली पूर्णिमा के साथ कुल, उपकुल तथा कुलोपकुल का योग होता है । बाकी की पूर्णिमाओं के साथ कुल एवं उपकुल का योग होता है ।

श्रावणी अमावस्या के साथ कितने नक्षत्रों का योग होता है ? गौतम ! अश्लेषा तथा मघा–का योग होता है। भाद्रपदी अमावस्या के साथ पूर्वाफाल्गुनी तथा उत्तराफाल्गुनी–का, आसौजी अमावस्या के साथ हस्त एवं चित्रा–का, कार्तिकी अमावस्या के साथ स्वाति और विशाखा का, मार्गशीर्षी अमावस्या के साथ अनुराधा, ज्येष्ठा तथा मूल का, पौषी अमावस्या के साथ पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढा–का, माघी अमावस्या के साथ अभिजित, श्रवण और धनिष्ठा–का, फाल्गुनी अमावस्या के साथ शतभिषक् पूर्वभाद्रपदा एवं उत्तरभाद्रपदा–का, चैत्री अमावस्या के साथ रेवती और अश्विनी–का, वैशाखी अमावस्या के साथ भरणी तथा कृत्तिका–का, ज्येष्ठामूली अमावस्या के साथ रोहिणी एवं मृगशिर का और आषाढी अमावस्या के साथ आर्द्रा, पुनर्वसु तथा पुष्य–नक्षत्रों का योग होता है ।

भगवन् ! श्रावणी अमावस्या के साथ क्या कुल का, उपकुल का या कुलोपकुल का योग होता है ? गौतम! कुल और उपकुल का योग होता है, कुलयोग में मघा और उत्तराफाल्गुनी और उपकुलयोग में पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र का योग होता है । मार्गशीर्षी अमावस्या के साथ कुलयोग में मूल, उपकुलयोग में ज्येष्ठा तथा कुलोपकुलयोग में अनुराधा नक्षत्र का योग होता है । माघी, फाल्गुनी तथा आषाढी अमावस्या के साथ कुल, उपकुल एवं कुलोपकुल का योग होता है, बाकी की अमावस्याओं के साथ कुल एवं उपकुल का योग होता है ।

भगवन् ! क्या जब श्रवण नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा होती है, तब क्या तत्पूर्ववर्तिनी अमावस्या मघा नक्षत्रयुक्त होती है ? और जब पूर्णिमा मघा नक्षत्रयुक्त होती है तब क्या तत्पश्चाद् भाविनी अमावस्या श्रवण नक्षत्रयुक्त होती है? गौतम ! ऐसा ही होता है । जब पूर्णिमा उत्तरभाद्रपदा नक्षत्रयुक्त होती है, तब तत्पश्चात् भाविनी अमावस्या उत्तरफाल्गुनी नक्षत्रयुक्त होती है । जब पूर्णिमा उत्तरफाल्गुनी नक्षत्रयुक्त होती है, तब अमावस्या उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र युक्त होती है । जब पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्रयुक्त होती है, तब पश्चाद्वर्तिनी अमावस्या चित्रा नक्षत्रयुक्त होती है। जब पूर्णिमा चित्रा नक्षत्रयुक्त होती है, तो अमावस्या अश्विनी नक्षत्रयुक्त होती है । जब पूर्णिमा कृत्तिका नक्षत्रयुक्त होती है, तब अमावस्या विशाखा नक्षत्रयुक्त होती है । जब पूर्णिमा विशाखा नक्षत्रयुक्त होती है, तब अमावस्या कृत्तिका नक्षत्रयुक्त होती है । जब पूर्णिमा मृगशिर नक्षत्रयुक्त होती है, तब अमावस्या ज्येष्ठामूल नक्षत्रयुक्त होती है। जब पूर्णिमा पुष्य नक्षत्रयुक्त होती है, तब अमावस्या पूर्वाषाढा नक्षत्रयुक्त होती है । जब पूर्णिमा पूर्वाषाढा नक्षत्र-युक्त होती है, तो अमावस्या पुष्य नक्षत्रयुक्त होती है ।

सूत्र - ३३२

भगवन् ! चातुर्मासिक वर्षाकाल के श्रावण मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ? गौतम ! चार – उत्तराषाढा, अभिजित, श्रवण तथा धनिष्ठा । उत्तराषाढा नक्षत्र श्रावण मास के १४ अहोरात्र, अभिजित नक्षत्र ७ अहोरात्र, श्रवण नक्षत्र ८ अहोरात्र तथा धनिष्ठा नक्षत्र १ अहोरात्र परिसमाप्त करता है । उस मास में सूर्य चार अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण परिभ्रमण करता है । उस मास के अन्तिम दिन चार अंगुल अधिक दो पद पुरुषछाया-प्रमाण पौरुषी होती है ।

भगवन् ! वर्षाकाल के भाद्रपद मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ? गौतम ! चार – धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वभाद्रपदा तथा उत्तरभाद्रपदा । धनिष्ठ नक्षत्र १४ अहोरात्र, शतभिषक् नक्षत्र ७ अहोरात्र, पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र ८ अहोरात्र तथा उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र १ अहोरात्र परिसमाप्त करता है । उस महीने में सूर्य आठ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । वर्षाकाल के आश्विन मास को तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं–उत्तराभाद्र-पदा, रेवती तथा अश्विनी । उत्तराभाद्रपदा १४ रातदिन, रेवती नक्षत्र १५ रातदिन तथा अश्विनी नक्षत्र एक रातदिन

परिसमाप्त करता है । उस मास में सूर्य १२ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । उस समय के अन्तिम दिन परिपूर्ण तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है । वर्षाकाल के कार्तिक मास को तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं–अश्विनी, भरणी तथा कृत्तिका । अश्विनी नक्षत्र १४ रातदिन, भरणी नक्षत्र १५ रातदिन, तथा कृत्तिका नक्षत्र १ रातदिन में परिसमाप्त करता है । उस महीने में सूर्य १६ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । उस महीने के अंतिम दिन ४ अंगुल अधिक तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है ।

चातुर्मास हेमन्तकाल के मार्गशीर्ष मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ? गौतम ! तीन – कृतिका, रोहिणी तथा मृगशिर । कृत्तिका १४ अहोरात्र, रोहिणी १५ अहोरात्र तथा मृगशिर नक्षत्र १ अहोरात्र में परिसमाप्त करता है । उस महीने में सूर्य २० अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । उस महीने के अन्तिम दिन ८ अंगुल अधिक तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है । हेमन्तकाल के पौष मास को चार नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं–मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु तथा पुष्य । मृगशिर १४ रातदिन, आर्द्रा ८ रातदिन, पुनर्वसु ७ रातदिन तथा पुष्य १ रातदिन परिसमाप्त करता है । तब सूर्य २४ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । उस महीने के अन्तिम दिन परिपूर्ण चार पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है । हेमन्तकाल के माघ मास को तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं–पुष्य, अश्लेषा तथा मघा । पुष्य १४ रातदिन, अश्लेषा १५ रातदिन तथा मघा १ रातदिन में परिसमाप्त करता है । तब सूर्य २० अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । उस महीने के अंतिम दिन आठ अंगुल अधिक तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है । हेमन्तकाल के– फाल्गुन मास को तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं–मघा, पूर्वाफाल्गुनी तथा उत्तराफाल्गुनी । मघा १४ रातदिन, पूर्वाफाल्गुनी १५ रातदिन तथा उत्तरा फाल्गुनी १ रातदिन में परिसमाप्त करता है । तब सूर्य सोलह अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है। उस महीने के अन्तिम दिन चार अंगुल अधिक तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है ।

भगवन् ! चातुर्मासिक ग्रीष्मकाल के–चैत्र मास को कितने नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं ? तीन – उत्तराफाल्गुनी, हस्त तथा चित्रा । उत्तराफाल्गुनी १४ रातदिन, हस्त १५ रातदिन तथा चित्रा १ रातदिन में परिसमाप्त करता है । तब सूर्य १२ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । उस महीने के अन्तिम दिन परिपूर्ण तीन पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है । ग्रीष्मकाल के वैशाख मास को तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं–चित्रा, स्वाति तथा विशाखा । चित्रा १४ रातदिन, स्वाति १५ रातदिन तथा विशाखा १ रातदिन में परिसमाप्त करता है । तब सूर्य आठ अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । उस महीने के अन्तिम दिन आठ अंगुल अधिक दो पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है । ग्रीष्मकाल के ज्येष्ठ मास को चार नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं–विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा तथा मूल । विशाखा १४ रातदिन, अनुराधा ८ रातदिन, ज्येष्ठा ७ रातदिन तथा मूल १ रातदिन में परिसमाप्त करता है । तब सूर्य चार अंगुल अधिक पुरुषछायाप्रमाण अनुपर्यटन करता है । उस महीने के अन्तिम दिन चार अंगुल अधिक दो पद पुरुषछायाप्रमाण पोरसी होती है । ग्रीष्मकाल के आषाढ मास को तीन नक्षत्र परिसमाप्त करते हैं–मूल, पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढा । मूल १४ रातदिन, पूर्वाषाढा १५ रातदिन तथा उत्तराषाढा १ रातदिन में परिसमाप्त करता है । सूर्य तब वृत्त, समचौरस, संस्थानयुक्त, न्यग्रोधपरिमण्डल–नीचे से संकीर्ण, प्रकाश्य वस्तु के कलेवर के सदृश आकृतिमय छाया से युक्त अनुपर्यटन करता है । उस महीने के अन्तिम दिन परिपूर्ण दो पद पुरुषछायायुक्त पोरीसी होती है ।

सूत्र - ३३३

योग, देवता, तारे, गोत्र, संस्थान, चन्द्र-सूर्य-योग, कुल, पूर्णिमा, अमावस्या, छाया–इनका वर्णन उपर्युक्त है।

सूत्र - ३३४

सोलह द्वार क्रमशः इसी प्रकार है–चन्द्र तथा सूर्य के तारा विमानों के अधिष्ठातृ-देवों, चन्द्र-परिवार, मेरु से

ज्योतिश्चक्र के अन्तर, लोकान्त से ज्योतिश्चक्र के अन्तर, भूतल से ज्योतिश्चक्र के अन्तर तथा छठा द्वार–नक्षत्र अपने चार क्षेत्र के भीतर, बाहर या ऊपर चलते हैं ? इस सम्बन्ध में वर्णन है ।

सूत्र - ३३५

ज्योतिष्क विमानों के संस्थान, ज्योतिष्क देवों की संख्या, चन्द्र आदि देवों के विमानों को करनेवाले देव, देवगति, देवऋद्धि, ताराओं के पारस्परिक अन्तर, चन्द्र आदि की अग्रमहिषियों, आभ्यन्तर परिषत् एवं देवियों के साथ भोग-सामर्थ्य, ज्योतिष्क देवों के आयुष्य तथा सोलहवाँ द्वार–ज्योतिष्क देवों के अल्पबहुत्व का वर्णन है ।

सूत्र - ३३६

भगवन् ! क्षेत्र की अपेक्षा से चन्द्र तथा सूर्य के अधस्तन प्रदेशवर्ती तारा विमानों के अधिष्ठातृ देवों में से कतिपय क्या द्युति, वैभव आदि की दृष्टि से चन्द्र एवं सूर्य के अणु-हीन हैं ? क्या कतिपय उनके समान हैं ? क्षेत्र की अपेक्षा से चन्द्र आदि के विमानों के समश्रेणीवर्ती तथा उपरितन प्रदेशवर्ती ताराविमानों के अधिष्ठातृ देवों में से कतिपय क्या द्युति, वैभव आदि में उनसे न्यून हैं ? क्या कतिपय उनके समान हैं ? हाँ, गौतम ! ऐसा ही है ।

सूत्र - ३३७

भगवन् ! ऐसा किस कारण से है ? गौतम ! पूर्व भव में उन ताराविमानों के अधिष्ठातृ देवों का तप आचरण, नियमानुपालन तथा ब्रह्मचर्य-सेवन जैसा-जैसा उच्च या अनुच्च होता है, तदनुरूप उनमें द्युति, वैभव आदि की दृष्टि से चन्द्र आदि से हीनता–या तुल्यता होती है । पूर्व भव में उन देवों का तप आचरण नियमानुपालन, ब्रह्मचर्य-सेवन जैसे-जैसे उच्च या अनुच्च नहीं होता, तदनुसार उनमें द्युति, वैभव आदि की दृष्टि से चन्द्र आदि से न हीनता होती है, न तुल्यता होती है ।

सूत्र - ३३८

भगवन् ! एक एक चन्द्र का महाग्रह-परिवार, नक्षत्र-परिवार तथा तारागण-परिवार कितना कोड़ाकोड़ी है? गौतम ! प्रत्येक चन्द्र का परिवार ८८ महाग्रह है, २८ नक्षत्र है तथा ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारागण हैं ।

सूत्र - ३३९

भगवन् ! ज्योतिष्क देव मेरु पर्वत से कितने अन्तर पर गति करते हैं ? गौतम ! ११२१ योजन की दूरी पर। ज्योतिश्चक्र–लोकान्त से अलोक से पूर्व ११११ योजन के अन्तर पर स्थित है । अधस्तन ज्योतिश्चक्र धरणितल से ७९० योजन की ऊंचाई पर गति करता है । इसी प्रकार सूर्यविमान धरणीतल से ८०० योजन की ऊंचाई पर, चन्द्र विमान ८८० योजन की ऊंचाई पर तथा नक्षत्र-ग्रह-प्रकीर्ण तारे ९०० योजन की ऊंचाई पर गति करते हैं । ज्योति-श्चक्र के अधस्तनतल से सूर्यविमान १० योजन के अन्तर पर, ऊंचाई पर गति करता है । चन्द्र-विमान ९० योजन के और प्रकीर्ण तारे ११० योजन के अन्तर पर, ऊंचाई पर गति करते हैं । सूर्य के विमान से चन्द्रमा का विमान ८० योजन के अन्तर पर, ऊंचाई पर गति करता है । तारारूप ज्योतिश्चक्र १०० योजन के अन्तर पर, ऊंचाई पर गति करता है । वह चन्द्रविमान से २० योजन दूरी पर, ऊंचाई पर गति करता है ।

सूत्र - ३४०

भगवन् ! जम्बूद्वीप में अठ्ठाईस नक्षत्रों में कौन सा नक्षत्र सर्व मण्डलों के भीतर, कौन सा नक्षत्र समस्त मण्डलों के बाहर, कौन सा नक्षत्र सब मण्डलों के नीचे और कौन सा नक्षत्र सब मण्डलों के ऊपर होता हुआ गति करता है ? गौतम ! अभिजित नक्षत्र सर्वाभ्यन्तर-मण्डल में से, मूल नक्षत्र सब मण्डलों के बाहर, भरणी नक्षत्र सब मण्डलों के नीचे तथा स्वाति नक्षत्र सब मण्डलों के ऊपर होता हुआ गति करता है ।

भगवन् ! चन्द्रविमान का संस्थान–कैसा है ? गौतम ! ऊपर की ओर मुँह कर रखे हुए आधे कपित्थ के फल के आकार का है । वह संपूर्णतः स्फटिकमय है । अति उन्नत है । सूर्य आदि सर्व ज्योतिष्क देवों के विमान

इसी प्रकार के समझना । चन्द्रविमान कितना लम्बा-चौड़ा तथा ऊंचा है ?

सूत्र - ३४१

गौतम ! चन्द्रविमान ५६/६१ योजन चौड़ा, उतना ही लम्बा तथा २८/६१ योजन ऊंचा है ।

सूत्र - ३४२

सूर्यविमान ४८/६१ योजन चौड़ा, उतना ही लम्बा तथा २४/६१ योजन ऊंचा है ।

सूत्र - ३४३

ग्रहों, नक्षत्रों तथा ताराओं के विमान क्रमशः २ कोश, १ कोश तथा १/२ कोश विस्तीर्ण हैं । ऊंचाई उन से आधी होती है ।

सूत्र - ३४४

भगवन् ! चन्द्रविमान को कितने हजार देव परिवहन करते हैं ? गौतम ! सोलह हजार, चन्द्रविमान के पूर्व में श्वेत, सुभग, जनप्रिय, सुप्रभ, शंख के मध्यभाग, जमे हुए दहीं, गाय के दूध के झाग तथा रजतनिकर, उज्ज्वल दीप्तियुक्त, स्थिर, लष्ट, प्रकोष्ठक, वृत्त, पीवर, सुश्लिष्ट, विशिष्ट, तीक्ष्ण, दंष्ट्राओं प्रकटित मुखयुक्त, रक्तोत्पल, अत्यन्त कोमल तालुयुक्त, घनीभूत, शहद की गुटिका सदृश पिंगल वर्ण के, पीवर, मांसल, उत्तम जंघायुक्त, परिपूर्ण, विपुल, कन्धों से युक्त, मृदु, विशद, सूक्ष्म, प्रशस्त, लक्षणयुक्त, उत्तम वर्णमय, कन्धों पर उगे अयालों से शोभित उच्छ्रित, सुनमित, सुजात, आस्फोटित, वज्रमय नखयुक्त, वज्रमय दंष्ट्रायुक्त, वज्रमय दाँतो वाले, अग्नि में तपाये हुए स्वर्णमय जिह्वा तथा तालु से युक्त, तपनीय स्वर्णनिर्मित योक्त्रक-के साथ सुयोजित, कामगम, प्रीतिगम, मनोगम, मनोरम, अमितगति, अपरिमित बल, वीर्य, पुरुषार्थ तथा पराक्रम से युक्त, उच्च गम्भीर स्वर से सिंहनाद करते हुए, अपनी मधुर, मनोहर ध्वनि द्वारा गगन-मण्डल को आपूर्ण करते हुए, दिशाओं को सुशोभित करते हुए चार हजार सिंहरूपधारी देव विमान के पूर्वी पार्श्व को परिवहन किये चलते हैं । चन्द्रविमान के दक्षिण में सफेद वर्णयुक्त, सौभाग्ययुक्त यावत् को सुशोभित करते हुए चार हजार गजरूपधारी देव विमान के दक्षिणी पार्श्व को परिवहन करते हैं । चन्द्र-विमान के पश्चिम में सफेद वर्णयुक्त, यावत् दिशाओं को सुशोभित करते हुए चार हजार वृषभ-रूपधारी देव विमान के पश्चिमी पार्श्व का परिवहन करते हैं । चन्द्र-विमान के उत्तर में श्वेतवर्णयुक्त, सौभाग्य युक्त यावत् दिशाओं को सुशोभित करते हुए चार हजार अश्वरूपधारी देव विमान के उत्तरी पार्श्व को परिवहन करते हैं ।

सूत्र - ३४५

चार-चार हजार सिंहरूपधारी देव, चार-चार हजार गजरूपधारी देव, चार-चार हजार वृषभरूपधारी देव तथा चार-चार हजार अश्वरूपधारी देव-कुल सोलह हजार देव सूर्य विमानों का परिवहन करते हैं । ग्रहों के विमानों का दो-दो हजार सिंहरूपधारी देव, दो-दो हजार गजरूपधारी देव, दो-दो हजार वृषभरूपधारी देव और दो-दो हजार अश्वरूपधारी देव-कुल आठ-आठ हजार देव परिवहन करते हैं ।

सूत्र - ३४६

नक्षत्रों के विमानों का एक-एक हजार सिंहरूपधारी देव, एक-एक हजार गजरूपधारी देव, एक-एक हजार वृषभरूपधारी देव एवं एक-एक हजार अश्वरूपधारी देव-कुल चार-चार हजार देव परिवहन करते हैं । तारों के विमानों का पाँच-पाँच सौ सिंहरूपधारी देव, पाँच-पाँच सौ गजरूपधारी देव, पाँच-पाँच सौ वृषभरूपधारी देव तथा पाँच-पाँच सौ अश्वरूपधारी देव-कुल दो-दो हजार देव परिवहन करते हैं ।

सूत्र - ३४७

उपर्युक्त चन्द्र-विमानों के वर्णन के अनुरूप सूर्य-विमान यावत् तारा-विमानों का वर्णन है ।

सूत्र - ३४८

भगवन् ! इन चन्द्रों, सूर्यों, ग्रहों, नक्षत्रों तथा तारों में कौन सर्वशीघ्रगति हैं ? कौन सर्वशीघ्रतर गतियुक्त हैं ? गौतम ! चन्द्रों की अपेक्षा सूर्य, सूर्यों की अपेक्षा ग्रह, ग्रहों की अपेक्षा नक्षत्र तथा नक्षत्रों की अपेक्षा तारे शीघ्र गतियुक्त हैं । इनमें चन्द्र सबसे अल्प या मन्दगतियुक्त हैं तथा तारे सबसे अधिक शीघ्रगतियुक्त हैं ।

सूत्र - ३४९

इन चन्द्रों, सूर्यों, ग्रहों, नक्षत्रों तथा तारों मैं कौन सर्वमहर्द्धिक है ? कौन सबसे अल्प ऋद्धिशाली हैं ? गौतम! तारों से नक्षत्र, नक्षत्रों से ग्रह, ग्रहों से सूर्य तथा सूर्यों से चन्द्र अधिक ऋद्धिशाली हैं । तारे सबसे कम ऋद्धिशाली तथा चन्द्र सबसे अधिक ऋद्धिशाली हैं ।

सूत्र - ३५०

भगवन् ! जम्बूद्वीप में एक तारे से दूसरे तारे का कितना अन्तर है ? गौतम ! अन्तर दो प्रकार का है–व्याघातिक और निर्व्याघातिक । एक तारे से दूसरे तारे का निर्व्याघातिक अन्तर जघन्य ५०० धनुष तथा उत्कृष्ट २ गव्यूत है । एक तारे से दूसरे तारे का व्याघातिक अन्तर जघन्य २६६ योजन तथा उत्कृष्ट १२२४२ योजन है ।

सूत्र - ३५१

भगवन् ! ज्योतिष्क देवों के इन्द्र, ज्योतिष्क देवों के राजा चन्द्र के कितनी अग्रमहिषियाँ हैं ? गौतम ! चार –चन्द्रप्रभा, ज्योत्सनाभा, अर्चिमाली तथा प्रभंकरा । उनमें से एक-एक अग्रमहिषी का चार-चार हजार देवी-परिवार है । एक-एक अग्रमहिषी अन्य सहस्र देवियों की विकुर्वणा करने में समर्थ होती है । यों विकुर्वणा द्वारा सोलह हजार देवियाँ निष्पन्न होती हैं । भगवन् ! क्या ज्योतिष्केन्द्र, ज्योतिष्कराज चन्द्रावतंसक विमान में चन्द्रा राजधानी में सुधर्मासभा में अपने अन्तःपुर के साथ नाट्य, गीत, वाद्य आदि का आनन्द लेता हुआ दिव्य भोग भोगने में समर्थ होता है ? गौतम ! ऐसा नहीं होता–क्योंकि–ज्योतिष्केन्द्र, ज्योतिष्कराज चन्द्र के चन्द्रावतंसक विमान में चन्द्रा राजधानी में सुधर्मासभा में माणवक नामक चैत्यस्तंभ है । उस पर वज्रमय गोलाकार सम्पुटरूप पात्रों में बहुत सी जिन-सक्थियाँ हैं । वे चन्द्र तथा अन्य बहुत से देवों एवं देवियों के लिए अर्चनीय तथा पर्युपासनीय हैं । यह वहाँ केवल अपनी परिवार-ऋद्धि–यह मेरा अन्तःपुर है, मैं इनका स्वामी हूँ–यों अपने वैभव तथा प्रभुत्व की सुखानुभूति कर सकता है, मैथुनसेवन नहीं करता । सब ग्रहों आदि की विजया, वैजयन्ती, जयन्ती तथा अपराजिता नामक चार-चार अग्रमहिषियाँ हैं । यों १७६ ग्रहों की इन्हीं नामों की अग्रमहिषियाँ हैं ।

सूत्र – ३५२-३५४

अङ्गारक, विकालक, लोहिताङ्ग, शनैश्चरस आधुनिक, प्राधुनिक, कण, कणक, कणकणक, कणवित्तानक, कणसन्तानक, सोम, सहित, आश्वासन, कार्योपग, कुर्बुरक, अजकरक, दुन्दुभक, शंख, शंखनाभ, शंखवर्णाभ– । यों भावकेतु पर्यन्त ग्रहों का उच्चारण करना । उन सबकी अग्रमहिषियाँ उपर्युक्त नामों की हैं ।

सूत्र - ३५५

भगवन् ! चन्द्र-विमान में देवों की स्थिति कितने काल की होती है ? गौतम ! चन्द्र-विमान में देवों की स्थिति जघन्य–१/४ पल्योपम तथा उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम, देवियों की स्थिति जघन्य १/४ पल्योपम तथा उत्कृष्ट–पचास हजार वर्ष अधिक अर्ध पल्योपम होती है । सूर्य-विमान में देवों की स्थिति जघन्य १/४ पल्योपम तथा उत्कृष्ट एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम, देवियों की स्थिति जघन्य १/४ पल्योपम तथा उत्कृष्ट पाँचसौ वर्ष अधिक अर्ध पल्योपम होती है । ग्रह-विमान में देवों की स्थिति जघन्य १/४ पल्योपम तथा उत्कृष्ट एक पल्योपम । देवियों की स्थिति जघन्य १/४ पल्योपम तथा उत्कृष्ट कुछ अधिक १/४ पल्योपम होती है ।

सूत्र - ३५६

नक्षत्रों के अधिदेवता–इस प्रकार हैं–अभिजित के ब्रह्मा, श्रवण के विष्णु, धनिष्ठा के वसु, शतभिषक् के वरुण, पूर्वभाद्रपदा के अज, उत्तरभाद्रपदा के वृद्धि, रेवती के पूषा, अश्विनी के अश्व, भरणी के यम, कृत्तिका के अग्नि, रोहिणी के प्रजापति, मृगशिर के सोम, आर्द्रा के रुद्र, पुनर्वसु के अदिति, पुष्य के बृहस्पति और अश्लेषा के अधिदेवता सर्प हैं । तथा–

सूत्र - ३५७

मघा के पिता, पूर्वफाल्गुनी के भग, उत्तरफाल्गुनी के अर्यमा, हस्त के सविता, चित्रा के त्वष्टा, स्वाति के वायु, विशाखा के इन्द्राग्नी, अनुराधा के मित्र, ज्येष्ठा के इन्द्र, मूल के निर्ऋति, पूर्वाषाढा के आप तथा उत्तराषाढा के अधिदेवता विश्वे हैं ।

सूत्र - ३५८

यह संग्रहणी गाथाएं हैं ।

सूत्र - ३५९

भगवन् ! चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा ताराओं में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य तथा विशेषाधिक हैं ? गौतम ! चन्द्र और सूर्य तुल्य हैं । वे सबसे कम हैं । उनसे नक्षत्र संख्येय गुण हैं । नक्षत्रों से ग्रह संख्येय गुने हैं । ग्रहों से तारे संख्येय गुने हैं ।

सूत्र - ३६०

भगवन् ! जम्बूद्वीप में जघन्य तथा उत्कृष्ट कितने तीर्थंकर हैं ? गौतम ! जघन्य चार तथा उत्कृष्ट चौंतीस तीर्थंकर होते हैं । जम्बूद्वीप में चक्रवर्ती कम से कम चार तथा अधिक से अधिक तीस होते हैं । जितने चक्रवर्ती होते हैं, उतने ही बलदेव होते हैं, वासुदेव भी उतने ही होते हैं । जम्बूद्वीप में निधि-रत्न ३०६ होते हैं । उसमें कम से कम ३६ तथा अधिक से अधिक २७० निधि-रत्न यथाशीघ्र परिभोग-उपयोग में आते हैं ।

सूत्र - ३६१

भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने सौ पञ्चेन्द्रिय-रत्न होते हैं ? २१० हैं । उसमें–कम से कम २८ और अधिक से अधिक २१० पञ्चेन्द्रिय-रत्न यथाशीघ्र परिभोग में आते हैं ।

सूत्र - ३६२

भगवन् ! जम्बूद्वीप में कितने सौ एकेन्द्रिय रत्न होते हैं ? २१० हैं । उसमें–कम से कम २८ तथा अधिक से अधिक २१० एकेन्द्रिय-रत्न यथाशीघ्र परिभोग में आते हैं ।

भगवन् ! जम्बूद्वीप की लम्बाई-चौड़ाई, परिधि, भूमिगत गहराई, ऊंचाई कितनी है ? गौतम ! जम्बूद्वीप की लम्बाई-चौड़ाई १,००,००० योजन तथा परिधि ३,१६,२२७ योजन ३ कोश १२८ धनुष कुछ अधिक १३।। अंगुल है। इसकी भूमिगत गहराई १००० योजन, ऊंचाई कुछ अधिक ९९,००० योजन तथा भूमिगत गहराई और ऊंचाई दोनों मिलाकर कुछ अधिक १,००,००० योजन हैं ।

सूत्र - ३६३

भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप पृथ्वी-परिणाम है, अप्-परिणाम है, जीव-परिणाम है, पुद्गलपरिणाम है ? गौतम! पृथ्वी, जल, जीव तथा पुद्गलपिण्डमय भी है । भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप में सर्वप्राण, सर्वजीव, सर्वभूत, सर्वसत्त्व–ये सब पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक तथा वनस्पतिकायिक के रूप में पूर्वकाल में उत्पन्न हुए हैं ? हाँ, गौतम ! वे अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं ।

सूत्र - ३६४

भगवन् ! जम्बूद्वीप 'जम्बूद्वीप' क्यों कहलाता है ? गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में स्थान-स्थान पर बहुत से जम्बू वृक्ष हैं, जम्बू वृक्षों से आपूर्ण वन हैं, वन-खण्ड हैं–वे अपनी सुन्दर लुम्बियों तथा मञ्जरियों के रूप में मानो शिरोभूषण–धारण किये रहते हैं । वे अपनी श्री द्वारा अत्यन्त शोभित होते हुए स्थित हैं । जम्बू सुदर्शना पर परम ऋद्धिशाली, पल्योपम-आयुष्ययुक्त अनाहत नामक देव निवास करता है । गौतम ! इसी कारण वह जम्बूद्वीप कहा जाता है ।

सूत्र - ३६५

आर्य जम्बू ! मिथिला नगरी में मणिभद्र चैत्य में बहुत–से श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों, श्राविकाओं, देवों, देवियों की परिषद् के बीच श्रमण भगवान् महावीर ने शस्त्रपरिज्ञादि को ज्यों श्रुतस्कन्धादि में जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति का आख्यान किया–भाषण किया, निरूपण किया, प्ररूपण किया । विस्मरणशील श्रोतृवृन्द पर अनुग्रह कर अर्थ, तात्पर्य, हेतु, प्रश्न, पृष्ट अर्थ के प्रतिपादन, कारण तथा व्याकरण स्पष्टीकरण द्वारा प्रस्तुत शास्त्र का बार बार उपदेश किया ।

वक्षस्कार-७-का मुनि दीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

१८ – जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति–उपांगसूत्र–७ का
मुनि दीपरत्नसागरकृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

પૂજ્યપાદ્ શ્રી આનંદ–ક્ષમા–લલિત–સુશીલ–સુધર્મસાગર ગુરૂભ્યો નમ:

१८

जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

[अनुवादक एवं संपादक]

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

વેબ સાઈટ:– (1) www.jainelibrary.org (2) deepratnasagar.in

ઈમેલ એડ્રેસ:- jainmunideepratnasagar@gmail.com મોબાઈલ 09825967397